Manav

Vol 14
1986

G. K. V.
Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 111124

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vol 14
1986
S: 166
111124
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १४ जनवरी–मार्च १९८६ अंक : १

111124

इस अंक में

सामाजिक वर्ग नगरीय जीवन-विधि	ए० के० श्रीवास्तव	१
ग्रामीण संदर्भ में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का महत्व (९ से १४ वय वर्ग)	मंजु शुक्ल	१७
आदिवासी क्षेत्रों में विकास की रणनीति : मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ में	राधेश्याम त्रिपाठी	२३
कृषक समाज में प्रौद्योगिकीय भिज्ञता एवं प्रयोग (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)	सुरेन्द्रनाथ पाठक	३५

आदिवासी स्तम्भ

कमार : एक छत्तीसगढ़ी जनजाति	कु० भारती	५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ
की १६८६ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० एस० सी० तिवारी, प्रो० आई० पी० सिंह
	प्रो० पी० के० भौमिक, श्री बी० एस० शुक्ला
	श्री वी० एस० शुक्ल
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० डी० पी० बाजपेयी
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० मन्जु शुक्ल
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), डा० वी० एन० मिश्रा (पुणे)
	श्री दीपक त्यागी (मैसूर), डा० पी० सी० जोशी (गढ़वाल)
	डा० जे० सी० शर्मा (चंडीगढ़), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	श्री वी० एस० गुप्ता (लखनऊ), डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० आर० ए० शर्मा (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री आर० एस० बिष्ट (लखनऊ), श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक—दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक—मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक—इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक—डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष—पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष—पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री—पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक—पदेन सदस्य)

पूनर मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १४ अप्रैल–सितम्बर १९८६ अंक : २, ३

इस अंक में

गोचरवाद	अयोध्या सरन तिवारी	७५
भंगियों में संस्कृतीकरण	जगदीश नारायण सिंह एवं विनोद सिंह	८७
कानपुर महानगर में बाल श्रमिकों का शोषण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	उमारानी गुप्ता	९५
स्त्रियों में विवाह की आयु तथा प्रजनन-दर निर्धारण : कोल जनजाति पर आधारित एक अध्ययन	एस० बी० सिंह परमार	१०५
प्रौद्योगिकी, भूमि सुधार कानून तथा परिवर्तनशील कृषक आर्थिक संरचना	सुरेन्द्रनाथ पाठक	११३
विद्यार्थी स्तम्भ		
शिक्षा—नवराष्ट्र एवं नयी शिक्षा-नीति	उमाशंकर मिश्र एवं राजकुमारी बाजपेई	१३७
आदिवासी स्तम्भ		
पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय संदर्भ—ऐतिहासिक परिवेश में मिसिंग जनजाति पर आधारित एक अध्ययन	भिक्षु कौण्डिन्य	१४७
पुस्तक समीक्षा		
इनईक्यूलिटी एण्ड पावर्टी—ए केस स्टडी आफ कर्नाटक, लेखक—जी० थिम्मइया	दीपक त्यागी	१५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ
की १९८६ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० एस० सी० तिवारी, प्रो० आई० पी० सिंह
	प्रो० पी० के० भौमिक, श्री बी० एस० शुक्ला
	श्री वी० एस० शुक्ल
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० डी० पी० बाजपेयी
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० मन्जु शुक्ल
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), डा० वी० एन० मिश्रा (पुणे)
	श्री दीपक त्यागी (मैसूर) डा० पी० सी० जोशी (गढ़वाल)
	डा० जे० सी० शर्मा (चंडीगढ़), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	श्री वी० एस० गुप्ता (लखनऊ), डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० आर० ए० शर्मा (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री आर० एस० बिष्ट (लखनऊ), श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पुनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार
117187

मानव

त्रैमासिक

वर्ष : १४ अक्तूबर–दिसम्बर १९८६ अंक : ४

इस अंक में

अर्थशास्त्र एवं आर्थिक मानवशास्त्र—एक विवेचनात्मक अध्ययन	उमाशंकर मिश्र	१५७
लक्षद्वीप की जनसंख्या, लिंग अनुपात, घनत्व एवं साक्षरता १९०१–१९८१	दीपक त्यागी एव प्रभात कुमार तिवारी	१७५
भू-स्वामित्व एवं कृषक समाज	सुरेन्द्र नाथ पाठक	१८१
आदिवासी स्तम्भ		
जनजातीय विकास के कुछ पहलू	सैय्यद कामिल हुसैन	२०१
पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय संदर्भ-—ऐतिहासिक परिवेश में मिसिंग जनजाति पर आधारित एक अध्ययन	भिक्षु कौण्डिन्य	२०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी, लखनऊ की १९८६ की कार्यकारिणी

अध्यक्ष	श्री भैरोंदत्त सन्वाल
उपाध्यक्ष	प्रो० एस० सी० तिवारी, प्रो० आई० पी० सिंह
	प्रो० पी० के० भौमिक, श्री बी० एस० शुक्ला
	श्री वी० एस० शुक्ल
कोषाध्यक्ष	श्री प्रभात कुमार तिवारी
मंत्री	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल
संयुक्त मन्त्री	श्री जे० एन० शुक्ल, डा० डी० पी० बाजपेयी
सहायक मन्त्री	डा० ए० एस० तिवारी, डा० राकेश शुक्ल, डा० मन्जु शुक्ल
निर्वाचित सदस्य	डा० पी० के० मिश्रा (शिलौंग), डा० जी० सी० हेलन (मेरठ)
	प्रो० ए० बी० शरण (रांची), डा० वी० एन० मिश्रा (पुणे)
	श्री दीपक त्यागी (मैसूर) डा० पी० सी० जोशी (गढ़वाल)
	डा० जे० सी० शर्मा (चंडीगढ़), डा० सुधा रस्तोगी (लखनऊ)
	श्री वी० एस० गुप्ता (लखनऊ), डा० ओ० पी० शुक्ला (लखनऊ)
	डा० आर० ए० शर्मा (लखनऊ), श्री डी० बसक (लखनऊ)
	श्री आर० एस० बिष्ट (लखनऊ), श्री श्रीष चन्द्र (लखनऊ)
पदेन सदस्य	डा० सुरेश चंद्र वर्मा (सम्पादक–दी ईस्टर्न एन्थ्रोपोलॉजिस्ट)
	श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–मानव)
	डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (सम्पादक–इण्डियन जरनल आफ फिजिकल एन्थ्रोपोलॉजी एण्ड ह्यूमैन जेनेटिक्स)
	श्री एच० एस० सक्सेना (निदेशक–डी० एन० मजूमदार म्यूजियम आफ फोक आर्ट)

मानव प्रबन्धक समिति के सम्मानित सदस्य

श्री भैरोंदत्त सनवाल (अध्यक्ष–पदेन सदस्य)
श्री विधु शेखर शुक्ल
श्री श्रीष चन्द्र
श्री हरि सहाय सक्सेना
डा० वीरेन्द्र नाथ मिश्र
श्री प्रभात कुमार तिवारी (कोषाध्यक्ष–पदेन सदस्य)
डा० ब्रजराज किशोर शुक्ल (मंत्री–पदेन सदस्य)
श्री उमाशंकर मिश्र (सम्पादक–पदेन सदस्य)

पूनार मुद्रक, ११७ नजीराबाद, लखनऊ में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक वर्ग एवं नगरीय जीवन-विधि

ए. के. श्रीवास्तव

भारत में परिवार के समाज शास्त्र के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए गए हैं तथा उनमें से अनेक अध्ययनों में परिवारों की जीवन विधि का गहन विश्लेषण भी हुआ है। लेकिन ये अध्ययन मुख्यतः परिवारों के जनजातीय व ग्रामीण, संयुक्त तथा एकाकी या जाति पर आधारित विभाजितों के दृष्टिकोण से हुए हैं। इसी प्रकार भारतीय परिस्थिति में वर्ग को परिभाषित करने तथा वर्ग स्थिति को मापने की दिशा में भी अनेक प्रयास किये गए हैं (लेविस तथा ढिल्लन, १९५५; पारीक और त्रिवेदी, १९६४; श्रीवास्तव, १९७८)। परन्तु विभिन्न वर्ग संरचनाओं के परिप्रेक्ष्य में जीवन-विधि के अध्ययन का प्रयास बहुत ही कम हुआ है। रॉस (१९६१) और भगवान प्रसाद (१९६८) इत्यादि ने इस पक्ष को मात्र स्पर्श भर किया है।

पाश्चात्य विद्वानों में १९४०-५० के मध्य वार्नर और उसके सहयोगियों ने विभिन्न सामाजिक वर्गों के लोगों की जीवन-विधि का विस्तार से विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। दूसरे अन्य विदेशी विद्वानों ने भी यह जानने का प्रयास किया कि सामाजिक वर्ग किस सीमा तक जीवन-विधि के विभिन्न पक्षों को निर्धारित करते हैं या कम से कम उससे सम्बद्ध हैं। हाइमैन (१९५४) ने विभिन्न वर्गों की मूल्यव्यवस्था को विश्लेषित किया। बेल और फोर्स (१९५७) ने परिवार की धार्मिक प्राथमिकताओं तथा वर्ग संरचना में उनके स्थान में सम्बन्ध जानने की कोशिश की। ग्लिक और कार्टर (१९५८) ने शैक्षिक स्तर के आधार पर विवाह प्रतिमानों को समझने का प्रयास किया। ब्रोफेन्नर (१९५८) ने बच्चों के पालन पोषण पर वर्ग व्यवस्था के प्रभाव से सम्बद्ध तथ्य एकत्रित किये। मैथूज तथा पोथों (१९८३) ने व्यक्ति के शैक्षिक स्तर, व्यवसाय और आय के आधार पर, उसकी राजनीति में कार्य एवं सह-भागिता की संभाव्यता को समझने का प्रयास किया। एलफोर्ड (१९६३) ने भी चार विभिन्न देशों में १९५२-१९६२ के मध्य वर्ग पर आधारित मतदान के व्यवहार प्रतिमानों का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस प्रकार पश्चिम के देशों में पर्याप्त कार्य किए गये हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय परिवेश में विभिन्न वर्गों की जीवन-विधियों को विश्लेषित

ए० के० श्रीवास्तव, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल, (भारत) में प्राध्यापक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का प्रयास किया गया है तथा यह भी जानने की कोशिश की गई है कि उस जीवन-विधि पर सामाजिक वर्ग का प्रभाव किस सीमा तक है। चूंकि जीवन-विधियाँ विभिन्न वर्गों का आदर्श प्रारूप भी प्रस्तुत करती हैं अतः किसी भी वर्ग आधारित अध्ययन में उनका विवेचन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आगवर्न और निमकाफ (१९७२ : ३५६) ने लिखा है ··· चूंकि वर्गों के मध्य शिक्षा, मनोरंजन और इसी प्रकार की अन्य सुविधाओं में अन्तर होता है इसलिए उनके सीखने, व्यवहार करने तथा अपने आस पास के संसार को समझने में अन्तर होता है।' संक्षेप में सामाजिक वर्ग एक विशेष प्रकार की जीवन-विधि को जन्म देते हैं जो कि उनके सदस्यों के मध्य प्राथमिकताओं, रुचियों तथा मूल्यों के अन्तर में प्रतिबिम्बित होता है। ट्यूमिन (१९७८ : ६६) 'जीवन-विधि को परिस्थिति समूहों जिनमें सदस्यता तुलनात्मक सम्मान पर आधारित होती है, की विशिष्ट विशेषताओं के रूप में' लेते हैं। जीवन-विधि को इस अर्थ में एक उपसंस्कृति के रूप में भी समझा जा सकता है कि वे सम्पूर्ण संस्कृति के मध्य, एक निर्धारित ढाँचे के अन्तर्गत एक स्तर को दूसरे स्तर से पृथक करती है।

सामाजिक वर्ग

विभिन्न विद्वानों में समाज में सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था की विद्यमानता पर मतैक्य होते हुए भी उनमें स्तरीकरण की प्रकृति तथा विभिन्न स्तरों को एक दूसरे से पृथक करने के संदर्भ में पर्याप्त मतभेद हैं। इस अवधारणात्मक समस्या के मूल में मार्क्स की 'वर्ग' की अवधारणा तथा वेबर की 'प्रस्थिति' की अवधारणा के मध्य अन्तर का होना है। जबकि मार्क्सवादी व्याख्या अपनी परिभाषा में उत्पादन व वस्तुओं के संग्रह को समाहित करती है, वही वेबरवादी विवेचना वस्तुओं के उपभोग के आधार पर समाज को स्तरीकृत करने का प्रयास करती है। हमारे विचार से भारतीय समाज को मार्क्स के वर्ग समूह की अपेक्षा परिस्थिति समूह के रूप में अधिक ठीक से समझा जा सकता है, क्योंकि यह समाज इतना विविधतापूर्ण है कि जो उत्पादन के साधनों के मालिक हैं तथा वे जो नहीं हैं, के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों को उनकी जीवन-विधियों (जो कि स्पष्टतः वस्तुओं के उपभोग से सम्बद्ध है) के आधार पर अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। अतः भारतीय समाज की व्याख्या के लिए वेबरवादी व्याख्या अधिक समीचीन प्रतीत होती है।

परिवारों की वर्गस्थिति को परखने के लिए कुछ विद्वानों जैसे टाउसिग (१९२९), केटाल (१९४२) गोल्डथोर्प (१९७४) ने कुछ मापनियाँ तैयार की हैं, परन्तु चूंकि इनमें किसी एक कारक पर ही अधिक बल दिया गया है अतः ये वर्तमान विविधतायुक्त समाज को समझने के लिए उपयुक्त नहीं है। इस कठिनाई को समाप्त करने के लिए कुछ समाज वैज्ञानिकों (चैपमैन और सिम्स, १९२५; शेया, १९३६; स्वेल, १९४०; वार्नर व उनके सहयोगी, १९४९; होलिंगशेड, १९५८) ने बहुकारकीय मापनियाँ तैयार कीं। इनमें से अधिकाँश मापनियों में शिक्षा, व्यवसाय और आय को सामाजिक वर्ग के निर्धारण को अधिक विश्वसनीय एवं सत्यापनीय सूत्रों के रूप में देखा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में कुप्पूस्वामी (१९६२) ने इन्हीं कारकों को प्रयोग करते हुए नगरीय समाज के अध्ययन के लिए एक 'सामाजिक आर्थिक परिस्थिति मापनी' तैयार की। इस अध्ययन में इसी मापनी का प्रयोग किया गया है। इसके चयन के दो मुख्य आधार हैं :– (१) चूंकि यह मापनी भारतीय परिस्थिति में ही तैयार की गई है अतः भारतीय समाज को समझने के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है और (२) इनमें प्रयुक्त कारक तुलनात्मक रूप से अधिक विश्वसनीय एवं सही अभिगेय है।

चूंकि कुप्पूस्वामी की यह मापनी दो दशकों से अधिक पुरानी है अतः इसे निम्न संशोधनों के साथ स्वीकार किया गया है—

(१) विगत दशकों में तीव्र मूल्य-वृद्धि को ध्यान में रखते हुए मापनी में प्रयुक्त आय सीमाओं को उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्धारित निम्न आय वर्ग, मध्यम व उच्च आय वर्ग की सीमाओं के आधार पर परिवर्तित कर दिया गया है।

(२) मूल मापनी में प्रयुक्त पाँच वर्गों को तीन वर्गों में, संक्षिप्त किया गया है। इसके लिए उच्च व उच्च-मध्यम वर्ग को मिलाकर उच्च वर्ग तथा उच्च-निम्न व निम्न वर्ग को मिलाकर निम्न वर्ग तैयार किया है। तद्नुसार उनको दिए गए भारों को भी जोड़ दिया गया है।

(३) वर्ग निर्धारण को और अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए 'स्वतः श्रेणी निर्धारण' की तकनीक का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार भ्रान्तियों के निवारण हेतु किसी व्यक्ति का वर्ग निर्धारित करते समय यह ध्यान रखा गया है कि उसे प्रयुक्त मापनी और 'स्वतः श्रेणी निर्धारण' दोनों ही तकनीकों द्वारा एक ही वर्ग के अन्तर्गत आना चाहिए।

अध्ययन-समिष्ट एवं प्रतिदर्श

लखनऊ को प्रस्तुत अध्ययन के क्षेत्र के रूप में चुना गया है। यद्यपि लखनऊ का पूर्ण नगरीय समूह महापालिका क्षेत्र, कैन्ट क्षेत्र, चारबाग व आलमबाग के अभिसूचित क्षेत्र तथा इन्दिरा नगर, हिन्द नगर व विस्तृत अलीगंज को लेकर बना है, परन्तु यह अध्ययन १९८१ की जनगणना द्वारा परिभाषित केवल नगर महापालिका क्षेत्र तक ही अपने को केन्द्रित करता है।

१९८१ की जनगणना के अस्थायी आँकड़ों के आधार पर पूरे महापालिका क्षेत्र की जनसंख्या ८, ९५, ९४७ है तथा इसकी वृद्धि दर १९७१ की जनगणना की तुलना में +१८.५८ प्रतिशत है। महापालिका क्षेत्र में स्त्री-पुरुषों का अनुपात १००० : ८५० है। इस क्षेत्र का शिक्षा का प्रतिशत ४०.१३ है तथा स्त्री-पुरुषों में इसका विभाजन क्रमशः ४९.१३ तथा २९.६० प्रतिशत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म के आधार पर सर्वाधिक लोग हिन्दू धर्म के हैं एवं मुस्लिम धर्म के लोग दूसरे स्थान पर हैं। अन्य सिक्ख, इसाई, जैन व बौद्ध अपेक्षाकृत काफी कम संख्या में हैं। यहाँ की मुख्य बोलचाल की भाषा हिन्दी तथा उर्दू गर्भित हिन्दी है।

शहर अपने चिकन के काम के लिए प्रसिद्ध है तथा इसके अतिरिक्त यहाँ पर तम्बाकू व इत्र बनाने का कार्य भी होता है। यहाँ पर एच० ए० एल० तथा स्कूटर इण्डिया जैसी दो बड़ी फैक्ट्रीयाँ हैं। इस प्रकार कुल ८२० लघु एवं वृहत उद्योग इकाईयाँ हैं। बढ़ती हुई औद्योगिक इकाईयों एवं अन्य रोजगार सुविधाओं के कारण सुदूर एवं आसपास के क्षेत्रों के व्यक्तियों को यह बराबर आकर्षित करता रहा है, जो बढ़ती हुई जनसंख्या की दर से स्पष्ट प्रतीत होता है। लखनऊ आरम्भ से ही ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व का केन्द्र रहा है। बढ़ते हुए नागरीयता के परिवेश में भी यहाँ की संस्कृति विशिष्टता का प्रभाव परम्परा व आधुनिकता का अनूठा संगम यहाँ के जनजीवन पर दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार लखनऊ की विविधतापूर्ण एवं सर्वदेशीय प्रकृति अनुसंधान के लिए आकर्षक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करती है।

प्रतिदर्श चयन के लिए महापालिका क्षेत्र के समस्त चालीस वार्डों को उनके सामाजिक-सांस्कृतिक समानताओं एवं नये-पुराने विभाजनों के आधार पर पांच वर्गों में विभक्त किया गया। इसके पश्चात इन वर्गों से लाटरी विधि द्वारा आठ प्रतिदर्श वार्डों का चयत किया गया तथा इसी विधि से पुनः इन वार्डों से ग्यारह प्रतिदर्श मोहल्ले चुने गए।

महापालिका कार्यालय में उपलब्ध रिकार्ड में इन मोहल्लों में कुल १२३२ मकान अंकित पाये गए। प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर दुकान, स्कूल, मन्दिर, खाली मकानों तथा अकेले रहने वाले व्यक्तियों के घरों को छोड़ दिया गया तथा साथ ही उन परिवारों को सम्मिलित किया गया जो एक ही मकान में अलग अलग रहते थे। दूसरे स्तर पर वर्ग-निर्धारण के दृष्टिकोण से १०२४ व्यक्तियों से एक अभिज्ञान-चिट (वर्ग निर्धारण से सम्बद्ध प्रश्नों की सूची) द्वारा सम्पर्क किया गया। इनमें से १२८ व्यक्तियों ने यह चिट रिक्त ही वापस कर दी या वापस ही नहीं की, ६७ लोग बहुत कम समय से (५ वर्ष से कम) लखनऊ में रह रहे थे, १६ व्यक्तियों का वर्ग निर्धारण सन्देहास्पद रहा। इस प्रकार अन्त में कुल ८१३ परिवार अध्ययन के लिए उपयुक्त पाये गए, जिनमें १६८ उच्च वर्ग, ४६६ मध्यम वर्ग तथा १७९ निम्न वर्ग के थे। चूंकि समय व साधनों के अभाव के कारण अध्ययन में केवल ३०० परिवारों को सम्मिलित किया जाना था इसलिए याद्रच्छिक संख्याओं की टिप्पेट सूची की सहायता से उच्च वर्ग से ६२, मध्यम वर्ग से १७२ तथा निम्न वर्ग से ६६ उत्तरदाताओं को मुख्य अनुसंधान में सम्मिलित किया गया। इस प्रकार बहुस्तरीय सानुपातिक प्रतिदर्शन चयन की विधि के माध्यम से अध्ययन के लिए उत्तरदाताओं का चयन किया गया।

उक्त प्रतिदर्श के अन्तर्गत ग्रामीण व शहरी दोनों ही निवासों के उत्तरदाता सम्मिलित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं (क्रमशः ३९% और ६१%)। परिवार के स्वरूप के आधार पर ४४% उत्तरदाता संयुक्त परिवारों से तथा शेष ५६ प्रतिशत एकाकी परिवारों से सम्बद्ध हैं। परिवार के आकार के आधार पर १२.७ प्रतिशत उत्तरदाता छोटे परिवारों से (१-३ सदस्य), सबसे अधिक ५६ प्रतिशत मध्यम आकार के परिवारों से (४-६ सदस्य), १८.७ प्रतिशत उत्तरदाता बड़े परिवारों से (७-९ सदस्य) तथा १४.६ प्रतिशत उत्तरदाता अत्यधिक बड़े परिवारों (१० सदस्यों से अधिक) से आये हैं।

शैक्षिक उपलब्धियों के आधार पर केवल ६ प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं। शिक्षितों के अन्तर्गत २४ प्रतिशत बहुत कम शिक्षित (प्राइमरी या मिडिल कक्षा तक), ३०.७ प्रतिशत मध्यम शिक्षित (माध्यमिक, स्नातक या डिप्लोमा प्राप्त) तथा शेष ३९.३ प्रतिशत उच्च शिक्षा (स्नातकोत्तर या प्रोफेशनल डिग्री प्राप्त) प्राप्त हैं।

आयु-समुह के आधार पर यह दृष्टिगत होता है कि सर्वाधिक उत्तरदाता ३१-५० वर्ष के आयु-समूह में है (७० प्रतिशत)। शेष १४.३ प्रतिशत उत्तरदाता २१-३० तथा १५.७ प्रतिशत ५० वर्ष से अधिक आयु समूह के हैं।

धार्मिक आधार पर सर्वाधिक प्रतिशत (८०.३ प्रतिशत) हिन्दू उत्तरदाताओं का है। दूसरे स्थान पर, परन्तु अपेक्षाकृत काफी कम (१२ प्रतिशत) मुसलमान उत्तरदाता हैं। अन्य धर्म के उत्तरदाताओं की संख्या काफी कम है। समग्र में भी धार्मिक आधार पर विभाजन इसी प्रकार का दृष्टिगत होता है ।

जातिगत आधार पर सर्बाधिक ४४.४ प्रतिशत सवर्ण हिन्दुओं का है, १४.७ प्रतिशत अन्य जातियों जैसे कायस्थ, खत्रियों इत्यादि का है, इससे अधिक ११.३ प्रतिशत और १० प्रतिशत क्रमशः पिछड़ी और अनुसूचित जाति के हैं। शेष १९.६ प्रतिशत उत्तरदाताओं को हिन्दू न होने के कारण अजाति की कोटि में रखा गया है। इस प्रकार प्रतिदर्श पर्याप्त रूप में विविधतापूर्ण है जो उसे समग्र के दृष्टिकोण से अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण एवं अनुसंधान के लिए अधिक उपयुक्त बनाता है।

निष्कर्ष और विश्लेषण

सामाजिक वर्ग और जीवन-विधियों की पारस्परिकता को दो दृष्टिकोणों से देखा गया है: (१) उन लोगों की जीवन-विधियों का अध्ययन जिनकी सामाजिक-आर्थिक प्रस्थितियां समान हैं, और (२) समान जीवन-विधियों को अपनाने वाले लोगों की सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं का अध्ययन [ट्यूसिन, १९७८ : ६६]। यह अध्ययन अपने उद्देश्य के अनुकूल एक ही वर्ग के अन्तर्गत जीवन-विधियों तथा दूसरे वर्गों से उसके अन्तर के अवलोकन का प्रयास करता है।

पूर्व के अध्ययनों में 'जीवन-विधि' को बड़े ही व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने अन्तर्गत विभिन्न पक्षों, जैसे मकान की दशा व पड़ोस जिसमें एक व्यक्ति रहता है, मनोरंजन के तरीके तथा सांस्कृतिक उपोत्पाद जिनका व्यक्ति आनन्द उठाता है, माता पिता व बच्चों के सम्बन्ध तथा पुस्तकों, पत्रिकाओं व दूरदर्शन के कार्यक्रम जिन्हें व्यक्ति देखता है, को सम्मिलित करता है (ट्यूमिन पृ० १८)। परन्तु इस अध्ययन में मात्र तीन महत्वपूर्ण पक्षों को ही विश्लेषण के लिए चुना गया है। ये हैं : सजावट की वस्तुओं के क्रय के प्रति मनोवृत्ति, फैशन के प्रति मनोवृत्ति तथा परिवारों के रहन-सहन के प्रतिमान।

१ सजावट की वस्तुओं के क्रय के प्रति मनोवृत्ति

व्यक्तियों में निहित आत्म प्रदर्शन की इच्छा सामान्यतया सजावट की वस्तुओं के क्रय एवं प्रयोग द्वारा अभिव्यक्त होती है। ये वस्तुएं एक ओर लोगों के सौन्दर्यबोध की भावना को प्रदर्शित करती है तथा दूसरी ओर समाज में उनकी परिस्थिति का बोध कराती है। सर्वेक्षणोपरान्त यह पाया गया कि ८७ प्रतिशत व्यक्ति इस प्रकार की वस्तुओं के क्रय के इच्छुक हैं जिनमें से १४ प्रतिशत व्यक्ति तो ऐसी वस्तुओं के क्रय में विशेष रुचि लेते हैं। बहुत कम लोगों [१२.३ प्रतिशत] ने इन वस्तुओं के क्रय में अनिच्छा व्यक्त की।

सामाजिक वर्ग के आधार पर विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ कि उच्च वर्ग में सजावट की वस्तुओं के क्रय की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत सबसे अधिक है (३३.९ प्रतिशत), तथा इसी प्रकार इन वस्तुओं के क्रय की अनिच्छा निम्न वर्ग में सर्वाधिक है (२८.८ प्रतिशत)। मध्यम वर्ग की स्थिति इन दोनों के मध्य में है अर्थात उनमें मध्यम स्तर कि रुचि सर्वाधिक है (७९.१ प्रतिशत)। इस प्रकार वर्ग एवं सजावट की वस्तुओं के क्रय की प्रवृत्ति के मध्य सकारात्मक सम्बन्ध दृष्टिगत होता है अर्थात वर्ग स्थिति उच्च होने के साथ साथ रुचि कम होती है। आँकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

वर्ग एवं सजावट की क्रय के प्रति मनोवृत्ति के मध्य इस प्रकार के सम्बन्ध का कारण यह हो सकता है कि उच्च वर्ग एक अधिक सम्पन्न सम्बद्ध है, बड़े मकान में रहता है, जिनमें इस प्रकार की वस्तुयें भलीभांति प्रदर्शित की जा सकती हैं तथा इस वर्ग में अन्य वर्गों की अपेक्षा आत्म प्रदर्शन की इच्छा भी अधिक होती है। पुनः चूंकि यह वर्ग मध्यम वर्ग के लिए सन्दर्भ समूह का कार्य करता है इसलिए मध्यम वर्ग में भी यह प्रकृति उभरती हुई दृष्टिगत होती है। निम्न वर्ग जीवन की आवश्यकताओं के पूर्ति साधन अपेक्षाकृत कठिनता से जुटा पाने के कारण इस ओर बहुत कम ध्यान दे पाता है।

परिवार के स्वरूप के आधार पर यह पाया कि यह आधार सजावट की वस्तुओं की क्रय की प्रवृत्ति के विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता, तथा यही स्थिति आयु समूह के आधार पर आँकड़ों का विश्लेषण करने पर पायी गयी। लेकिन आँकड़ों के आधार पर यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि वस्तुओं के क्रय के प्रति एक विशेष झुकाव कम उम्र के एकाकी परिवारों से सम्बद्ध उत्तरदाताओं में अधिक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्लेषण इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि यद्यपि पारिवारिक स्वरूप और आयु समूह के आधार पर आँकड़ों में कुछ अन्तर दृष्टिगत हो सकता है तथापि शहरी परिवेश में वर्ग संरचना इस दिशा में एक प्रभावकारी भूमिका निभाती है। यह भी निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि यदि उच्च वर्ग में भी व्यक्ति एकाकी परिवार और कम आयु से सम्बद्ध हैं तो इस प्रकार की प्रवृत्ति की सम्भावना और अधिक बढ़ जाने की की जा सकती है।

२ फैशनेबुल वस्त्रों के प्रति मनोवृत्ति

फैशन शीघ्रता से प्रसारित एवं परिवर्तनशील घटना है, और यह अक्सर, (यद्यपि हमेशा नहीं) समाज की अभिजात्य वर्ग से प्रसारित होता है (मैकाइवर और पेज, १९५० : १८५) क्योंकि उनमें सामान्य व्यक्तियों से पृथक दिखाई देने की प्रवृत्ति होती है। चूंकि ये अभिजात्य वर्ग सामान्य जनता के लिए सन्दर्भ समूह का कार्य करते हैं इसलिए उनमें समरूपता स्थापित करने के लिए उनके फैशन का अनुसरण सामान्य जनता द्वारा किया जाता है। डेविस (१९६९ : ७७) का भी यही मत है कि बहुत से फैशन उच्च वर्ग में उत्पन्न होते हुए दिखाई देते हैं तथा निम्न वर्ग के व्तक्ति उन नये तरीकों का अनुसरण करते हैं और इस प्रकार अभिजात्य वर्ग के साथ अल्पकालिक तादात्म्य स्थापित करते हैं।

यद्यपि फैशन व्यापक अर्थ में विश्वास, विचार, मनोरंजन, वस्त्र हर प्रकार के अलंकरण, घरेलू सजावट, फर्नीचर, बोलने के तरीके, जनप्रिय संगीत, साहित्य व कला को समाहित करता है (मैकाईवर व पेज पृ० १८१) तथापि सामान्य व्यक्तियों द्वारा यह सामान्यतया वस्त्रों में होने वाले परिवर्तन के रूप में समझा जाता है। यह अध्ययन भी फैशन के इसी पक्ष पर अपने को केन्द्रित करता है। ब्राइट (१९४९ : ३०३) ने लिखा है कि 'ऐतिहासिक रूप से अधिकांश वस्त्रों से सम्बद्ध फैशन नीचे की ओर प्रसारित होता है अर्थात सामाजिक रूप से अभिजात्य वर्ग से निम्न वर्गकी ओर। वास्तव में अधिकांश तरीके सामान्यहोने के साथ ही फैशन से दूर हो जाते हैं।' सामान्यतया, कपड़े की क्वालिटी तथा प्रकार पहनने वाले की सामाजिक परिस्थिति की ओर संकेत करता है (बार्नर और लावेल, १९५४ : ३२४), यदि वे अधिक मंहगे और अत्याधुनिक फैशन व ढंग के कपड़े पहनते हैं तो वे अभिजात्य समझे जाते हैं (यंग,- १९४६ : ४२०)।

इस दिशा में उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति समझने के लिए उनसे पूछा गया कि क्या वे विज्ञापन के आधार पर वस्त्रों का चयन करते हैं। इस सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि विज्ञापन के आधार पर वस्त्रों का चयन अधिक प्रचलन में नहीं है (केवल ५.८ प्रतिशत अक्सर तथा ५९.७ बिल्कुल नहीं इस आधार पर वस्त्रों का चयन करते हैं) पुनः यहां पर यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि पर्याप्त मात्रा में व्यक्ति यदाकदा विज्ञापन पर भी ध्यान देते हैं (३४.५ प्रतिशत)।

वर्ग के आधार पर उन उत्तरदाताओं का जो यदाकदा और जो कभी नहीं विज्ञापन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधार पर वस्त्रों का चयन करते हैं, विश्लेषण करने पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। यह पाया गया कि उच्च वर्ग के लोग विज्ञापन के आधार पर वस्त्रों का चयन मध्यम व निम्न वर्ग (क्रमशः ३१.२ प्रतिशत और २१.३ प्रतिशत) की अपेक्षा अधिक करते हैं (५६.४ प्रतिशत), परन्तु वस्त्र चयन में विज्ञापन पर बिल्कुल ध्यान न देने की स्थिति में यह क्रम उल्टा हो जाता है (निम्न वर्ग ७८.७%, मध्यम वर्ग ६१.८% तथा उच्च वर्ग ३५.५%)। इस प्रकार यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि उच्च वर्ग में अन्य वर्गों की तुलना में इस दिशा में अधिक ग्राह्यता है। यह सम्भवता इस कारण से है कि उच्च वर्ग एक ओर आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्नता के कारण इस स्थिति में है कि वे नये फैशन के मंहगे कपड़े प्रयोग कर सकते हैं, दूसरी ओर उनमें अपनी परिस्थिति के सम्मान को बचाने और बढ़ाने के लिए दूसरों से अपने आप को पृथक करने की वर्ग जनित प्रवृत्ति होती है। वो धन, (१९४८:५५७-५८) ने भी यही निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखा कि 'फैशन का नेतृत्व करने वाले व्यक्ति सम्पन्न व सामाजिक रूप से अभिजात्य वर्ग से आते हैं तथा वे बराबर अपनी विशिष्टता से दूसरों को प्रेरित करने के विषय में सोचते रहते हैं। उनके ये नवीनीकरण निम्न वर्ग के व्यक्तियों तक प्रसारित होते हैं जहां पर सामान्य व्यक्ति लगातार उन लोगों के द्वारा किये गये व्यवहार का अनुकरण करने के लिए इच्छुक होते हैं।"

पारिवारिक स्वरूप तथा आयु-समूह के आधार पर आँकड़ों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि आँकड़ों में कुछ वैभिन्य होने पर भी ये कोई साँख्यकीय आधार पर तार्किक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। फिर भी आंकड़े इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि एकाकी परिवार और कम आयु वर्ग के व्यक्तियों में विज्ञापन के आधार पर वस्त्रों के चयन की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक है। इसलिये यह निष्कर्ष भी प्रस्तुत किया जा सकता है कि उच्च वर्ग, एकाकी परिवार तथा साथ ही कम आयु के व्यक्तियों के फैशन के प्रति अधिक रुझान की सम्भावना की जा सकती है।

३ रहन-सहन के प्रतिमान

अन्य आधारों के अतिरिक्त वर्गों के अन्तर रहन-सहन के प्रतिमान के आधार पर भी स्पष्ट होते हैं। वास्तव में जब कभी हम परिवार के रहन सहन के प्रतिमान की बात करते हैं तो सामान्यतया हमारा अभिप्राय समाज में उस परिवार की परिस्थिति से होता है, और यह अधिकतर व्यक्ति की वेषभूषा, मनोरंजन के तरीके और घर के सामान्य रख रखाव में दृष्टिगत होता है।

इस अध्ययन में परिवारों के सामान्य रहन-सहन, कमरों की सजावट के अवलोकन तथा उत्तरदाताओं से बातचीत के माध्यम से उनके रहन-सहन के प्रतिमान को तीन व्यापक भागों– परम्परागत, मिश्रित व आधुनिक में विभक्त किया गया है। चूंकि ये विभाजन स्पष्टतः परिभाषित और विभाजित नहीं है अतः पर्यवेक्षण एवं वैयक्तिक विश्लेषण के आधार पर ही रहन सहन के प्रतिमानों को समझने का प्रयास किया गया है। स्वयं उत्तरदाताओं से भी यह पूछा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वे स्वयं के रहन-सहन के प्रतिमान को किस कोटि में रखते हैं ?

यह देखा गया कि लखनऊ जैसे नगर में अभी भी अत्याधुनिक रहन सहन प्रचलित नहीं है। इस प्रकार का रहन-सहन केवल १६.१ प्रतिशत परिवारों में पाया गया। अधिकांश परिवार, परम्परागत तथा मिश्रित ढंग से रहते हैं (क्रमश: ४७.६% तथा ३६.३%) अब यदि हम केवल परम्परागत तथा मिश्रित रहन-सहन के तरीके का अवलोकन करें तो यह कहा जा सकता है कि अधिकांश (९०.६%) निम्न वर्ग के लोग परम्परागत तरीके से रहते हैं जब कि अन्य दो वर्ग में परम्परागत रहन-सहन अपेक्षाकृत काफी कम है (मध्यम वर्ग ३९.५ प्रतिशत और उच्च वर्ग २५.८ प्रतिशत)। मिश्रित रहन-सहन के संदर्भ में आंकड़े विपरीत स्थिति की ओर संकेत करते हैं। मध्यम वर्ग में परम्परागत व मिश्रित रहन सहन के मध्य अन्तर लगभग नगण्य है, अर्थात लोग समान मात्रा में परम्परागत तथा मिश्रित तरीके से रहते हैं। उच्च वर्ग में यह अन्तर दुगने का है। इस प्रकार इन वर्गों के मध्य यह कहा जा सकता है कि परम्परागत रहन-सहन मध्यम वर्ग में उच्च वर्ग की अपेक्षा काफी अधिक है जो इस बात की ओर संकेत करता है कि मध्यम वर्ग यद्यपि उच्च वर्ग का अनुकरण करना चाहता है लेकिन अभी भी वह परम्परागत रहन सहन से काफी जकड़ा हुआ है। इसके अतिरिक्त हर स्थिति में उच्च और मध्यम वर्ग के बीच अपेक्षाकृत कम अन्तर का होना उच्च वर्ग को मध्यम वर्ग सन्दर्भ समूह होने की ओर भी संकेत करता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण व्याख्या इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि सामाजिक वर्ग एवं रहन-के प्रतिमानों में सकारात्मक सम्बन्ध है।

पारिवारिक स्वरूप के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि संयुक्त परिवार के अधिकाँश लोग परम्परागत रहन-सहन का तथा एकाकी परिवार के अधिकाँश मिश्रित या आधुनिक रहन सहन का अनुसरण करते हैं। परन्तु इस आधार पर आँकड़ों में पाया जाने वाला अन्तर किसी प्रकार के तार्किक निष्कर्ष निकालने के लिए अपर्याप्त है।

आयु-समूह के संदर्भ में भी यही स्थिति है। वास्तव में एक विशेष आयु वर्ग के व्यक्तियों में किसी विशेष प्रकार के रहन सहन के प्रति अभिरुचि हो सकती है लेकिन यह सामान्यतया परिवार के रहन सहन को निर्धारित नहीं करता। परिवार का रहन-सहन सम्पूर्ण परिवार द्वारा निर्धारित होता है, और यह तरीका जैसा कि हमारा निष्कर्ष है वर्ग संरचना से प्रभावित है तथा वर्ग जनित मूल्यों से निर्धारित होता है।

उपसंहार

इस प्रकार अध्ययन में सम्मिलित जीवन विधि के तीनों स्वरूपों पर वर्ग का प्रभाव स्पष्ट है तथा नगरीय परिवेश में अन्य कारक जैसे परिवार और आयु-समूह अपेक्षाकृत काफी कम महत्व के हैं। यह भी आँकड़ों से स्पष्ट है कि वर्ग और रहन सहन में पारस्परिक सम्बन्ध सकारात्मक क्रम में हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथ्य जो सम्पूर्ण अध्ययन में उपस्थित है, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि इस क्षेत्र में अभी अत्याधुनिक रहन सहन का उदय नहीं हुआ है, जो कि एक ओर समाज के धीमे गति से परिवर्तन की ओर संकेत करता है तथा दूसरी ओर परम्परागत प्रतिमानों की तीव्र पकड़ को भी इंगित करता है। अति संक्षेप में वर्ग संरचना ने निश्चय ही नगरीय जीवन-विधि को प्रभावित किया है लेकिन अभी भी कोई आमूल परिवर्तन उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सका है।

आभार

प्रस्तुत शोधपत्र लेखक के पी-एच० डी० शोध प्रबन्ध 'सोशल क्लास एण्ड फैमिली लाइफ' ए सोश्योलाजिकल स्टडी आफ चेंजिग पैटर्न आफ सिलेक्टेड फैमिलीज इन अर्बन सेटिंग–लखनऊ (१९८२) पर आधारित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—९

सजावट की वस्तुओं के क्रय के प्रति मनोवृत्ति

रुचि के स्तर	कुल प्रत्युत्तर	सामाजिक वर्ग			पारिवारिक स्वरूप		आयु समूह			
		उच्च	मध्य	निम्न	संयुक्त	एकाकी	२१-३० वर्ष	३१-४० वर्ष	४१-५० वर्ष	५० वर्ष से अधिक
कोई उत्तर नहीं	—	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)
अधिक	१३.७ (४१)	३३.० (२१)	११.६ (२०)		१५.९ (२१)	११.९ (२०)	२०.९ (९)	९.८ (११)	१४.३ (१४)	१४.९ (७)
सामान्य	७०.० (२२२)	६२.९ (३९)	७९.१ (१३६)	७१.१ (४७)	६८.२ (९०)	७८.६ (१३२)	६७.५ (२९)	८२.२ (९२)	७२.४ (७१)	६३.८ (३०)
बिल्कुल नहीं	१२.३ (३७)	३.२ (२)	९.३ (१६)	२८.८ (१९)	१५.९ (२१)	९.५ (१६)	११.६ (५)	८.० (९)	३१.३ (१३)	२१.३ (१०)
कुल उत्तरदाता	३००	६२	१७२	६६	१३२	१६८	४३	११२	९८	४७
उपयुक्तता के स्तर		$\times^2$ का मूल्य = ४९.६५ पी <.०५ अत्यधिक उपयुक्त			$\times^2$ का मूल्य = ३.३४ पी >.०५ उपयुक्त नहीं		$\times^2$ का मूल्य = ९.६५ पी >.०५ उपयुक्त नहीं			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—२

विज्ञापन के आधार पर वस्त्रों के चयन के प्रति मनोवृत्ति

चयन के स्तर	कुल प्रत्युत्तर	सामाजिक वर्ग			पारिवारिक स्वरूप		आयु समूह			
		उच्च	मध्य	निम्न	संयुक्त	एकाकी	२१-३० वर्ष	३१-४० वर्ष	४०-५० वर्ष	५० वर्ष से अधिक
कोई उत्तर नहीं	७	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)
अक्सर	५.८ (१७)	८.१ (५)	७.० (१२)	—	३.२ (४)	७.७ (१३)	११.६ (५)	६.२ (७)	४.१ (४)	२.५ (१)
यदाकदा	३४.५ (१०१)	५६.४ (३५)	३१.२ (५३)	२१.३ (१३)	३२.८ (४१)	३५.७ (६०)	३७.२ (१६)	३८.४ (४३)	३१.६ (३१)	२७.५ (११)
कभी नहीं	५९.७ (१७५)	३५.५ (२२)	६१.८ (१०५)	७८.७ (४८)	६४.० (८०)	५६.६ (९५)	५१.२ (२२)	५५.४ (६२)	६४.३ (६३)	७०.० (२८)
कुल उत्तरदाता	३००	६२	६१७०	६१	१२५	१६८	४३	११२	९८	४०
उपयुक्तता के स्तर		$\times^2$ का मूल्य = २६.६९ पी < .०५ अत्यधिक उपयुक्त			$\times^2$ का मूल्य = ३.३७ पी > .०५ उपयुक्त नही		$\times^2$ का मूल्य = ३.३७ पी > .०५ उपयुक्त नहीं			

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—३

रहन सहन के प्रतिमान

रहन सहन के प्रतिमान	कुल प्रत्युत्तर	सामाजिक वर्ग उच्च	मध्य	निम्न	पारिवारिक समूह संयुक्त	एकाकी	आयु समूह २१-३० वर्ष	३१-४० वर्ष	४१-५० वर्ष	५० वर्ष से अधिक
कोई उत्तर नहीं	२	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)	प्रतिशत (संख्या)
परम्परागत	४७.६ (१४२)	२५.८ (१६)	३९.५ (६८)	९०.६ (५८)	५०.७ (६७)	४५.२ (७५)	३९.५ (१७)	४९.१ (५५)	४६.९ (४५)	५३.२ (२५)
आधुनिक	१६ १ (४८)	२२.६ (१४)	१९.८ (३४)	—	१२.९ (१७)	१८.८ (३१)	२३.३ (१०)	१९.६ (२२)	१०.४ (१०)	१२.८ (६)
मिश्रित	३६.३ (१०८)	५१.६ (३२)	४०.७ (७०)	९.४ (६)	३६.४ (४८)	३६.१ (६०)	३७.२ (१६)	३१.३ (३५)	४२.७ (४१)	३४.० (१६)
कुल उत्तरदाता	३००	६२	१७२	६४	१३२	१६६	४३	११२	९६	७
उपयुक्ता के स्तर	$\times^{2}$ का मूल्य = ६४.७४ पी < .०५ अत्यधिक उपयुक्त				$\times^{2}$ का मूल्य = २.०१ पी > .०५ उपयुक्त नहीं			$\times^{2}$ का मूल्य = ७.३८ पी × .०५ उपयुक्त नहीं		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची

एल्फर्ड, आर. १९८३ **पार्टी एण्ड सोसायटी,** शिकागो : रेण्ड मैक्नेली।

बार्बर, बी. एण्ड लाबेल, एल. बी. १९५४ 'फैशन इन वीमेन्स क्लाथ्स एण्ड अमेरिकन सोशल सिस्टम' इन बैनडिक्स, आर. एण्ड लिपसेट, एस. एम. द्वारा सम्पादित **'क्लास स्टेटस एण्ड पावर'** में न्यूयार्क: रटलेज एण्ड कैगान पाल लि०।

बेल, डब्लू एण्ड फोर्स एम. टी. मई १९५७ रिलीजियस प्रीफरेन्स, फेमिलिजम एण्ड क्लास स्ट्रक्चर, **दी मिडवेस्ट सोश्योलोजिस्ट।**

ब्राइट, एस. एच. १९४९ **सोशल साइकोलाजी इन माडर्न लाइफ,** इंक न्यूयार्क : हाल्ट रिनचर्ड ऐण्ड विन्सटन।

ब्रोफेन्नर, यू. १९५८ 'सोशलाइजेशन एण्ड सोशल क्लास थ्रू टाइम एण्ड स्पेस' मैकोबी ई. ई. न्यूकॉम्ब टी. एम. तथा हार्टली ई. एल. द्वारा सम्पादित **'रीडिंग्स इन सोशल साइकोलोजी,** न्यूयार्क : ऐनरी हाल्ट।

कैटाल, आर. बी. १९४२ दी कन्सेप्ट आफ सोशल स्टेटस, **जर्नल आफ सोशल साइकोलोजी** वाल्यूम–१५।

चैपिन, एफ. एस. १९२८ क्वान्टीटेटिव स्केल फार रेटिंग दी होम एण्ड सोशल इन्वायरनमेंट आफ मिडिल क्लास फेमिलीज : ए एप्रोक्सिमेशन आफ सोश्यो-एकोनोमिक स्टेट्स, **जर्नल आफ एजुकेशनल साइकोलोजी,** वाल्यूम—१९

चैपमैन, जे. सी. एण्ड सिम्स वी. एम. १९२५ दी क्वान्टीटेटिव मेजरमेन्ट आफ सर्टेन आस्पेक्ट्स आफ सोश्यो-एकोनामिक स्टेटस, **जर्नल आफ एजुकेशनल साइकोलोजी,** वाल्यूम–१६

डेविस, के. १९५९ **ह्यूमन सोसायटी,** न्यूयार्क : मैक्मिलन कम्पनी लि०।

ग्लिक, पी. एण्ड कार्टर, एच. जून १९५८ मैरेज पैटनर्स एण्ड एजुकेशनल लेविल, **अमेरिकन सोश्योलोजिकल रिव्यू,** २३:३

गोल्डथॉर्पे, जे. एच. एण्ड कीथ, एच. १९७४ **दी सोशल ग्रेडिंग आफ आकुपेशन: ए न्यू एप्रोच एण्ड स्केल,** आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।

होलिंग शेड, ए. वी. एण्ड फ्रेडरिक, सी. आर. १९५८ **सोशल क्लास एण्ड मेन्टल एलनेश,** न्यूयार्क: विली

हाईमैन, एच. १९५४ 'वैल्यू सिस्टम आफ डिफ्रेन्ट क्लासेज : ए सोशल साइकोलोजिकल कंट्रीब्यूशन टू दी एनालिसिस आफ स्ट्रेटीफिकेशन' बेनडिक्ट, आर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एण्ड लिप्सेट एस. एम. द्वारा सम्पादित **क्लास स्टेटस एण्ड पावर,** न्यूयार्क रटलेज केगान पाल लि०।

कुप्पूस्वामी, बी. १९६२ **ए मैनुअल आफ सोश्यो-एकोनामिक स्टेट्स स्केल** (अर्बन), न्यू देहली: मनश्याम।

लेविस, ओ. एण्ड डिल्लन, एच. एस. १९५५ **लीडरशिप एण्ड ग्रुप्स इन ए साउथ इण्डियन विलेज** न्यू देहली: पी. ई. ओ. पब्लिकेशन नं ९

मेकाइवर, आर. एम. एण्ड पेज, सी. एच. १९५० **सोसायटी : ऐन इट्रोडक्ट्री एनालिसिस,** लण्डन: दी मैक्मिलन प्रेस लि०।

मैथ्यूस, डी. एण्ड पोर्थो, जे. मार्च १९६३ सोशल एण्ड इकोनामिक फैक्टर्स एण्ड निग्रो वोटर्स रजिस्ट्रेशन इन दी साउथ, **अमेरिकन पोलिटिकल साइंस रिव्यू,** LVII : 1

आगबर्न, डब्लू. एफ. एण्ड निमकाफ, एम. एफ. १९७२ **ए हैण्डबुक आफ सोश्योलोजी,** न्यू देहली: यूरेसिया पब्लिशिंग हाउस लि०।

पारीक, यू. एण्ड जी. त्रिवेदी, १९६४ रिलाइबिलीटी एण्ड वैलेडिटी आफ रूरल सोश्योइकोनोमिक स्टेटस स्केल, **इण्डियन जर्नल आफ अप्लाइड साइकोलोजी,** वाल्यूम-1नं०-1

प्रसाद, बी. १९६८ **सोश्यो-इकोनामिक स्टडी आफ अर्बन मिडिल क्लास, जालन्धर** सिटी: स्टर्लिंग पब्लिकेशन लि०।

रॉस, ए. डी. १९६१ **दी हिन्दू फैमिली इन इट्स अर्बन सेटिंग,** बाम्बे : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

शेया, ए. एल. १९३६ **दी मेजरमेन्ट आफ अर्बन होम एनवायरनमेन्ट,** मिनेसोटा : यूनीवर्सिटी आफ मिनेसोटा प्रेस।

शोवेल, डब्लू. एच. १९४० **दी कान्स्ट्रक्शन एण्ड स्टैण्डर्डाइजेशन आफ स्केल फार दी मेजरमेन्ट आफ दी सोश्यो-इकोनोमिक स्टेटस आफ ओक्लाहोमा फार्म फैमिलीज,** ओक्लाहोमा: एग्रीकल्चरल एण्ड मेकेनिकल कालेज, एग्रीकल्चर एक्सपेरिमेंट स्टेशन बुलेटिन-९

श्रीवास्तव, जी. पी. १९७८ डेवलपमेंट आफ सोश्यो-इकोनॉमिक स्टेटस स्केल, **इण्डियन जर्नल आफ सोशल वर्क,** वाल्यूम XXXIX नं० २ जुलाई

ट्यूमिन, एम. एम. १९७८ **सोशल स्ट्रेटीफिकेशन,** न्यू देहली: प्रिंटिस हाल आफ इण्डिया लि०

वोधन, डब्लू. एफ. १९४८ **सोशल साइकोलोजी,** न्यूयार्क : दी ओड़सी प्रेस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार्नर, डब्लू. एल. एण्ड लुन्ट, पी. एस.	१९४१	**दी सोशल लाइफ आफ ए माडर्न कम्यूनिटी,** न्यू हेवेन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस ।
	१९४२	**दी स्टेटस सिस्टम** आफ ए माडर्न कम्यूनिटी, न्यू हेवेन : येल यूनिवर्सिटी प्रेस ।
वार्नर, डब्लू. एल. एण्ड सेरोल, एल.	१९४५	**दी सोशल सिस्टम आफ अमेरिकन ऐथिनिक ग्रुप्स,** न्यू हेवेन, येल यूनिवर्सिटी प्रेस ।
वार्नर, डब्लू. एल. एण्ड लो, जे. ओ.	१९४७	**दी सोशल सिस्टम आफ दी माडर्न फैक्ट्री,** न्यू हेवेन येल यूनिवर्सिटी प्रेस ।
यंग, के	१९४६	**सोशल साइकोलाजी**, लण्डन : केगन पाल ट्रेन्च, टूबनर एण्ड कम्पनी लि० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामीण संदर्भ में अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का महत्व (६ से १४ वय वर्ग)

मंजु शुक्ल

ग्रामीण संदर्भ में शिक्षा का पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब शिक्षा जीवन से जुड़ी हो। अनौपचारिक शिक्षा पद्धति इस अर्थ में सबसे उपयुक्त है। यह शिक्षा सुविधा मुख्य रूप से बालिकाओं एवं पिछड़ी जातियों के लिए है क्योंकि इन समुदायों में शिक्षा के प्रति प्रेरणा की कमी है। सन १९९० तक प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु औपचारिक शिक्षा के साथ-साथ अनौपचारिक शिक्षा को भी अपनाना होगा, तभी हम शिक्षा को ग्रामीण संदर्भ में उपयोगी, कारगर एवं सर्वमान्य बना सकेंगे। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले सार्वभौम शिक्षा की कोई अवधारणा नहीं थी। ऐसे परिवारों के बच्चे स्कूल जाते थे, जिनके परिवारों में शिक्षा की विकसित परम्परा पहले से होती थी। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सार्वभौम शिक्षा को विशेषतः ९ से १४ वर्ष के बच्चों के लिए आवश्यक समझा गया। भारतीय संविधान में इस बात का प्राविधान किया गया कि इस वय-वर्ग के बच्चों को निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की जाय।

शिक्षा एक व्यापक परिकल्पना तथा विकास कार्यक्रम में भागीदारी की प्रथम शर्त है। अनौपचारिक शिक्षा का पाठ्यक्रम, समय एवं पद्धति व्यक्तिपरक हो सकता है जिससे शिक्षा सुविधाओं का पूरा पूरा लाभ पिछड़े समूहों द्वारा उठाया जा सके। शिक्षा को जब हम विद्यालयी पाठ्यक्रम तक ही सीमित कर देते हैं तो इसका तात्पर्य विद्यालयी पाठ्यक्रम हो जाता है। शहरों के बढ़ते प्रभाव, उद्योग और विकास योजनाओं के प्रभाव से ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति चेतना बढ़ी है, परन्तु शैक्षिक-सामाजिक दृष्टि से ऐसे पिछड़े बच्चों की संख्या बहुत है, जो पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं, विशेषरूप से ९ से १४ वर्ष की बालिकाओं की संख्या। पढ़ाई छोड़ देने के कई कारण हो सकते हैं जैसे स्कूल का ग्राम से दूर होना, पारिवारिक वातावरण शिक्षा के अनुकूल न होना, गरीबी, विद्यार्थियों में रुचि का अभाव अथवा पाठ्यक्रम की क्लिष्टता।

विकासशील देशों की शिक्षा समस्याओं में एक समस्या यह भी है कि स्कूल में प्रवेश लेने वाले बच्चों में आधे से अधिक पढ़ाई अधूरी ही छोड़कर आवश्यकतावश आर्थिक दृष्टि से लाभ-

डा० मंजु शुक्ल, शोध अधिकारी, साक्षरता निकेतन लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारी कार्यों में लग जाते हैं अथवा परिवार के कार्यों में माता-पिता का हाथ बटाने लगते हैं। यह सभी स्थितियां बाल मजदूरी की समस्या को और भी बढ़ाने वाली हैं। अधूरी शिक्षा या अशिक्षा के कारण ये बालक न तो व्यावसायिक क्षेत्र में उन्नति कर पाते हैं और न ही अपने जीवन स्तर में सुधार ला पाते हैं। हमें कामकाजी बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही शिक्षा पद्धति का निर्धारण करना होगा। यदि कोई बालक पूरे समय के लिए विद्यालय नहीं जा सकता तो उसे शिक्षा सुविधाओं से एकदम ही वंचित नहीं रखा जा सकता। ऐसे बालक-बालिकाओं को इस प्रकार शिक्षित किया जाना चाहिए कि उनमें व्यावसायिक परिपक्वता आ सके। इसके लिए अल्प कालिक कक्षाओं का संचालन किया जाता है। ९ से १४ वय वर्ग के क्षैक्षिक दृष्टि से पिछड़े बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के प्रारम्भ करने से पहले, उस क्षेत्र की जनसंख्या का अध्ययन, साक्षरता प्रतिशत, ग्रामीणों के दृष्टिकोण तथा पिछड़े (ड्राप आउट) बच्चों की संख्या का आकलन कर लेना अति आवश्यक है। प्रयत्न यही होना चाहिए कि ये अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र ग्रामों में कम से कम दूरी पर स्थापित किये जा सकें। तभी ग्रामीण भी अपना पूरा-पूरा सहयोग देते हैं। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र उन बालिकाओं के लिए विशेष रूप से लाभकारी हैं जो स्कूलों के घर से दूरी की वजह से ही पढ़ाई छोड़ देती हैं। इन केन्द्रों में कोई फीस नहीं ली जाती, साथ ही पाठ्य सामग्री (ज्ञान दीप पुस्तक भाग १ से ५) निःशुल्क उपलब्ध कराये जाने के कारण ग्रामीण इनका पूरा लाभ उठा सकते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि छोटे एवं गरीब किसानों के बच्चे आर्थिक कारणों से पढ़ाई अधूरी छोड़ देते हैं, क्योंकि ये गरीब अभिभावक बच्चों की पढ़ाई लिखाई पर समय एवं धन खर्च करने में कोई लाभ नहीं देखते। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के माध्यम से ऐसे ही बच्चों को ३ वर्ष में मिडिल एवं २ वर्ष में प्राइमरी स्तर की शिक्षा देने की योजना है जिससे चाहने पर वे औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा से जुड़ सकें।

अन्य देशों में भी जहां इस प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं, यह देखा गया कि पढ़े लिखे ग्रामीण युवक इन अल्पकालिक कक्षाओं के लिए बहुत अच्छे अध्यापक सिद्ध होते हैं। अतः ग्राम विशेष से ही अध्यापकों का चुनाव किया जा सकता है। इससे पढ़े लिखे ग्रामीण नवयुवकों में बेरोजगारी की समस्या को भी सुलझाया जा सकेगा। अध्यापकों के उचित चुनाव के साथ-साथ इनका प्रशिक्षण भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अनौपचारिक शिक्षा के अध्यापकों से अपेक्षा की जाती है, कि वे सीमित साधनों एवं समय में ही शैक्षिक-सामाजिक रूप से पिछड़े बालकों को औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने में सफल होंगे। अध्यापकों का व्यवहार भी पिछड़े बालकों की मनः स्थिति के अनुकूल होना आवश्यक है जिससे उन्हें शिक्षा के प्रति आकर्षित किया जा सके।

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का संचालन अभिवावकों के सहयोग के अभाव में सम्भव नहीं। ग्रामीणों की भागीदारी के लिए, ग्रामीण स्तर पर अभिभावक-समितियों का गठन किया जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि समय समय पर क्षेत्र निरीक्षण के द्वारा समस्याओं का (ग्रामीणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवं अध्यापकों से बात चीत करके) समाधान किया जाता रहे। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सरोजनी नगर क्षेत्र में साक्षरता निकेतन की ओर से ४० अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों (प्राइमरी/मिडिल) का संचालन प्रारम्भ किया गया। इनके संचालन के उपरान्त कई तथ्य सामने आये। यह देखा गया कि पिछड़ी जाति (बैकवर्ड कास्ट) की लड़कियों ने इन शिक्षा सुविधाओं का अधिक से अधिक लाभ उठाया। परन्तु अनुसूचित जाति की लड़कियों में शिक्षा के प्रति चेतना की कमी है, जब कि अनुसूचित जाति के लड़कों की उपस्थिति इन केन्द्रों पर सबसे अधिक रहती है। अनुसूचित जाति की लड़कियां गृह-कार्यों एवं कृषि कार्यों में अधिक लगी रहती हैं। इन केन्द्रों की स्थापना मुख्य रूप से पिछड़े एवं अनुसूचित जाति बहुल क्षेत्रों में की गयी। अधिकांशतः अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में आनेवाले बच्चों की पारिवारिक आमदनी २०० से ४००रु. प्रतिमाह से अधिक नहीं थी। केन्द्रों पर आने वाले बच्चों की एक बड़ी संख्या पूरे-पूरे दिन पशु चराने का कार्य करती है। बालिकायें परिवार में मदद करने के साथ-साथ लकड़ियां बीनने या घरेलू नौकरों की तरह भी कार्य करती हैं।

तालिका—१
अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के विद्यार्थियों (९ से १४ वय वर्ग) का आयु एवं जातिगत विवरण

	पुरुष	स्त्री	कुल संख्या
१—अनुसूचित जाति	१९०	१५२	३४२
२—पिछड़ी जाति	१०४	१७३	२७७
३—अन्य	६८	१६०	२२८
पूर्णांक	३६२	४८५	८४७

तालिका—२
अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के अध्यापकों का आयु एवं शिक्षागत विवरण

	मिडिल	हाई स्कूल	इण्टर	बी० ए०	एम० ए०
२० से ३५ वर्ष	१	११	—	—	—
३६ से ५० वर्ष	—	—	१०	११	२
५१ से ६५ वर्ष	२	—	—	—	—
कुल (३७)	३	११	१०	११	२

नोटः— ज्ञातव्य है कि अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए चयनित ३७ अध्यापकों में कोई भी विज्ञान विषय से उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में आने वाले विद्यार्थियों में से भी कुछ बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। कुछ तो शिक्षा में अरुचि के कारण कुछ घरेलू अथवा अर्थोपार्जन के कार्यों में लगे रहने के कारण, पारिवारिक झगड़ों तथा अभिवावकों में से किसी की मृत्यु होने पर भी केन्द्र में आना छोड़ देने के प्रमुख कारणो में है। यह भी देखा गया है कि ग्रामीण अभिभावक विभिन्न विकास योजनाओं के तहत बच्चों को छोटी अवस्था में तो पढ़ने अवश्य भेजते हैं, परन्तु यही अभिभावक बच्चों के कमाऊ उम्र का होने पर उन्हें विद्यालय से हटा भी लेते हैं। अतः ग्रामीणों में शिक्षा के प्रसार एवं उसकी उपयोगिता अनुभव कराने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा को अर्थोत्पादक कुशलता से जोड़ा जाय।

इक्कीसवीं शदी के लिए बालकों को तैयार करने हेतु उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करना आवश्यक है। ऐसे अध्यापकों का चुनाव भी जरूरी है जो विज्ञान पढ़ा सकें (तालिका–२) अतः अधिक पढ़े लिखे अध्यापकों का चुनाव आवश्यक है। विशेषतः विज्ञान एव गणित में योग्यता रखने वाले अध्यापकों की इन अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रो में उन स्थानों पर विशेष आवश्यकता है जहाँ किसी प्रकार की शैक्षिक सहायता उपलब्ध नहीं है अथवा बहुत दूरी पर है। अध्यापकों का चुनाव सम्बद्ध ग्राम से होने पर उन्हें ग्रामीणों का विश्वास प्राप्त रहता है तथा केन्द्र पर उनकी उपस्थिति भी सुलभ रहती है। परन्तु एक ही ग्राम के निवासी होने के कारण इन अध्यापकों से मूल्यों एवं परम्पराओं में आमूल परिवर्तन लाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। यह भी देखा गया है कि ग्रामीण अभिभावक अपने ही ग्राम के अध्यापकों की खामियों को नजर अन्दाज कर जाते हैं। यह पाया गया कि जहां एक ओर ये नवयुवक अध्यापक गणित एवं

तालिका–३
अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति
(प्राइमरी स्तर के केन्द्र)

स्तर—१	प्रत्येक स्तर में विद्यार्थियों की संख्या
अक्षरों का पढ़ना, शब्दों को मिलाकर पढ़ना, अक्षरों का लिखना	२२८
स्तर—२	
अक्षर लिखने की क्षमता, मात्राओं का ज्ञान, सुलेख लिखना	१६९
स्तर—३	
संयुक्त अक्षरों का लिखना, मात्राओं के साथ लिखना, इमला लिखना, सरल वाक्यों का लिखना	१५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय ५।।२५ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

स्तर—४	
हिन्दी भाषा का पढ़ना लिखना, पत्रलेखन, निबंध लिखना, 'ज्ञानदीप' से प्रश्न उत्तर लिखना	—

अंकगणित में प्रगति

	प्रत्येक स्तर में विद्यार्थियों की संख्या
स्तर—१	
१०० तक गिनती पढ़ना एवं लिखना, १० तक पहाड़ा, सरल जोड़-भाग	३६३
स्तर—२	
२० तक पहाड़ा, सरल गुणा, भाग गणित के प्रश्न हल करना	१३१
स्तर—३	
भिन्न, प्रतिशत, दशमलव, गणित में समस्या मूलक प्रश्न हल करना	५३

नोट:—त्रैमासिक परीक्षाओं तक विद्यार्थी रेखागणित पढ़ने की क्षमता नहीं प्राप्त कर सके थे।

विज्ञान शिक्षण की क्षमता कम रखते हैं वहीं इन केन्द्रों के विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति भी विज्ञान एवं गणित में कम रहती है। इसके लिए विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण को भी उत्तरदायी माना जा सकता है। साथ ही साथ विभिन्न आयु के बच्चों (९ से १४) की एक ही कक्षा होना, उनकी ग्रहण करने की क्षमता को प्रभावित करता है। (तालिका–३)

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के सफल संचालन में सबसे बड़ी कठिनाई शिक्षित एवं गम्भीर अध्यापकों का न मिल पाना है। यदि पढ़े लिखे अध्यापक मिल भी जाते हैं तो कोई अन्य नौकरी या व्यवसाय मिल जाने पर आर्थिक कारणों से इन केन्द्रों का अध्यापन कार्य छोड़ देते हैं। अतः आवश्यक है कि इनके मानदेय में बढ़ोत्तरी की जाय। इससे ग्रामों में बढ़ती शिक्षित बेरोजगारी की समस्या को हल किया जा सकेगा तथा शहरों की ओर भागती ग्रामीण आबादी की रफ्तार भी कम होगी।

अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम के सफल संचालन के लिए आवश्यक है कि केन्द्रों के संयोजन हेतु पठन-पाठन सामग्री समुचित रूप से एवं समय से उपलब्ध होती रहे, साथ ही विज्ञान,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणित तथा तकनीकी जानकारी के लिए सहायक शिक्षण सामग्री की भी आवश्यकता है। अनौपचारिक शिक्षा के अध्यापकों के उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखते हुए विशेषरूप से बनाये गये विस्तृत प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है। इन केन्द्रों के निरन्तर मूल्यांकन एवं प्रवर्तन की व्यवस्था होना अति आवश्यक है, जिससे बालकों की शैक्षिक प्रगति के विषय में जाना जा सके।

अनौपचारिक शिक्षा योजना के प्रमुख उद्देश्यों में पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से पिछड़ गये बालक/बालिकाओं को शिक्षा की मुख्य धारा से पुनः जोड़ना भी है, अतः आवश्यक है कि इन केन्द्रों के सफल विद्यार्थियों के लिए विद्यालयों में स्थान निर्धारित किए जाएं। इस देश में शिक्षा बीच में ही छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या ६० प्रतिशत से अधिक है। अतः कहना अनुचित न होगा कि अनौपचारिक शिक्षा योजना को द्वितीय श्रेणी की शिक्षा योजना के रूप में नहीं, वरन् आज की आवश्यकता के रूप में लिया जाना चाहिए। जब तक औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा पद्धतियों के बीच एक अर्थपूर्ण तारतम्य स्थापित नहीं होगा, प्राइमरी शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य प्राप्त नहीं होगा, साथ ही अनौपचारिक योजनाओं की सफलता एवं विकास के लिए विशेष रूप से तैयार किये गये प्रशासनिक प्रारूप की भी आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी क्षेत्रों के विकास की रणनीति : मध्य प्रदेश के विशेष संदर्भ में

राधेश्याम त्रिपाठी

विकास केवल सामाजिक, आर्थिक गतिशीलता का पैरामीटर नहीं है अपितु यह समुदाय के सतत परिवर्तन की प्रक्रिया है। यह योजनात्मक ढंग से विकसित एवं विकासशील देशों के समाजों में परिवर्तन का महत्वपूर्ण प्रारूप बन चुका है जिससे मुख्यतया आर्थिक एवं सामाजिक पिछड़ापन, गरीबी, निरक्षरता एवं सामुदायिक अप्रगतिशीलता दूर की जानी है। आदर्शात्मक प्रारूप के बाहर विशुद्ध अर्थगणितीय दृष्टि से भी विकास पिछड़े समाज की प्रगति का योजनाबद्ध ढांचा है। इस रूप में यह एक लक्ष्य भी है। आदिवासी विकास के सैद्धांतिक पक्ष का वर्णन करने के पूर्व दो तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है : प्रथम विकास को हम सतत प्रक्रिया के रूप में लेते हैं। द्वितीय विकास के लक्ष्य–आदर्शात्मक न होकर व्यावहारिक एवं योजनात्मक होंगे। गरीबी, निरक्षरता, पोषण एवं भुखमरी की घटना आदिवासी क्षेत्रों में प्रमुखता से पाई जाती है। इसकी पुष्टि सर्वेक्षणों एवं सरकारी रिपोर्टों से भी होती है। अतएव आदिवासी विकास का प्रारंभिक ढांचा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अंतिम व्यक्ति तक की जाने से परिलक्षित है। अध्येताओं ने विकासात्मक रणनीति के रूप में इसका चिन्हांकन किया है।

ब्रह्मदेव शर्मा ने लिखा है कि "स्वतंत्रता पश्चात आदिवासी विकास के लिए सिद्धांत रूप में पूर्ण अलगाव और नितांत स्वच्छंद आर्थिक विकास के बीच का मध्य मार्ग स्वीकार किया गया है।" यों आदिवासियों पर विकास के भिन्न भिन्न प्रभाव पड़े हैं। हैमनडार्फ के नवीन अध्ययन के अनुसार वे आदिवासी जो अन्तर ग्रामीण मानव आखेट का आयोजन करते हैं अब उतनी ही दक्षता से आर्थिक गतिविधियों का संचालन करते हैं। ब्रह्मदेव शर्मा आगे लिखते हैं कि "मध्य भारत के आदिवासी क्षेत्र में विकास प्रक्रिया आदिवासी समाज को एक ओर छोड़ती हुई अग्रसर हो रही है। वह उसकी नई चुनौतियों से असंबद्ध है। अधिकांश आदिवासी इस तीव्र परिवर्तन का लाभ उठाने को तैयार ही नहीं हैं क्योंकि नई व्यवस्था को समझने के लिए आवश्यक शिक्षा भी वे नहीं पा रहे हैं।"

विकास की रणनीति का एक उद्देश्य सामाजिक संरचना में विषमता न बढ़ाने वाली

राधेश्याम त्रिपाठी, सहायक प्राध्यापक, शासकीय महाविद्यालय, जयसिंह नगर, जि० शहडोल, म० प्र० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना का लक्ष्य स्वीकार करना है। वैसे आदिवासी समाज औद्योगिक तकनीकी सामाजिक संरचना की परिधि का सीमांत समुदाय होता है। एक धारणा यह भी है कि इन्हें गरीब समझा जाता है। विकास का लक्ष्य राष्ट्रीय स्तर पर सभी कार्यों में आदिवासी समाज को उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करना भी बनता है।

जिन राज्यों में आधे से अधिक जिले आदिवासी बहुल हों, जिनमें राज्य बजट में इनके विकास का बजट १० प्रतिशत से भी अधिक हो तथा केन्द्रीय परियोजनाएं सहायता कार्यक्रम व विशेष कार्यक्रम चल रहे हों ऐसे राज्यों में आदिवासी विकास का अवलोकन उपयोगी होगा। मध्य प्रदेश एक ऐसा ही राज्य है जहाँ पर आदिवासी विकास कार्यक्रम स्वतंत्रता पश्चात से ही चल रहे हैं एवं पिछले ३५ वर्षों में इस क्षेत्र में सामाजिक परिवर्तनों को मानवशास्त्रियों ने निकट से देखा है। आदिवासी विकास का अध्ययन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है। इस लेख में म० प्र० राज्य को आदिवासी परिवेश विकास योजनाएं संक्षेप में ली गई हैं ताकि विकास प्रक्रिया का लघुस्तरीय तथ्य ज्ञात हो सके।

म० प्र० का आदिवासी परिवेश

देश की कुल जनजाति जनसंख्या का २२.०६ प्रतिशत म० प्र० में निवास करता है। करीब ६९ जनजातियाँ आवासी हैं। जनजाति बहुल पश्चिम में झाबुआ से सम्पूर्ण सतपुड़ा तथा मेकाल पर्वत श्रेणी में पूर्व में बघेलखण्ड पठार तक तथा दक्षिण में बस्तर और उससे लगे हुए सीमान्त प्रदेश में अवस्थित है, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ आदिवासी प्रधान है। बस्तर, धार, सरगुजा, मण्डला, झाबुआ जिलों की आधी से अधिक जनसंख्या आदिवासी है। शिवनी, खरगोन, रायगढ़, छिंदवाड़ा में ३० से ५० प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी है। सम्पूर्ण प्रदेश को निम्न भागों में बांटा गया है—

प्रमुख जनजातियां

१ दक्षिण क्षेत्र—गोंड, हलवी, कवांर, कमार, सेवार, भतरा, मड़िया, मुड़िया, बिरहोंर,

२ पूर्वी क्षेत्र—ओरांव, कंवार, कुरूक,

३ मध्यक्षेत्र—गोंड, बैगा, कोरकू, कोल

४ पश्चिमी जनजाति क्षेत्र—भील

म० प्र० में ३३ लाख से अधिक गोंड, १६ लाख भील, ४ लाख से अधिक कंवार, ५ लाख कोल, साढ़े तीन लाख ओरांव, डेढ़ लाख से अधिक बैगा, २ लाख कोरकू तथा २ लाख से अधिक हलवा, एक लाख माड़िया, एवं एक लाख के करीब भतरा आदिवासी हैं। आदिवासी क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था सांस्कृतिक संरचना का अन्तर नृवंश समुदाय स्तर पर पाया जाता है, उदाहरण के लिए बस्तर में पेंड़ा खेती (झूमिंग) माड़िया आदिवासी करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० प्र० के सरगुजा, रायगढ़, विलासपुर के आदिवासी ग्रामों में अर्थव्यवस्था निर्वाही एवं सीमान्त प्रकार की है, औरतें खेती भी सम्हालती हैं, पितृ सत्तात्मक परिवार पाये जाते हैं। बैगा लम्बे काल तक स्थानान्तरण कृषि करते रहे हैं, चावल, माढ़, कोदो, कुटकी खाने वाले आदिवासी अपनी संस्कृति, आवास व चरित्र के पक्ष में जातीय गुणों को भूले नहीं।

म० प्र० में १९८१ की जनगणना में ४६ जनजातियाँ उपजातियों सहित गणना की गई थी इन्हें अलग-अलग नृजाति समूहों में सूचीबद्ध किया गया है।

आदिवासियों में साक्षरता का स्तर ऊँचा नहीं उठ पाया है जहाँ हमारे देश में ३६ प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है वहीं केवल १६ प्रतिशत आदिवासी साक्षर हो पाये हैं। १९६१ में केवल ८.५४ प्रतिशत साक्षर थे। म० प्र० में यह अनुपात और भी कम है। तथ्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि म० प्र० में आदिवासी खेती पर निर्भर हैं, अधिकांश आदिवासी चावल उगाने वाले प्रदेशों में रहते हैं। उदाहरण के लिए १४ आदिवासी प्रमुख जिलों में पाया गया कि ८ जिले चावल उगाने वाले थे। यहां पर औसतन ४५ प्रतिशत प्रभाग पर वन है, खरीफ मुख्य फसल है लेकिन सिंचित क्षेत्रफल बहुत कम है, न्यूनतम १.२७ प्रतिशत तक। यहाँ के आदिवासी एक फसल उगा लेते हैं जो उनको पारिवारिक उपभोग से अधिक नहीं होता तथा वनोत्पादों का आश्रय लेने से ही जीवन निर्वाह हो पाता है।[३]

म० प्र० में कई जनजातियाँ आदिम समूह के अन्तर्गत रखी गई हैं जैसे अबूझमाड, बैगा, मारिया, पहाड़ी कोरवा, कंवार, शहरिया मुख्य हैं। ये अत्यन्त पिछड़े हुए आदिम समुदाय हैं, इनके विकास के लिए विशेष कार्यक्रम चल रहे हैं।[४]

विकास की प्रावस्था

आदिवासी क्षेत्र के विकास अवरचना के लिए संकेतक बनाए गए हैं जो निम्न हैं—[५]

१ पक्की सड़कों की औसत लम्बाई (प्रतिवर्ग कि० मी०)।

२ अस्पताल सुविधा का एक वर्ग कि० मी० क्षेत्र में स्थापना।

३ औसत बिस्तरे।

४ १ कि० मी० क्षेत्र में विद्यालय प्राइमरी, मिडिल, हायर सेकेण्डरी स्कूल।

५ प्रति स्कूल पीछे जनसंख्या (हजार)

६ सिंचित खेती का क्षेत्रफल प्रतिशत

उपरोक्त संकेतकों के आधार पर पटेल ने बताया है कि म० प्र० के सरगुजा, झाबुआ, मण्डला, बस्तर क्षेत्र में राज्य में औसत से कम विकास हो पाया है। वह प्रतिमान सभी जिलों के स्तर पर एक समान नहीं पाया गया परन्तु खेती की निश्चित भूमि का प्रतिशत गैर आदिवासी जिलों में अधिक था। विद्यालय के पीछे जनसंख्या अधिक थी, अन्य संस्थात्मक सुवि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाएं आदिवासी क्षेत्रों में कम स्थापित हो पाई हैं। जहाँ इन्दौर में ७०१ व्यक्तियों के पीछे एक बिस्तर था वहाँ बस्तर में ३१५८ व्यक्तियों के पीछे, सरगुजा में ३५४१ व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल बिस्तरे थे। १ लाख जनसंख्या के पीछे एक अस्पताल आदिवासी क्षेत्रों में जबकि गैर आदिवासी क्षेत्रों में ३५०० व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल था।

इस प्रकार अदिवासी क्षेत्रों में विकास की अवस्था अभी काफी पीछे है जिसे तेज किया जाना चाहिए।

आदिवासी विकास अनसूचित जनजातियों की प्रगति के दौर में लाने की अवधारणा है। ५१.७३ मिलियन (७.७६ प्रतिशत) भारतीय जनसंख्या आदिवासी है जो मुख्यतया केन्द्रीय एवं पूर्वी क्षेत्र में सघन सकेन्द्रित है। मध्यप्रदेश में २२.७९ प्रतिशत (१९८१) जनसंख्या आदिवासी है। इसी प्रकार हमारे देश में दो तिहाई आदिवासी वहीं बसे हैं जहां इनकी जनसंख्या ज्यादा है। आदिवासीपट्टी महाराष्ट्र के थाने जिले से मणिपुर के टिंगा-नेपाल जिले तक फैली है। हिमालय तराई में भी आवृत्त दक्षिणी क्षेत्र की दूसरी आदिवासी पट्टी मौजूद है। आदिवासी समुदाय के सकेन्द्रण की भौतिक परिप्रेक्षता के साथ ऐतिहासिक तथ्य भी जुड़े हैं। राय वर्मन (१९८५) ने इन्हें ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ३ वर्गों में विभाजित किया है। इस तरह देश के कुल क्षेत्रफल में २० प्रतिशत आदिवासी क्षेत्र हैं उसमें ७० प्रतिशत खनिज संसाधन पाये जाते हैं। आदिवासी विकास के दर्शन में यह धारणा कि इनकी संस्कृति, सभ्यता अलग-अलग है, ये हिन्दू व्यवस्था के बाहर हैं तथा आदिम हैं आज भी पाई जाती है।

आदिवासी विकास के वर्तमान चित्र को उभारने में कई तत्वों का योगदान गिनाया जा सकता है जैसे–लोकतन्त्रीय राज्य एवं कल्याणकारी शासन, राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली में प्रवेश, आरक्षण, शिक्षा का प्रसार, आधुनिकीकरण के दबाव प्रेरक, सामाजिक परिवर्तन के अन्य कारक। सन् पचास के पश्चात आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगीकरण बढ़ा, खनिज संसाधन का दोहन शुरू हुआ जिस पर आदिवासी अर्थव्यवस्था आधारित थी। आदिवासी क्षेत्रों में वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया तेजी से चालू हुई जबकि नगरीयकरण भी थोड़ी धीमी गति का था। शिक्षा का अपेक्षाकृत धीमा लोकव्यापीकरण हुआ। १९७१ तक केवल ३.१५ प्रतिशत आदिवासी शिक्षित हो पाये थे। १९५१ से १९८१ के बीच आदिवासी क्षेत्रों में बृहद औद्योगीकरण की प्रक्रिया से आदिवासी क्षेत्रों में गैर आदिवासी जनसंख्या बढ़ी है। म० प्र० के बिलासपुर, बस्तर संभागों से मौसमी प्रवास आदिवासियों का हो रहा है। इनके बंधुआ मजदूरी करने के भी प्रकरण सामने आये हैं, ये खेत मजदूर परिस्थिति की बाध्यताओं से वापसी प्रवसन करते हैं।

आदिवासियों में श्रम शक्ति खेती के बाहर नहीं जा पाई और जो वृद्धि गैर कृषि रोजगार क्षेत्र में हुई है वह प्राकृतिक क्षेत्र के लागत आधार पर ही हुई है। १९८१ में तथा १९७१ में श्रम शक्ति का ढांचा इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—१.०

कर्मकर	१९८१	१९७१
I कृषक	५४.९३ %	४१.५८ %
II कृषि मजदूर	३२.६७ %	२८.९४ %

इस प्रकार १९७१ की तुलना में कृषि मजदूर भी बढ़ गये हैं और कृषक भी तुलनात्मक रूप से अधिक हो गये है। ये दो प्रघटनाओं को इंगित करता है १–कृषि जोती का विखण्डन एवं आदिवासियों के हाथ से भूमि निकल जाना, २–भूमि हीनता के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर खेत मजदूरी एवं शोषण का शिकार।

औद्योगीकरण से मानव संस्कृति सम्बन्ध बेडौलपन के शिकार हो गये हैं। कम से कम सबसे अधिक परेशानी स्थानान्तरण कृषि करने वालों की हुई है। आंकड़ों के अनुसार ३.५५ लाख परिवार स्थानान्तरण कृषि में जीवन यापन कर रहे थे।

आदिवासी उपयोजना एक क्षेत्र विकास कार्यक्रम है। इसमें २ करोड़ ६६ लाख ९३ हजार आदिवासी लाभान्वित हो रहे हैं। आदिवासी उपयोजना १९७४-७५ में प्रारंभ की गई। यह योजना उन राज्यों में शुरू की गई जहां पर किसी खास विशेष क्षेत्र जिले, तहसील, ब्लाक में आदिवासी लोग रहते हैं। इस योजना के तीन खण्ड हैं[८]—

१ पांचवीं योजना में तैयार मूल आदिवासी उपयोजना मुख्यतः वे तहसील खण्ड स्तर के क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित क्षेत्र एवं विकासखण्ड भी हैं, कम से कम ५० प्रतिशत आदिवासी हैं।

२ छठी योजना के दौरान बनाए गए आदिवासी जनसंख्या बाहुल्य क्षेत्र जिनकी १० हजार से अधिक जनसंख्या व आदिवासी ५० प्रतिशत से अधिक हो।

३ आदिम जनजाति समुदाय।

छठवीं पंचवर्षीय योजना तक १६ राज्यों तथा २ केन्द्र शासित प्रदेशों में आदिवासी उपयोजना चालू थी। २४५ संशोधित क्षेत्र विकास एजेन्सी के जनजाति बाहुल्य उपक्षेत्र (पाकेट) चिन्हित कर लिए गए थे। म० प्र० (७४.८३ प्रतिशत) के अतिरिक्त उड़ीसा में ६८.८ प्रतिशत बिहार में ७६.७५ प्रतिशत, गुजरात में ७२.४२ प्रतिशत एवं राजस्थान में ४३.४७ प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या उपयोजना के अन्तर्गत आ चुकी थी। उ० प्र० में इस योजना के अन्तर्गत परिवार को ही आधार माना गया था। छठवीं योजना के परिवर्तित क्षेत्र विकास नीति के अन्तर्गत १९८२-८३ में २१ अदिवासी क्षेत्र और शामिल किये गये थे, इससे उपक्षेत्रों की संख्या बढ़कर २३५ तथा आदिवासी जनसंख्या ३२.८५ लाख सम्मिलित थी।[९]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे की सारणी २.० अवलोकनीय है

सारणी—२.०

परियोजनाएं	कुल	म० प्र०	उ० प्र०
१ समन्वित आदिवासी वि० प०	१८१	४२	१
२ परि० क्षेत्र वि० अभिकरण	२४५	५६	१
३ अदिम जनजातिसमूह	७२	६	२

छठवीं योजना के दौरान अधिकांश समन्वित परियोजनाएं म० प्र० एवं उड़ीसा में थीं। आदिम जनजाति समूह प्रोजेक्ट उड़ीसा और आँध्र में प्रारंभ किए गए थे। परिवर्तित क्षेत्र विकास के ३८ प्रोजेक्ट आन्ध्र प्रदेश में खोले गए थे। देश के १६ राज्यों व दो केन्द्र शासित प्रदेशों को पांचवीं योजना तक लिया गया था। छठवीं योजना में सिक्किम को भी जोड़ा गया जहां ६५ प्रतिशत तक आदिवासी जनसंख्या परियोजनान्तर्गत लाई गई। राज्य सरकार को कुछ विशिष्ट योजनाएं लागू करने के लिए भी केन्द्र सरकार ने संन्दर्भित किया है जैसे—१—स्थानान्तरण कृषि करने वाली आदिवासियों का पुनर्वास, २—वन ग्रामों का विकास कार्यक्रम, ३—विशेष लोगों से पीड़ित समुदाय के विकास कार्यक्रम, ४—पठारी क्षेत्रों में रहने वाले जनजातियों का पुनर्वास।

आदिम समूह म० प्र० में मुख्यतया अबुझमांड, बैगा, मारिया, पहाड़ी कोरवा, कमार, सहरिया मुख्य हैं। इनके आदिम परिस्थिति के निम्न संकेतक हैं।[१०]

१ खेती पूर्व तकनीक का स्तर, २ साक्षरता का निम्नस्तर

३ निष्क्रिय अथवा कम हो रही जनसंख्या।

पूरे देश में १९८२-८३ में १९ और ऐसे ही आदिवासी समुदायों का चिन्हांकन किया गया था।

आदिवासी उपयोजना के क्षेत्र में म० प्र० अग्रणी राज्य है।[११] यहां पर ४२ परियोजनाएं २२ हजार ६०५ गांवों के लिए १८० विकासखण्डों के साथ २१ जिलों (४ पूर्ण, १७ आंशिक) में चल रही थी। यह ११९.८७ लाख आदिवासी आबादी के ८९.९७ लाख आदिवासी को लाभ पहुंचा रही थीं (१९८१ के आंकड़ें)। राज्य के ३६.९१ प्रतिशत भाग पर उपयोजना लागू हुई है, ५५ उपक्षेत्र (पाकेट) हैं जो ६९२ ग्रामों के १५.३५ लाख आदिवासियों के (१२.३७ प्रतिशत) के हितार्थ क्रियाशील थी।[१२]

म० प्र० सरकार के आदिम जाति, कल्याण विभाग के अन्तर्गत आदिवासियों के लिए विद्यालय, छात्रावास, चिकित्सालय खुले हैं। इस प्रदेश में बस्तर प्रमुख आदिवासी क्षेत्र है। इस क्षेत्र के विकास के लिए केन्द्र सरकार ने ५०० करोड़ रुपये की विशेष योजना स्वीकृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की है। सातवीं योजना में राज्य शासन द्वारा ८०० करोड़ रुपये पहले से प्रावधान किया गया है।[13]

१९८१ में म० प्र० में ५ एकीकृत आदिवासी विकास प्राधिकरणों का गठन किया गया जो बिलासपुर, बस्तर, रीवा, इन्दौर, जबलपुर जिलों में स्थापित किये गये हैं। आदिवासी सलाहकार समिति मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में कार्य करती है जिसमें २० सदस्य होते हैं, १६ विधायक एवं एक संसद सदस्य होते हैं। इस समिति की मीटिंग ६ माह के भीतर योजनाओं के मूल्यांकन हेतु की जाती है।[14] प्रदेश में छठवी पंचवर्षीय योजना में आदिवासी क्षेत्रों में भूमि सुधार, कृषि औजार वितरण, बीज, पेयजल व्यवस्था, आदिवासी बस्तियों का विद्युतीकरण, आयुर्वेदिक अस्पताल एवं सहकारी समितियों, लेम्प सोसायटी का योजनाबद्ध विकास तथा स्थापना की गयी।[15] इस प्रकार दो तिहाई से अधिक आदिवासियों को प्रदेश में योजना के अन्तर्गत लाया गया है जो कि अपने पड़ोसी राज्य उ० प्र० की तुलना में अधिक व्यापक एवं विस्तृत हैं। नीचे की सारणी में यह विवरण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी—३.०

राज्य	आदिवासी जनसंख्या	जिले पूर्ण	जिले आंशिक	विकासखण्ड पूर्ण	विकासखण्ड आंशिक	आदि० उप योजना	जन संख्या	%उ प्र० योजना क्षेत्र	पाकेट संख्या	%आदि जन० राज्य जन० संख्या की
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
म०प्र०	११९.८७	४	१७	१७४	६	४२	८४.९७	३६.९१	५६	१२.७८
उ०प्र०	२.३३	—	१	—	१	१	०.१६	०.३१	१	४.७२
उड़ीसा	५९.१५	३	६	११८	—	२१	३९.२७	४४.२१	३७	७.३८
बिहार	५८.११	२	२	११२	—	१४	४३.२९	२५.०८	४१	८.९९

समस्याएं

मूलतः मध्यभारत का आदिवासी समाज तेजी से परिवर्तन के दौर में है विशेषकर आयोजित परिवर्तन शक्तियाँ अधिक सक्रिय हैं और जहाँ एक और विकास दिखलाई पड़ रहा है वहाँ विकास जनित समस्याएं भी आई हैं। ये समस्यायें आदिवासी समाज में कुछ अधिक गति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित कर रही हैं। पर्यावरण प्रदूशण औद्योगिकरण से बढ़ा है। नई वननीति आदिवासी हितों के विपरीत है। पुलिस, पटवारी, वनरक्षक, स्कूल, बाजार, ये नई संस्थाएं और व्यक्ति भी परिवर्तन के माध्यम बन गये हैं जो कि एक सीमा तक विकसित हो रही हैं। आदिवासी हितों के विपरीत भूमिस्वामित्व एवं पेयजल, ईंधन, निरक्षरता और आदिवासी क्षेत्र में नगरों के विस्तार से उत्पन्न होने वाली समस्यायें मुख्य हैं।

रायवर्मन[16] ने बताया है कि आदिवासी उपयोजना के कुछ कार्यक्रमों का सामाजिक व आर्थिक जीवन में बुरा प्रभाव पड़ा है। सिंचाई परियोजना से आदिवासी उजड़े, उन्हें मुआवजा पूरी मात्रा में नहीं प्राप्त हुआ, प्रवास करने और नई जगह में बसने से इनकी जीवन शैली में उलट-फेर और अस्तव्यस्त हो जाना दिखाई पड़ा है। जिनके पास कोई भूमि नहीं थी वे भी भूमि अधिग्रहण का मुआवजा लेने से वंचित रह गये। आदिवासी अंचलों में आन्दोलन प्रायः इन सब प्रकरणों को लेकर निरन्तर होता रहता है। विकास योजनाओं द्वारा अबुझमाड़ में भूमि सुधार किया गया है, कृषि औजार, बीज दिये गये हैं परन्तु पेयजल की समस्या बनी हुई है। आदिवासी औरतें मीलों दूर से पीने के लिए पानी लाती हैं।

१५ वर्ष पूर्व म० प्र० की बिन्झवार जनजाति का अध्ययन करने पर टी० बी० नायक[17] ने समस्याओं का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। इनके अनुसार भूमि हस्तान्तरण को रोकना भूमि का आवंटन (कृषि योग्य बेकार भूमि) वन नीति, खेती की दुर्दशा में सुधार व उन्नयन जरूरी है। गृह उद्योग गिर रहा है। ऋण ग्रस्तता भी जरूरी है। राज्य सरकारों के कानून का पालन नहीं हो पाता। सहकारिता सफल बनाने के लिए निम्न तत्वों का समावेश किया जाये— [१] पुराने कर्जों की अदायगी [२] आदिवासियों की दिन प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुएं जिसमें अनुयातमक आवश्यकतायें भी सम्मिलित हैं [३] विकास की आवश्यकतायें। स्वास्थ्य, आवास, आवागमन, सभी देखे जांये।

आदिवासी विकास की रणनीति के बारें में कुछ मूलभूत प्रश्न आते हैं जैसे—

१. आदिवासी विकास के मूल उद्देश्य क्या हैं। २. वर्तमान अदिवासी विकास रणनीति से आदिवासियों के बीच क्या घटित हो रहा है। ३. आदिवासी कल्याण बजट का उपयोग बजट सत्र के अंत में जल्द बाजी में होता है या इसका एक निर्धारित व निरंतर निस्तारण होता है। इसके दुरुपयोग की संभावनाएं भी जाननी आवश्यक हैं। ४. आदिवासी कौन है यदि संवैधानिक परिभाषा व अनुसूचित जनजाति वर्गीकरण की कसौटी पर जाएं तो केवल जन्म लेने की घटना पर ही कोई भी व्यक्ति आदिवासी हो जाता है यह शुद्ध प्राणीशास्त्रीय घटना है।

सरकार की वननीति आदिवासी विकास की रणनीति के साथ जोड़ के देखना चाहिए। वनों के उजड़ते जाने से सबसे अधिक नुकसान आदिवासियों को हुआ है। म० प्र० शासन ने म० प्र० आदिम जनजाति [वृक्षों के हित संशोधन] कानून १९६४ प्रवर्तित किया है। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठेकेदार या दूसरे लोग आदिवासियों के खेतों या जमीन पर लगे पेड़ों की बिक्री, कटाई में शोषण सम्बन्धी समस्या रोकने का प्रयास किया जाएगा। आदिवासी ५००० रु० तक की लकड़ी बेच सकता है। हाल के वर्षों में कुछ महत्वपूर्ण कानून सूद व्यापार व भूमिस्थानान्तरण सम्बन्धी पास किए गए हैं जिसका वर्णन निम्नवत् सारणी के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

		मध्य प्रदेश	उत्तर प्रदेश
भूमिस्थानान्तरण	अदिवासी की भूमि का कलेक्टर के आदेश के बगैर स्थानान्तरण नहीं होगा, भूमि विरसन पर रोक	म० प्र० लैण्ड एलीनेशन एक्ट, १९५९	उ० प्र० जमींदारी एक्ट संशोधन, अध्यादेश १९८१ सेक्शन १५७.२११
सूद व्यापार	महाजनों के ऋण (कर्जों) दबाव व शोषण से मुक्ति का प्रविधान ।	म० प्र० अ० ज० जा० ऋण रिलीफ संशोधन एक्ट १९६३, म० प्र० मनी लेण्डिग एण्ट, म० प्र० लैण्ड यूजरर लोन एक्ट, म० प्र० ऋणाधार संरक्षण एक्ट, म० प्र० अ० ज० जा० ऋण सहायता अध्यादेश १९६६, म० प्र० अनुसूचित जा० साहूकार एक्ट १९७२	उ० प्र० मनीलैण्डर एक्ट १९७६, उ० प्र० डेट्रिलीफ एक्ट, १९७७

आदिवासियों के लिए सूद व्यापार सम्बन्धी शोषण से बचाने के कानून प्रायः अधिकांश राज्यों में पास किए गए हैं परन्तु इनसे कोई अधिक व्यावहारिक सफलता नहीं हो पा रही है। सरकारी ऋण या सहायता समय पर मिलना आवश्यक है।

विकास रणनीति के नये सुझाव

अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए गठित कार्यकारी अध्ययन दल ने महत्वपूर्ण सुझाव दिया है। इन्होंने पाया है कि अदिवासियों की मुख्य समस्याएं श्रम का असंगठित ढांचा, मौसमी बेरोजगारी, न्यूनतम मजदूरी मिलने में कठिनाई व प्रवजन से जुड़ी समस्याएं मुख्य हैं। सुझाव निम्नवत हैं।[१८]

१. बिना उनकी पहचान, जीने का तरीका व संस्कृति को बदले उन्हें विकसित किया जाये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. एक उचित प्रशासनिक ढांचा व कार्मिक नीति बनाई जाये।

३. मौजूदा योजनाओं के क्रियान्वयन में अधिक तेजी लाई जानी चाहिए।

४. इन क्षेत्रों में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अधिक सुविधाएं दी जायें।

५. संसाधनों के वेहतर इस्तेमाल हेतु परियोजनाएं बनाई जानी चाहिए।

१९८३ में गृहमंत्री सम्मेलन में जनजातीय उपयोजना कार्यक्रम के कामकाज में सुधार लाने के लिये नये कार्यक्रम दिये गये थे। (१) व्यक्तिगत परिवार के लिए लाभकारी कार्यक्रम की विस्तृत योजना, (२) निगरानी व्यवस्था को स्थाई बनाना, अंतः विभागीय सहयोग, (३) आंकड़ों में स्पष्टता और कुल लाभ को दो बार गिनने से बचने के लिए कार्ड रखना (४) जनजातीय क्षेत्रों में योग्य व निष्ठावान अधिकारियों की नियुक्ति।[११]

उपरोक्त विकास की रणनीति सम्बन्धी सुझावों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी उपयोजना, संशोधित क्षेत्र विकास कार्यक्रम, विशेष आदिम जनजाति विकास योजना आदि कार्यक्रमों का तिरंतर मूल्यांकन एवं मानिटरिंग होना आवश्यक है। सक्रिय तथा सहयोगात्मक होने पर ये योजनाएं आदिवासियों के विकास की उचित रणनीति बनेगी।

विकास प्रक्रिया में आदिवासी समुदाय की सहभागिता

वर्तमान समय नें आदिवासी विकास की बृहद, मध्यम एवं लघुस्तरीय योजनाएं चल रही हैं। सरकारी ऋणों, योजना अनुदान को किसी तरह प्राप्त करने या लेने की प्रवृत्ति विकास प्रक्रिया में पूर्णसहभाग के दर्शन से परे अवांछनीय प्रवृत्ति है। इसी तरह योजनाराशि का निस्तारण एवं वितरण ही एक मात्र कर्तव्य शासकीय पक्ष में नहीं होता अपितु सहभागिता विकास की वास्तविक प्रतिबद्धता के साथ होनी चाहिए। प्रशासन तंत्र के साथ हितग्राही समूह आदिवासी भी सहभागिता महसूस करें। मूल्याँकन अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि आदिवासियों को योजनाओं का पूर्णरूपेण लाभ नहीं प्राप्त हो रहा है। उदाहरण के लिए सामूहिक सम्पत्ति प्रणाली वाले क्षेत्र में व्यक्ति विशेष के नाम भूमि हस्तान्तरण, पंचायत में गैर आदिवासियों का दबाव एवं निर्णय प्रक्रिया में इनका कमजोर महत्व विकासात्मक दृष्टिकोण से लाभकारी प्रारूप नहीं बनाता। बल्कि यह होना चाहिए कि ये व्यवस्था आदिवासी प्रकृति के अनुकूल हो, दूसरे विकास निर्माण उन्हीं के लिए निश्चित हो तथा नीतियाँ व कार्यक्रम में आदिवासी यथार्थता का परिवेश हो।

लाभांशी सामाजिक आर्थिक परिप्रेक्ष में क्षेत्र विशेष का परिवेश विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में मदद दे सकता है। संस्थाएं आर्थिक एवं वैज्ञानिक रुझान को बढ़ा सकती हैं। साथ ही परम्परागत आदिवासी संगठन विकास प्रक्रिया के मजबूत संवाहक बन सकते हैं, न्याय प्रशासन एवं निर्णय प्रक्रिया में सीधे आदिवासी मुखिया उपयोगी संवाहक व्यक्तित्व है जो समुदाय को कल्याणकारी योजनाओं से जोड़ सकता है। म० प्र० के आदिवासी क्षेत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटेल ऐसा ही व्यक्ति है जो गोंड जनजाति के लाभार्थ सरकारी कार्यक्रमों को अपने समुदाय तक विस्तारित कर सकता है एवं सहभागिता भी उन्नत ढंग से दे सकता है।[२०]

पंचायत जनजाति विकास में महत्वपूर्ण अधिकरण है। आदिवासी क्षेत्रों में प्रशासन का 'फीड बैक' बढ़ाया जाना जरूरी है। अपने क्षेत्र विशेष के विकास के लिए आदिवासी क्या चाहते हैं? उनका दृष्टिकोण क्या है, जानना जरूरी है। यदि विकासखण्ड स्तर पर प्रतिनिधित्व कम हो तो जिला स्तरीय कमेटी निर्मित करके आदिवासी दृष्टिकोण को प्रत्येक योजना के परिप्रेक्ष्य में सूचीबद्ध किया जाना चाहिए।[२१] जैसे— भूमि अधिग्रहण या सुधार का कार्यक्रम, सूद व्यापार का कुचक्र, ऋण विमुक्ति, बंधुआ मजदूरी प्रथा, बाजार व्यवस्था, साप्ताहिक बाजार में नियंत्रण तथा अन्य स्थानीय समस्याएं। आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगीकरण के कार्य तेजी से चल रहे हैं इससे नए तरीकों के प्रसारण हेतु सहभागिता का विस्तार किया जाना आवश्यक है। औद्योगिक परियोजनाओं के द्वारा आदिवासियों को रोजगार ही नहीं बल्कि औद्योगिक जीवन प्रणाली का भी लाभ मिलता है और वे इस नए जीवन प्रणाली के साथ शीघ्रता से समायोजित नहीं हो पाते जो कि समस्यात्मक रूप में विकास प्रशासकों के सामने एक चुनौती है।

संदर्भ

१ कुमार, प्रमोला (१९८३) मध्य प्रदेश एक भौगोलिक अध्ययन, म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ १७२

२ जनगणना, (१९७१) द्वतीय

३ पटेल, एम० पी० (१९७५) लैण्ड प्रावलम्स इन ट्राइबल इण्डिया। प्रोग्रेस पब्लिशर्स, भोपाल

४ एम० पी० गवर्नमेन्ट, (१९८१-८२) आदिम जाति विभाग प्रकाशन

५ पटेल, एम० पी०, वही पृ० ७७

६ जनगणना, (१९८१) प्राइमरी सेंसस, अबस्ट्रेक्ट परिशिष्ट II पृ० २९ स्पेशल टेबल्स आन शेड्यूल्ड ट्राइब्स म. प्र. सीरीज़

८ पटेल, एम० पी० (१९८२) प्लानिंग स्ट्रेटजी फार ट्राइबल डेवलपमैंट, इंटर इंडिया पब्लिकेशन,

९ कमेटी रिपोर्ट, पूर्व उद्धृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० ट्राइबल सब प्लान, छठी योजना, म० प्र० शासन, प्रकाशन

११ रिपोर्ट. वही. प्र० २०४ परिशिष्ट—II

१२ बर्मन, राय (१९८५) एसेज़ इन ट्राइबल डेवलपमेन्ट, (जनवरी ५, १९८५) मेनस्ट्रीम

१३ दैनिक नव भारत, जबलपुर (१८ नवम्बर, १९८५)

१४ रिपोर्ट आफ दि वर्किंग ग्रुप आन दि डेवलपमेन्ट आफ शिड्यूल्ड ट्राइब एरिया ड्युरिंग सेवन्थ प्लान, (दिसम्बर, १९८४) गृह मंत्रालय, परिशिष्ट पृष्ठ २५१

१५ सिंह, भूपेन्दर (नवम्बर ५, १९८३) कोआपरेटिव इन ट्राइबल एरियाज, मेनस्ट्रीम, पृष्ठ २४-२७

१६ बर्मन, राय (१९८५) वहीं

१७ नायक, टी० वी० (१९७२) वारह भाई बिझंवार, मध्य प्रदेश की एक आदिम जनजाति का नेतृत्व, शास्त्रीय अध्ययन, म० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

१८ समिति की रिपोर्ट, सातवीं योजना हेतु पूर्व उद्धृत

१९ वही

२० रिपोर्ट आफ दि वर्किंग ग्रुप आन डेवलपमेन्ट आफ शिड्यूल्ड ट्राइब्स ड्युरिंग सेवन्थ फाइव ईयर प्लान, १९८५-१९९०, (दिसम्बर १९८४) गृहमंत्रालय, भारत सरकार

२१ उपरोक्त रिपोर्ट देखिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषक समाज में प्रौद्योगिकीय भिन्नता एवं प्रयोग (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

सुरेन्द्र नाथ पाठक

प्रस्तावना

'प्रौद्योगिकी' शब्द अपने आप में एक बहुपक्षीय अवधारणा है जिसे अस्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है। मैरिल के अनुसार 'प्रौद्योगिकी' का अर्थ है, उपयोग के लिए दक्षता, ज्ञान और ढंग।[1] प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत वे सभी निर्देश, विधियाँ और साधन शामिल हैं जो कि हर प्रकार की सामग्रियों और पदार्थों के भौतिक, यांत्रिक और रसायनिक प्राप्ति के लिए और उनके उपचार के लिए हैं, साथ ही अर्थ व्यवस्था की विभिन्न शाखाओं में तैयार उत्पादों के पूर्ण विवरण के लिए भी।[2] बोरोनिश्क के अनुसार प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत कार्य करने की विधियों का सिस्टेमाइजेशन भी सम्मिलित है।[3]

मार्क्स ने 'जिन्दा रहने या जीवन बनाए रखने के लिए उत्पादन के उपकरणों के रूप में पशुओं तथा पौधों के अवयवों के बनने' को प्राकृतिक शिल्प विज्ञान माना था और यह भी कहा था कि 'शिल्प विज्ञान उस तरीके या विधि का उद्घाटन करता है जिसके द्वारा मनुष्य प्रकृति से निपटता है, अर्थात् यह उत्पादन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह जिन्दा रहता है ?[4]

समाजशास्त्रीय भाषा में प्रौद्योगिकी शब्द का प्रचलन आधुनिक औद्योगिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में ही किया जाता रहा है, परन्तु वर्तमान समय में इसका प्रयोग और भी सीमित होकर मुख्यतः दो रूपों में किया जाता है—

(अ) विशुद्ध अर्थात् मुख्यतः सैद्धान्तिक विज्ञान से अभियन्ताओं तथा शिल्प वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक उपलब्धियों के औद्यौगिक प्रयोग को अलग करने के लिए।

(ब) वैज्ञानिक सिद्धान्तों का हवाला दिए बिना औद्योगिक विधियों तथा उपकरणों को उन्नत करने या मशीनी आविष्कार करने के व्यवहारिक कार्यों के लिए।[5]

डा० सुरेन्द्र नाथ पाठक, एम-२/१७, कैनाल कालोनी, उदयगंज, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश होने के कारण प्रमुख रूप से गांवों का देश है और गांवों की उन्नति तभी सम्भव है जब उसके लिए क्रमबद्ध पद्धति से योजना बनाई और लागू की जाय। समुचित रूप से ऐसा न हो पाने के कारण ही भारतीय गांव आज भी पिछड़े हुए हैं तथा ग्रामवासियों का जीवन स्तर बहुत निम्न है। कृषि की वैज्ञानिक पद्धति के अभाव में आज भी पैदावार बहुत कम है, फलस्वरूप आय के स्रोत तथा पूँजी की कमी की समस्या कृषक समाज में बहुत विषम है। परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति औसत आय भी कम है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि कृषि के क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रसार पर समुचित ढंग से ध्यान यथा समय नहीं दिया गया, साथ ही साथ कृषकों के पास इनको प्रयुक्त करने के लिए साधन भी नहीं उपलब्ध कराए गए। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समुदाय में अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित हैं इसलिए उन्हें इस दिशा में विशेष जानकारी नहीं हो पायी है। दूसरी तरफ धर्म प्रधान जीवन वृत्ति होने के कारण कुछ विचार और विश्वास वैज्ञानिक उपलब्धियों को प्रयुक्त करने के मार्ग में अड़चने उत्पन्न करती हैं। ग्रामवासी किसी भी नवीनता को बहुत कठिनता से तथा हिचक के साथ स्वीकारते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सरकार ने गांवों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है। इस दिशा में पंचवर्षीय योजनाओं तथा ग्राम्य विकास योजनाओं के माध्यम से गाँवों के सामाजिक एवं आर्थिक तथा राजनैतिक विकास हेतु आधुनिकीकरण और कृषि प्रौद्योगिकी को विकसित करने पर बल दिया गया। अनेक कृषि तथा प्रौद्योगिक विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना की गई। अकेले उत्तर प्रदेश में इस समय तीन कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय हैं यथा : गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय पन्तनगर; नैनीताल, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कानपुर एवं आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, फैजाबाद। ये विश्वविद्यालय प्रदेश के कृषि एवं प्रौद्योगिक विकास की दिशा में निरन्तर प्रगति कर रहे हैं एवं नए नए प्रयोगों तथा परीक्षणों में संलग्न हैं। इनमें कृषि के क्षेत्र में विभिन्न नवीन अनुसंधान कार्य किए गए और उनके परिणाम आश्चर्यजनक रूप से सामने आए, जिनके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता था। कृषि सम्बन्धी प्रौद्योगिकी में मुख्य रूप से उन्नतशील रसायनिक खादें, फसलों की बीमारी और कीड़ों से बचाने वाली दवाओं, नवीन संयंत्रों एवं उपकरणों को सम्मिलित किया जाता है। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में बांट सकते हैं—

(१) कार्य या श्रम बचत सम्बन्धी प्रौद्योगिकी

इसमें ट्रैक्टर, नलकूप, थ्रेशर, खेत जोतने वाले उन्नत किस्म के हल, डनलप बैलगाड़ी, पम्पिग सेट, रहट, ट्रक आदि आते हैं।

(२) भूमि बचत या उत्पादन सम्बन्धी प्रौद्योगिकी

इसमें रसायनिक खादें, कीटनाशक दवाएं, उन्नत बीज आदि आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रायः यह देखा गया है कि जब कभी आधुनिकीकरण का प्रसार गाँवों में हुआ है और नई विधियों तथा उपकरणों को प्रयोग में लाया गया है, तो लोगों के जीवन स्तर उन्नत हुए हैं। ग्रामीणों की समझ में जब भी यह बात आई है वे स्वयं अपनी स्थिति सुधारने हेतु प्रयत्नशील हुए हैं और साथ ही साथ उन्होंने नई विचारधाराओं तथा अन्वेषणों का मार्ग प्रशस्त किया है।[6] यह भी देखा जा चुका है कि प्रौद्योगिकी ने सदैव नवीन आविष्कारों को उत्प्रेरित किया है जिनसे सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा मिलता है।[7] ग्रामीण सामाजिक जीवन में सामाजिक अन्तः क्रियाएं तीन क्षेत्रों में होती हैं, यथा व्यक्तियों का भूमि से सम्बन्ध, व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध और संस्थात्मक सम्बन्ध।[8] बरट्रेन्ड के अनुसार तीनों श्रेणियों में प्रौद्योगिकीय प्रभाव के फलस्वरूप ग्रामीण सामाजिक संगठन में उत्पन्न परिवर्तनों को सही ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।[9] सबसे प्रमुख सम्बन्ध जनसंख्या और भूमि में पाया जाता है जिस पर सम्पूर्ण जीवन निर्भर करता है। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के फलस्वरूप केवल उत्पादन में ही वृद्धि नहीं होती वरन् सामाजिक जीवन का लगभग प्रत्येक क्षेत्र प्रभावित होता है। इसके विकास के साथ-साथ सामाजिक जीवन के आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और वैचारिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन होने लगते हैं।[10] भारतीय समाज के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव शून्य है तथा अधिकांश क्षेत्रों में इसके विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। अनेक क्षेत्रों में अभी भी प्रौद्योगिकी के विकास के सन्दर्भ में नाना प्रकार की कठिनाइयां और अड़-चने हैं, जिसका सबसे बड़ा कारण वहाँ की सामाजिक व्यवस्था है।

उत्तर प्रदेश में जीवन यापन का प्रमुख व्यवसाय कृषि है। औद्योगिक विकास की दृष्टि से यह प्रदेश देश के अन्य प्रदेशों से बहुत पीछे है जिसके कारण इसकी गणना देश के पिछड़े प्रदेशों में होती है। जनसंख्या की दृष्टि से यह भारतवर्ष का सबसे बड़ा प्रदेश है। इसके कई जनपद पहाड़ी क्षेत्रों में हैं जहाँ पर कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है। मैदानी भागों में भी प्रायः बाढ़ और सूखे के प्रकोप से अधिकांश फसलें नष्ट हो जाती हैं। उत्तर-प्रदेश को तीन भागों में विभाजित किया गया है यथा : पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश एवं पहाड़ी क्षेत्र। पूर्वी उत्तर प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में अधिक पिछड़ा है क्योंकि यहाँ प्रारम्भ से ही कुछ बड़े बड़े जमींदार और तालुकेदार रहे है जिनके पास लगभग सम्पूर्ण भूमि का स्वामित्व था तथा शेष जनसंख्या भूमिहीन थी, जिनकी जनसंख्या कुल जन-संख्या की तीन चौथाई से भी अधिक थी। जमींदारी उन्मूलन के बाद इन्हें जमीन का स्वा-मित्व मिल गया परन्तु इनकी आर्थिक स्थिति दयनीय ही रही। भूमि कम होने तथा जन-संख्या में निरन्तर वृद्धि के फलस्वरूप शासन ने कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया और इस तथ्य पर भी विचार किया गया कि जो भी भूमि उपलब्ध है, उसी को इस तरह से प्रयोग में लाया जाय कि कम से कम भूमि में अधिक से अधिक उत्पादन किया जाय। फलस्वरूप कृषि के क्षेत्र में अनेक अनुसंधान कार्य किए गए और नई प्राविधियों तथा प्रौद्योगिकी का अन्वेषण किया गया जिनके प्रयोग से कम से कम भूमि पर अधिकाधिक उत्पादन किया जा सके।

किसी भी तकनीक का प्रयोग करने से पहले उसके सम्बन्ध में जानकारी होना आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध होने के उपरान्त उसके सम्बन्ध में लोग एक धारणा बनाते हैं जिसमें उसके गुणों तथा दोषों पर विचार करते हैं। जब यह संतुष्टि हो जाती है कि इसके प्रयोग से हानि की तुलना में लाभ अधिक है अथवा इससे लाभ ही लाभ है तो उसे प्रयोग में लाया जाने लगता है। अतः कृषक समाज में उन्नतशील कृषि प्रौद्योगिकी की जानकारी, उसके प्रति विचार, प्रौद्योगिकी को अपनाने तथा न अपनाने और उसके प्रति उदासीनता के कारणों, उनके प्रयोग की मात्रा, जानकारी तथा उसके स्रोत एवं आयु, शिक्षा, आय, भूमि, परिवार का स्वरूप तथा इनका प्रौद्योगिकी से क्या सम्बन्ध है और ये एक दूसरे को कहाँ तक प्रभावित करते हैं, को ज्ञात करने के उद्देश्य से यह अध्ययन किया गया।

पद्धति

इस अध्ययन में निम्न पाँच को उन्नत प्रौद्योगिकी माना गया है। क्योंकि यदि इनका प्रयोग उचित रीति से पर्याप्त मात्रा में किया जाय तो निश्चय ही उत्पादन बढ़ेगा, फलस्वरूप कृषकों की आय बढ़ेगी एवं जीवन स्तर भी उच्च होगा--

१ उन्नतशील (आधुनिक) कृषि उपकरण।
२ रसायनिक खाद।
३ उत्तम पशुधन।
४ उन्नत बीज।
५ कीटनाशक दवाएं।

प्रश्नगत अध्ययन हेतु बाराबंकी जनपद के बंकी तथा देवा दो विकास खण्डों के दो-दो गाँव क्रमशः बनवा (१८४ परिवार), फैजुल्लागंज (१४७ परिवार) तथा मलूकपुर (२१३ परिवार) और बीकर (११८ परिवार) का चुनाव किया गया। इन विकास खण्डों और गांवों का चुनाव इस प्रकार किया गया कि एक विकास खण्ड जनपद मुख्यालय के सन्निकट का हो और उसके गाँव विकास खण्ड मुख्यालय के सन्निकट हों और दूसरा विकास खण्ड जनपद मुख्यालय से अपेक्षाकृत अधिक दूरी का हो और उसके गाँव विकास खण्ड मुख्यालय से दूर के हों जिससे कि तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दोनों के अन्तर को स्पष्ट किया जा सके। तत्पश्चात् दैव निदर्शन प्रणाली द्वारा कुल तीन सौ परिवारों का चयन किया गया जिनके मुखिया का साक्षात्कार करके साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से समंक संकलित किया गया। सभी उत्तरदाता अपने परिवार के मुखिया और पुरुष सदस्य थे। अधिकांश उत्तरदाता प्रौढ़, वृद्ध, विवाहित तथा अशिक्षित थे जिनमें से ५९-३ प्रतिशत हिन्दू तथा ४०-७ प्रतिशत मुसलमान थे। समंक संकलन वर्ष १९८३-८४ में किया गया।

प्राप्त समंकी का विवरण एवं विश्लेषण

सारणी संख्या १ में उपर्युक्त पांचों प्राविधियों की जानकारी के सम्बन्ध में प्राप्त आंकड़ों को दर्शाया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी १

उन्नतशील प्रौद्योगिकी की जानकारी

क्रमांक	उन्नत प्रौद्योगिकी	विकास खण्ड बंकी जानकारी है	विकास खण्ड बंकी जानकारी नहीं है	विकास खण्ड देवा जानकारी है	विकास खण्ड देवा जानकारी नहीं है
१	उन्नत कृषि उपकरण	१४५ (९६-७)	०५ (३-३)	१४० (९३-३)	१० (६-७)
२	रासायनिक खाद	१५० (१००-०)	००-००	१५० (१००-०)	००-००
३	उन्नतशील बीज	१४५ (९६-७)	५ (३-२)	१४० (९३-३)	१० (६-७)
४	उत्तम पशुधन	१०० (६६-७)	५० (३३-३)	९० (६०-०)	६० (४०-०)
५	कीटनाशक दवायें	११० (७३-३)	४० (२६-७)	१०० (६६-७)	५० (३३-३)

विकास खण्ड बंकी की निदर्श जनसंख्या में ९६-७ प्रतिशत लोगों को उन्नत कृषि उपकरणों की जानकारी है तथा ३-३ प्रतिशत को नहीं जबकि विकास खण्ड देवा में यह संख्या क्रमशः ९३-३ एवं ६-७ प्रतिशत है। रसायनिक खादों की जानकारी दोनों विकास खण्डों में शत प्रतिशत लोगों को है। उन्नतशील बीजों की जानकारी बंकी विकास खण्ड में ९६-७ प्रतिशत लोगों को है तथा ३-३ प्रतिशत उत्तरदाता इससे अनभिज्ञ हैं, जबकि देवा विकास खण्ड में ९३-३ प्रतिशत लोगों को इसकी जानकारी है और ६-७ प्रतिशत को नहीं है। उत्तम पशुधन की जानकारी बंकी विकास खण्ड में ६६-७ प्रतिशत लोगों को है और ३३-३ प्रतिशत लोगों को नहीं परन्तु देवा में यह संख्या क्रमशः ६० प्रतिशत एवं ४०-० प्रतिशत है। कीटनाशक दवाओं की जानकारी बंकी विकास खण्ड में ७३-३ प्रतिशत को जबकि इसकी तुलना में देवा विकास खण्ड के गाँवों में ६३-७ प्रतिशत लोग इससे भिज्ञ हैं। इससे स्पष्ट है कि बंकी विकास खण्ड के जनपद मुख्यालय से अधिक समीप होने के कारण यहाँ के निवासियों को आधुनिक प्रगति की जानकारी अतिशीघ्र हो जाती है परन्तु देवा विकास खण्ड के दूर होने के कारण वहां के लोगों को अपेक्षाकृत कम जानकारी है।

उत्तरदाताओं से उन्नतशील प्रौद्योगिकी के बारे में उनकी राय जानने का प्रयास किया है कि वे इसे अपनाने के पक्ष में हैं अथवा विपक्ष में तथा प्राप्त आँकड़ों को सारणी संख्या २ में दर्शाया गया है। अधिकांश उत्तरदाताओं ने इसके पक्ष में अपनी राय दी है। दोनों विकास खण्डों की तुलनात्मक स्थिति का विश्लेषण करने से स्पष्ट हुआ कि बंकी विकास खण्ड के दोनों गाँवों में ९८-० प्रतिशत लोग उन्नत कृषि उपकरणों को अपनाने के पक्ष में हैं जबकि देवा में यह प्रतिशत ९३-३ है। रसायनिक खादों के पक्ष में बंकी विकास खण्ड में शत प्रतिशत जनमत है जबकि दूसरे विकास खण्ड में ९८-७ प्रतिशत उत्तरदाता इसके पक्ष में हैं। उन्नतशील बीजों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—२

उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रयोग के प्रति विचार

क्रमांक	उन्नत प्रौद्योगिकी	बंकी विकास खण्ड पक्ष	बंकी विकास खण्ड विपक्ष	देवा विकास खण्ड पक्ष	देवा विकास खण्ड विपक्ष
१	उन्नत कृषि उपकरण	१४७ (९८-०)	३ (२-०)	१४० (९३-३)	१० (६-७)
२	रसायनिक खाद	१५० (१००-०)	० ०	१४८ (९८-७)	२ (१-३)
३	उन्नतशील बीज	१४८ (९८-७)	२ (१-३)	१४५ (९६-७)	५ (३-३)
४	उत्तम पशुधन	१५० (१००-०)	० ० ०	१५० (१००-०)	० ० ०)
५	कीटनाशक दवाएं	१५० (१००-०)	० ० ०	१५० (१००-०)	० ० ०)

के सम्बन्ध में यह संख्या क्रमशः ९८-७ एवं ९६-७ प्रतिशत है परन्तु उत्तम पशुधन एवं कीटनाशक दवाओं के पक्ष में दोनों विकास खण्डों में शत प्रतिशत उत्तरदाता हैं।

उत्तरदाताओं से उसे जानने का प्रयास किया गया कि कितने लोगों ने उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाया है तथा प्राप्त आकड़ों को सारणी—२ में दर्शाया गया है। प्रौद्योगिकी को अपनाने में भी दोनों विकास खण्डों में अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ। उन्नतशील कृषि उपकरणों को बंकी विकास खण्ड में ७३-३ प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा प्रयुक्त किया जा रहा है जबकि विकास खण्ड देवा में ५३-३ प्रतिशत लोगों द्वारा। रसायनिक खादों के सन्दर्भ में

सारणी—३

उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग

क्रमांक	प्रौद्योगिकी	विकास खण्ड बंकी हाँ	विकास खण्ड बंकी नहीं	विकास खण्ड देवा हाँ	विकास खण्ड देवा नहीं
१	उन्नत कृषि उपकरण	११० (७३-३)	४० (२६-७)	८० (५३-३)	७०(४६-७)
२	रसायनिक खाद	१४० (९३-३)	१० (६-७)	१३० (८६-७)	२०(१३-३)
३	उन्नतशील बीज	७५ (५०-०)	७५ (५०-०)	७० (४६-७)	८० (५३-३)
४	उत्तम पशुधन	५० (३३-३)	१०० (६६-७)	४० (२६-७)	११० (७३-३)
५	कीटनाशक दवायें	८० (५३-३)	७० (४६-७)	७० (४६-७)	८० (५३-३)

यह प्रतिशत क्रमशः प्रतिशत लोगों द्वारा। रसायनिक खादों के सन्दर्भ में यह प्रतिशत क्रमशः ९३-३ प्रतिशत एवं ८६-७ प्रतिशत है। उन्नतशील बीजों का प्रयोग प्रथम विकास खण्ड में ५०-०प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा किया जा रहा है जबकि द्वितीय में ४६-७ प्रतिशत उत्तरदाताओं द्वारा/कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में यह प्रतिशत क्रमशः ५३-३ एवं ४६-७ प्रतिशत है। उन्नतशील, बीज, उतम पशुधन एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग दोनों ही विकास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—४

उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रति उदासीनता के कारण

क्रम सं०	प्रौद्योगिकी	उदासीनता के कारण: बंकी विकास खण्ड					देवा विकास खण्ड				
		आर्थिक कठिनाई	सरलता से न मिलना	अनभिज्ञता	बेरोजगारी में वृद्धि	भूमि की कमी	आर्थिक कठि०	सरलता से न मिलना	अनभिज्ञता	बेरोज-गारी में वृद्धि	भूमि की कमी
१	उन्नत कृषि उपकरण	२० (५०-०)	५ (१२-५)	५ (१२-५)	२ (५-०)	८ (२०-०)	४० (५७-१)	६ (८-६)	१० (१४-३)	४ (५-७)	१० (१४-३)
२	रासायनिक खाद	१० (१००-०)	—	—	—	—	२० (१००-०)	—	—	—	—
३	उन्नतशील बीज	५५ (७३-३)	१५ (२०-०)	५ (६-७)	—	—	६० (७५-०)	१० (१२-५)	१० (१२-५)		
४	उत्तम पशुधन	५० (५०-०)	—	५० (५०-०)	—	—	५० (४५-४)	—	६० (५४-५)	—	—
५	कीटनाशक दवायें	२५ (३५-७)	५ (७-८)	४० (५७-१)	—	—	२५ (३१-२)	५ (६-२)	५० (६२-५)	—	—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डों में बहुत कम है फिर भी देवा विकास खण्ड की तुलना में बंकी में इनका प्रयोग कुछ अधिक मात्रा में हो रहा है।

दोनों ही विकास खण्डों में कम मात्रा में उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने का कारण जानने का प्रयास किया गया है जिससे यह स्पष्ट हुआ है कि आर्थिक कठिनाइयाँ, वस्तुओं का सरलता से प्राप्त न होना और इनकी जानकारी न होना आदि मुख्य कारण हैं। प्राप्त आंकड़ों को सारणी संख्या—४ में दर्शाया गया है और दोनों विकास खण्डों में प्रश्नगत उन्नत प्रौद्योगिकी को न अपनाने के कारणों का प्रयोग न करने का कारण आर्थिक कठिनाई ५०-० प्रतिशत, भूमि की कमी २०-० प्रतिशत, सरलता से उपलब्ध न होना १२.५ प्रतिशत, अनभिज्ञता १२.५ प्रतिशत एवं बेरोजगारी में वृद्धि ५-० प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बतलाया, जबकि देवा विकास खण्ड के ग्रामों में आर्थिक कठिनाई को ५७-१ प्रतिशत, अनभिज्ञता १४.३ प्रतिशत भूमि की कमी को भी १४-३ प्रतिशत, सरलता से उपलब्ध न होने को ८-६ प्रतिशत तथा बेरोजगारी में वृद्धि को ५-७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कारण माना है। रसायनिक खादों को न अपनाने का कारण दोनों विकास खण्डों में शत प्रतिशत उत्तरदाताओं ने आर्थिक कठिनाई मात्र बताया है। उन्नतशील बीजों का प्रयोग न करने में भी आर्थिक कठिनाई ही प्रमुख समस्या है। बंकी विकास खण्ड में ७३-३ प्रतिशत तथा देवा विकास खण्ड में ६०-० प्रतिशत उत्तरदाता इसी कारण उन्नतशील बीजों का प्रयोग नहीं कर पाते हैं। जबकि सरलता से उपलब्ध न होने के कारण बंकी में २०-० प्रतिशत एवं देवा में १२-५ प्रतिशत उत्तरदाता उन्नत बीजों का प्रयोग नहीं करते। अनभिज्ञता के कारण बंकी में ६-७ प्रतिशत एवं देवा में १२-५ प्रतिशत कृषक उन्नत बीजों का प्रयोग नहीं कर पाते हैं। उत्तम पशुओं का लाभ आर्थिक कठिनाई के कारण बंकी एवं देवा विकास खण्ड में क्रमशः ५०.० प्रतिशत एवं ४५.४ प्रतिशत कृषक नहीं उठा पाते, जबकि इसकी जानकारी न होने के कारण दोनों विकास खण्डों में अनभिज्ञता ही मुख्य है जिसे क्रमशः ५७.१ प्रतिशत एवं ६२.५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकारा है। दूसरे स्थान पर अर्थिक समस्या को क्रमशः ३५.७ प्रतिशत एवं ३१.२ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना है। बंकी में ७.१ प्रतिशत तथा देवा में ६.२ प्रतिशत उत्तरदाता सरलता से उपलब्ध न होने के कारण कीटनाशक दवाओं का प्रयोग नहीं करते। उक्त तथ्य से स्पष्ट होता है कि उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने के मार्ग में आर्थिक समस्या, सरलता से उपलब्ध न होना एवं अनभिज्ञता सबसे प्रमुख कारण हैं जबकि उन्नत कृषि उपकरणों के प्रयोग में भूमि की कमी की एक प्रमुख समस्या है।

उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने अथवा उसका प्रयोग उचित मानने के सम्बन्ध में भी उत्तरदाताओं की राय ली गयी और दोनों विकास खण्डों से प्राप्त आंकडों का तुलनात्मक विवेचन किया गया। प्राप्त जानकारी का विवरण सारणी–५ में दर्शाया गया है। सारणी से स्पष्ट है कि विकास खण्ड बंकी में उन्नत कृषि उपकरण का कृषि की अपेक्षा पैदावार में वृद्धि करने हेतु ६३.३ प्रतिशत, सुविधाजनक तथा समय की बचत हेतु २७.३ प्रतिशत एवं श्रमिकों की कमी के कारण ९.१ प्रतिशत लोग अपनाते हैं जबकि विकास खण्ड देवा में कृषि की पैदावार में वृद्धि हेतु ७५.० प्रतिशत, सुविधाजनक तथा समय की बचत हेतु १२.५ प्रतिशत एवं श्रमिकों की कमी के कारण ६.२ प्रतिशत लोग अपनाते हैं। इस विकास खण्ड में ६.३ प्रतिशत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—५

उन्नत प्रौद्योगिकी अपनाने के कारण

क्रम	उन्नत प्रौद्योगिकी	बंकी विकास खण्ड कारण				देवा विकास खण्ड कारण			
		कृषि की पैदावार बढ़ाने हेतु	अधिक लाभ हेतु	सुविधाजनक एवं समय की बचत	श्रमिकों की कमी	कृषि की पैदावार बढ़ाने हेतु	अधिक लाभ हेतु	सुविधाजनक एंवं समय की बचत	श्रमिकों की कमी
१	उन्नत कृषि उपकरण	७० (६३-६)	—	३० (२७-३)	१० (९-१)	६० (७५-०)	५ (६-३)	१० (१२-५)	५ (६-२)
२	रासायनिक खाद	१२० (८५-७)	२० (१४-३)	—	—	१२० (९२-३)	१० (७-७)	—	—
३	उन्नतशील बीज	५० (६६-७)	२५ (३३-३)	—	—	६० (८५-७)	१० (१४-३)	—	—
४	उत्तम पशुधन	१५ (३०-०)	३५ (७०-०)	—	—	१० (२५-०)	३० (७५-०)	—	—
५	कीटनाशक दवायें	६० (७५-०)	२० (२५-०)	—	—	६० (८५-७)	१० (१४-३)	—	—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदाता अधिक लाभ हेतु भी उन्नत कृषि उपकरणों का प्रयोग करते हैं। परन्तु दोनों विकास खण्डों में अधिकांश उत्तरदाता कृषि की पैदावार में वृद्धि हेतु ही इसका प्रयोग करते हैं। रसायनिक खादों का प्रयोग बंकी विकास खण्ड में कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु ८५.७ प्रतिशत एवं अधिक लाभ हेतु १४.३ प्रतिशत लोग करते हैं जबकि देवा विकास खण्ड में कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु ९२.३ प्रतिशत एवं अधिक लाभ हेतु ७.७% लोग करते हैं। इससे स्पष्ट है कि दोनों स्थानों में उत्पादन वृद्धि ही प्रमुख उद्देश्य है परन्तु बंकी विकास खण्ड चूंकि शहर के अधिक सन्निकट है इसलिए व्यापार की सुविधा अच्छी और समीप होने के कारण यहां के कृषक व्यापारिक लाभ के प्रति देवा के कृषकों की अपेक्षा ६.६ प्रतिशत अधिक जागरूक हैं जबकि कृषि उत्पादन की वृद्धि के क्षेत्र में देवा के कृषक बंकी की तुलना में ६-६ प्रतिशत अधिक जागरूक हैं। उन्नतशील बीज के प्रयोग में भी अधिकांश उत्तरदाता उत्पादन में वृद्धि को ही प्रथम स्थान पर रखते हैं परन्तु इसमें अधिक लाभ हेतु दोनों विकास खण्ड में कृषक जागरूक हैं। बंकी में कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु ६६-७ प्रतिशत एवं अधिक लाभ हेतु ३३-३ प्रतिशत लोग इसका प्रयोग करते हैं जबकि देवा में यह संख्या ८५-७ और १४-३ प्रतिशत है। बंकी में १९-० प्रतिशत कृषक व्यापारिक लाभ के प्रति अधिक सचेत हैं जबकि देवा में बंकी की अपेक्षा १९-० प्रतिशत कृषि उत्पादन में वृद्धि के पक्षपाती हैं। जहाँ तक उत्तम पशुधन का प्रश्न है स्थिति अन्य की अपेक्षा पूर्णतया विपरीत है। इसमें बंकी तथा देवा दोनों विकास खण्डों में क्रमशः ३०-० प्रतिशत एवं २५-० प्रतिशत लोग कृषि उत्पादन वृद्धि हेतु उत्तम पशुधन रखतें हैं जबकि अधिक लाभ हेतु क्रमशः ७०-० प्रतिशत एवं ७५ प्रतिशत उत्तरदाता इनको रखते है। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग का उद्देश्य अन्य उन्नत प्रौद्योगिकी के समान ही उत्पादनों में वृद्धि करने का ही है। बंकी में इस हेतु ७५-० प्रतिशत तथा अधिक लाभ हेतु २५-० प्रतिशत उत्तरदाता इसे प्रयुक्त करते हैं जबकि देवा में यह संख्या ८५-७ प्रतिशत एवं १४-३ प्रतिशत है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यापारिक लाभ की दृष्टि से उत्तम पशुधन के सम्बन्ध में देवा विकास खण्ड के कृषक आगे हैं। परन्तु जहाँ तक कृषि उत्पादनों में वृद्धि हेतु प्रौद्योगिकी के प्रयोग का प्रश्न है, देवा विकास खण्ड के कृषक बंकी की तुलना में प्रत्येक क्षेत्र में आगे हैं।

इस बात की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया कि वे कौन-कौन से स्रोत हैं जिनके माध्यम से कृषकों को उन्नत प्रौद्योगिकी की जानकारी प्राप्त होती है, क्योंकि उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी की जानकारी कृषक समाज के लिए एक महत्वपूर्ण तथ्य है और इससे जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक सभी पहलू प्रभावित हो रहे हैं तथा इससे नवीन सामाजिक सम्बन्धों का विकास हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उन स्रोतों की जानकारी प्राप्त करके यह ज्ञात किया जाय कि कौन से साधन कृषक समाज में वर्तमान उन्नत प्रौद्योगिकी की जानकारी प्रमुख रूप से प्रदान करते हैं। इस सम्बन्ध में प्राप्त आंकड़े सारणी—६ में प्रस्तुत किये गये हैं। इसमें शासकीय कर्मचारियों में विकास खण्ड कार्यालय, कोआपरेटिव सोसाइटी, बैंक एवं कृषि विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारी सम्मिलित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सारणी—६

उन्नत प्रौद्योगिकी की जानकारी के स्रोत

क्रम सं०	प्रौद्योगिकी	वंकी विकास खण्ड: कुल उत्तर दाता ❋	ग्राम वासियों से	दोस्तों से	ग्राम प्रधान/ ग्राम पंचायत	शासकीय कर्मचारी	सरकारी प्रचार माध्यम	देवा विकास खण्ड: कुल उत्तर दाता ❋	ग्राम वासियों से	दोस्तों से	ग्राम प्रधान एवं ग्राम पंचायत	शासकीय कर्मचारी	सरकारी प्रचार माध्यम
१	उन्नतशील उपकरण	१४५	४० (२७-६)	२० (१३-८)	१० (६-९)	५ (३-४)	७० (४८-३)	१४०	२० (१४-३)	१५ (१०-७)	१५ (१०·७)	१० (७-१)	८० (५७-१)
२	रसायनिक खाद	१५०	३० (२०-०)	३० (२०-०)	१५ (१०-०)	५ (५-३)	७० (४६-७)	१५०	३० (२०-०)	२० (१३-३)	१० (६-७)	१० (६-७)	८० (५३-३)
३	उन्नतशील बीज	१४५	३५ (२४-०)	३० (२०-७)	२३ (१५-९)	१७ (११-७)	४० (२७-६)	१४०	४० (२८-६)	१५ (१०-७)	२५ (१७-८)	१८ (१२-८)	४२ (३०-०)
४	उत्तम पशु-धन	१००	३५ (३५-०)	२० (२०-०)	२५ (२५-०)	१० (१०-०)	१० (१०-०)	९०	२० (२२-२)	३५ (३८-९)	२० (२२-२)	१० (११-१)	५ (५-६)
५	कीटनाशक दवायें	११०	२० (१८-२)	१५ (१३-६)	२५ (२२-७)	१० (९-१)	४० (३६-४)	१००	१५ (१५-०)	१० (१०-०)	१२ (१२-०)	१३ (१३-०)	५० (५०-०)

❋ इसमें उन उत्तरदाताओं को सम्मिलित नहीं किया गया है जिनको इतकी जानकारी नहीं है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकारी प्रचार माध्यमों में किसान मेला, दूरदर्शन एवं आकाशवाणी आदि हैं। इसी प्रकार दोस्तों में आस-पास के कृषक एवं रिश्तेदारों को सम्मिलित किया गया है, साथ ही इसमें गांवों के बाहर शासकीय अथवा अशासकीय नौकरी करने वाले लोगों को भी सम्मिलित किया गया है। सारणी ६ से स्पष्ट है कि उत्तम पशुधन को छोड़कर सभी प्रौद्योगिकी जानकारी का प्रमुख स्रोत ग्रामीण समाज में शासकीय प्रचार माध्यम है। उन्नत कृषि उपकरणों की जानकारी का प्रमुख स्रोत देवा विकास खण्ड में सरकारी प्रचार माध्यम को बताने वाले उत्तरदाताओं की संख्या ५७-१ प्रतिशत है, तत्पश्चात ग्रामवासियों का स्थान द्वितीय १४-२ प्रतिशत है जबकि दोस्त एवं ग्राम प्रधान और पंचायत को क्रमशः समान रूप से १०-७ प्रतिशत उत्तरदाताओं तथा अन्तिम स्थान पर ७-१ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शासकीय कर्मचारियों को जानकारी का स्रोत बताया है। यही क्रम बंकी विकास खण्ड में देखने को मिला जहाँ पर सरकारी प्रचार माध्यम को ४८-३ प्रतिशत, ग्रामवासियों को २७-६ प्रतिशत, दोस्तों को १३-८ प्रतिशत, ग्राम प्रधान, ग्राम पंचायतों को ६-९ प्रतिशत और शासकीय कर्मचारियों को ३-४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जानकारी का स्रोत बताया है। रसायनिक खादों की जानकारी का प्रमुख स्रोत बंकी विकास खण्ड में ४६-७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शासकीय प्रचार माध्यमों को माना है तो देवा में ५३-३ प्रतिशत लोगों ने। ग्रामवासियों को द्वितीय स्थान पर क्रमशः २०-० प्रतिशत समान ही है जबकि दोस्तों का स्थान तृतीय (क्रमशः २०-० प्रतिशत एवं १३-३ प्रतिशत है और ग्राम प्रधान एवं पंचायतों का स्थान अन्तिम है। उन्नत बीजों, एवं कीटनाशक दवाओं की जानकारी का प्रमुख स्रोत सरकारी प्रचार माध्यमों को देवा विकास खण्ड में क्रमशः ३०-६%, ५०-०% उत्तरदाताओं ने माना है जबकि बंकी में क्रमशः २७-६% एवं ३६-४% ने। द्वितीय स्थान पर ग्रामवासियों को क्रमशः २८-६% एवं १५-० प्रतिशत देवा में तथा २४-१% एवं १८.२% बंकी में उत्तरदाताओं ने बताया है। मित्रों को उन्नत बीज के मामले में देवा विकास खण्ड में १०-७ प्रतिशत लोगों ने जानकारी का स्रोत बताया है जबकि बंकी में यह संख्या २०-७ प्रतिशत है। ग्राम पंचायत एवं ग्राम प्रधानों को क्रमशः १५-९ एवं १७-८ प्रतिशत लोगों ने माना है जबकि शासकीय कर्मचारियों को क्रमशः १२-८% एवं ११-७% उत्तरदाताओं ने। कीटनाशक दवाओं के मामले में भी लगभग यही प्रतिशत है। उत्तम पशुधन के पक्ष में स्थिति अन्य की अपेक्षा भिन्न है। इसमें बंकी विकास खण्ड में उत्तरदातााताओं ने जानकारी प्रदान करने में ग्रामवासियों को प्रथम ३५-०% तथा द्वितीय मित्रों को २०-० प्रतिशत बताया है तथा इसके ठीक विपरीत देश में यह स्थिति क्रमशः ३८-९ प्रतिशत एवं २२-२ प्रतिशत है। शेष दोनों विकास खण्डों में स्थिति लगभग समान है।

उन्नतशील कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है अपितु इसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। विकसित कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने हेतु निर्णय लेने में केवल आर्थिक स्थिति ही महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु इसमें कृषकों की सामाजिक व्यवस्था, जिसमें प्रश्नगत प्रौद्योगिकी को प्रयुक्त किया जाना है, अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में जाति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और यह विभिन्न क्षेत्रों में अपना एक महत्वपूर्ण प्रभाव रखती है। परन्तु प्रश्नगत अध्ययन में इसका प्रभाव बहुत ही कम है और एक तरह से इसे नगण्य ही कहा जा सकता है। प्रस्तुत शोध कार्य के अध्ययन क्षेत्र में प्रमुख रूप से मुस्लिम तथा मध्यम हिन्दू जातियों (पिछड़ी जातियों) की संख्या अत्यधिक होने के कारण उनका प्रभाव भी अधिक है और इसी कारण इनमें कोई प्रमुख जातीय उच्चता और निम्नता का क्रम नहीं है जैसा कि उच्च हिन्दू जातियों में एक स्पष्ट श्रेणी (उच्चता एवं निम्नता) देखने को मिलती है। फिर भी प्रश्नगत अध्ययन क्षेत्र में परिवार के स्वरूप की इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि संयुक्त परिवारों की तुलना में एकाकी परिवारों में उन्नत और आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने के प्रति अधिक जागरूकता एवं रुचि पायी गई। शैक्षिक कारक भी इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्रौद्योगिकी के गुणों और अवगुणों को समझा जा सकता है और स्पष्ट विश्लेषण के पश्चात् उसे अपनाने अथवा न अपनाने के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सकता है। कृषकों के पास उपलब्ध भूमि की मात्रा आय की सीमा को उनकी आर्थिक स्थिति का निर्धारण करने हेतु एक स्रोत के रूप में प्रयुक्त किया गया है। साथ ही साथ कृषकों के अन्य व्यवसायों को भी इससे सम्बद्ध किया गया है क्योंकि यह उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से पूर्ण रूपेण सम्बन्धित है। यद्यपि यह सही है कि भारतीय कृषक मुख्यरूप से कृषि पर निर्भर करते हैं परन्तु इसके बावजूद भी वे कुछ गौण व्यवसायों पर भी निर्भर करते हैं, उदाहरणार्थ व्यापार, नौकरी, मजदूरी आदि। इससे केवल उनके दृष्टिकोण में ही परिवर्तन नहीं होता वरन् उनकी आय में भी वृद्धि होती है। फलस्वरूप ऐसे लोगों से जो पूर्ण रूपेण कृषि पर निर्भर करते हैं, आधुनिक उन्नतशील प्रौद्योगिकी को अपनाने के मामले में अच्छी स्थिति में होते हैं।

उपर्युक्त सामाजिक आर्थिक कारकों के अतिरिक्त और भी अनेकों कारक हैं जो आधुनिक उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं और इन सबसे महत्त्वपूर्ण आयु है। प्रायः युवक वर्ग उन्नत प्रौद्योगिक उपलब्धियों को अपनाने के क्षेत्र में अधिक जागरूक है परन्तु बुजुर्ग लोगों में अधिकांश लोग पुरानी प्रविधियों को छोड़ने तथा नवीन को अपनाने के थोड़ा बहुत विरोधी होते हैं क्योंकि वे लोग परम्परावादी होते हैं और उनमें नवीन प्रविधियों को अपनाने के सम्बन्ध में तथा पुरानी को छोड़ने में एक अज्ञात पीड़ा देखी गयी।

भारतीय समाज में आयु के महत्व को देखते हुए उत्तरदाताओं की आयु तथा प्रौद्योगिकी को अपनाने में उनके प्रभाव को ज्ञात करने का प्रयास किया गया और प्राप्त निष्कर्ष सारणी ७ में दर्शाये गए हैं। सारणी ७ से स्पष्ट है कि आयु का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान हैं। आयु और प्रौद्योगिकी में एक स्पष्ट सम्बन्ध द्रष्टिगोचर होता है। युवा वर्ग (आयु समूह २०-४०) दोनों विकास खण्डों में सबसे अधिक संख्या में उन्नत प्रौद्योगिकी को अपना रहे हैं जो क्रमशः बंकी में ९५-० प्रतिशत तथा देवा में ९७-१ प्रतिशत है। द्वितीय स्थान पर प्रौढ़ायु वर्ग (४१-६० वर्ष) है जिसमें बंकी में ७२-०% तथा देवा में ८०-०% लोग उन्नत प्रौद्योगिकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अपना रहे हैं जबकि वृद्धायु वर्ग (६१ वर्ष एवं अधिक) इस प्रौद्योगिकी का विरोधी है। इसमें क्रमश- बंकी में १५-०% तथा देवा में ११-१% लोग आधुनिकी प्रौद्योगिकी को अपनाते है । इस आयु समूह के लोग प्राय: परम्परावादी और भाग्यवादी होते हैं, साथ ही वे किसी

सारणी–७

आयु एवं उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग

क्रमांक	आयु समूह (वर्षों में)	विकास खण्ड बंकी उत्तरदाताओं की कुल संख्या	विकास खण्ड बंकी अपनाने वालों की संख्या	विकास खण्ड देवा उत्तरदाताओं की कुल संख्या	विकास खण्ड देवा अपनाने वालों की संख्या
१	२०–४०	४०	३८ (९५.०)	३५	३४ (९७.१)
२	४१–६०	९०	६५ (७२.०)	७०	५६ (८०.०)
३	६१ एवं अधिक	२०	३ (१५-०)	४५	५ (११.१)

भी तरह के परिवर्तन का विरोध करते हैं उनमें उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रति भी विश्वास की कमी पाई जाती है और इसी कारण ये लोग इसे अनावश्यक समझते हैं और इसका विरोध करते हैं ।

शिक्षा

कृषकों के शैक्षिक स्तर और आधुनिक पद्धतियों को कृषि क्षेत्र में अपनाने की दिशा में स्पष्ट सम्बन्ध पाया जाता है । साक्षर और शिक्षित कृषक अपेक्षाकृत नई पद्धितियों को अपनाने की दिशा में अधिक उन्मुख हैं क्योंकि शिक्षा वह माध्यम है जो व्यक्तियों के ज्ञान को बढाता है और किसी भी दिशा में उदारतापूर्वक सोचने समझने की क्षमता उत्पन्न करता है जिसके फलस्वरूप लोग किसी भी चीज को समझ सकते हैं और नई पद्धतियों के गुणों-अवगुणों पर समुचित विचार करके उससे होने वाली हानियों और लाभों से परिचित हो सकते हैं । शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा लोगों को परम्परावादी दृष्टिकोण से हटाकर आधुनिक वैज्ञानिक विचारों की तरफ मोड़ा जा सकता है । इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कारक मानते हुए वर्तमान अध्ययन में इसकी भूमिका की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से इसका और उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी का सम्बन्ध जानने का प्रयास किया गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास खण्ड बंकी और देवा में कृषकों के शैक्षिक स्तर और उन्नत प्रौद्योगिकी में सम्बन्ध जानने का प्रयास किया गया तथा प्राप्त निष्कर्षों को सारणी में दर्शाया गया है।

सारणी ८ से स्पष्ट है कि जितनी ही शिक्षा बढ़ती जाती है प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी उसी अनुपात में बढ़ता जाता है जिससे यह विदित होता है कि शिक्षा और प्रौद्योगिकी आपस में एक दूसरे से प्रभावित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा कृषकों के शैक्षिक स्तर का प्रौद्योगिकी के प्रयोग से स्पष्ट सम्बन्ध है। जैसे-जैसे शिक्षा में वृद्धि होती जाती है, प्रौद्योगिकी का प्रयोग उसी अनुपात में बढ़ता जाता है। विकास खण्ड बंकी में साक्षरता ६६-० प्रतिशत है तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग ९३-३ प्रतिशत है जबकि देवा विकास खण्ड में साक्षरता ४४-० प्रतिशत है तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग ८६-७ प्रतिशत है।

सारणी-८
शैक्षिक स्तर एवं नवीन कृषि प्रौद्योगिकी

क्रम सं०	शैक्षिक स्तर	विकास खण्ड बंकी: उत्तरदाताओं की कुल संख्या	विकास खण्ड बंकी: प्रौद्योगिकी अपनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या	विकास खण्ड देवा: उत्तरदाताओं की कुल संख्या	विकास खण्ड देवा: प्रौद्योगिकी अपनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या
१	अशिक्षित	५१ (३४-०)	४३ (८४-३)	८४ (५६-०)	६७ (७९-८)
२	प्राइमरी एवं जू० हाईस्कूल	६५ (४३-३)	६३ (९६-९)	४५ (३०-०)	४२ (९३-३)
३	हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट	२५ (१६-७)	२५ (१००-०)	२० (१३-३)	२० (१००-०)
४	स्नातक एवं स्नातकोत्तर	०९ (६-०)	०९ (१००-०)	०१ (०-७)	०१ (१००-०)
	योग	१५०	१४० (९३-३)	१५०	१३० (८६-७)

चूँकि देवा विकास खण्ड में साक्षरता प्रतिशत कम है इसलिए यहाँ पर प्रौद्योगिकी का प्रयोग भी कम है। विकास खण्ड बंकी में ३४-० प्रतिशत अशिक्षित हैं जबकि देवा में ५६-० प्रतिशत और यही स्थिति प्रौद्योगिकी के प्रयोग में भी है। बंकी में अशिक्षित लोगों में ८४-३ प्रतिशत प्रोद्योगिकी का प्रयोग है जबकि देवा में ७९-८ प्रतिशत। जूनियर हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त कृषकों में दोनों विकास खण्डों में क्रमशः ९६-९ प्रतिशत व ९३-३ प्रतिशत द्वारा प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है जबकि इण्टरमीडिएट एवं इससे अधिक शिक्षित शत-प्रतिशत कृषकों द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आय

आय किसी भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने का आधुनिक युग में एक सशक्त माध्यम है। जैसे-जैसे किसी व्यक्ति की आय में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे ही उसके व्यवहारों में भी परिवर्तन होता रहता है यहाँ तक कि व्यक्ति के सोचने समझने की पद्धतियों और धार्मिक विश्वासों को भी आर्थिक स्थिति प्रभावित करती है। आर्थिक स्थिति में जैसे-जैसे सुदृढ़ता आती जाती है व्यक्ति के धार्मिक विश्वासों में कमी आती है और उसके जीवन का भौतिक पक्ष उजागर होने लगता है। व्यक्ति धार्मिकता के दायरे से निकलकर भौतिकता की तरफ बढ़ने लगता है और वह भौतिक संसाधनों को अधिक से अधिक एकत्रित करके उसका उपभोग करता है और विलासितापूर्ण जीवन बिताने लगता है। ठीक यही स्थिति कृषक समाज की भी होती है। जो कृषक जितना अधिक समृद्ध होता है वह उतनी ही अधिक इस स्थिति में होता है कि उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर सके और नवीन पद्धतियों को अपनाकर उनका अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सके क्योंकि आर्थिक स्थिति अच्छी होने पर वह प्रौद्योगिकी का उपयोग करके अपने कार्यों को शीघ्रातिशीघ्र निपटा सकता है और इस प्रकार अवशेष समय में वह अपने संकुचित दायरे से निकलकर बाहरी परिवेश में प्रवेश कर सकता है और पुनः इस प्रकार प्राप्त ज्ञान का उपभोग करता है। इस प्रक्रिया में वह अपने परम्परावादी और संकीर्ण विचारों को छोड़ता है एवं नवीन तथा प्रगतिशील विचारधारा को अपनाता है जो उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर अपनी आर्थिक स्थिति को और भी अधिक सुदृढ़ करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इन्हीं स्थितियों को ध्यान में रखते हुए कृषकों की आय और प्रौद्योगिकी के प्रयोग में क्या सह-सम्बन्ध है जानने का प्रयास किया गया और प्राप्त निष्कर्षों को सारणी–९ में दर्शाया गया है। सारणी–९ से स्पष्ट है कि जैसे जैसे कृषकों की आय में वृद्धि हुई है, उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग उनके द्वारा बढ़ा है। बंकी विकास खण्ड में रूपये ३०० तक मासिक आय वाले कृषकों में से ८८–७% द्वारा प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है जबकि देवा में ७९–४% कृषकों द्वारा, परन्तु रु० ३००–६०० मासिक आय वाले कृषकों में से दोनों ही विकास खण्डों में क्रमशः ९४–२% एवं ८८–७% कृषकों द्वारा आधुनिक विक-

सारणी–९

मासिक आय एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग

		प्रौद्योगिकी का प्रयोग					
		विकास खण्ड बंकी			विकास खण्ड देवा		
क्रम० सं०	आय सीमा रुपया. में मासिक	कुल उत्तर दाता	प्रौद्योगिकी अपनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत	कुल उत्तर दाता	प्रौद्योगिकी अपनाने वाले उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
१	३०० तक	६२	५५	८८-७	६८	५४	७९-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२	३००–६००	५२	४९	९४-२	५३	४७	८८-७
३	६००–९००	२१	२१	१००-०	१८	१८	१००-०
४	९००–१२००	१०	१०	१००-०	०८	०८	१००-०
५	१२००-से अधिक	०५	०५	१००-०	०३	०३	१००-०
	योग—	१५०	१४०	९३-३	१५०	१३०	८६-७

सित प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु रु० ६०० प्रति माह से अधिक आय वाले कृषकों द्वारा दोनों ही विकास खण्डों में शत प्रतिशत आधुनिक एवं उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है। निम्न आय समूह के कृषकों द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी न अपनाने का कारण सारणी–४ में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

भूमि

भूमि की मात्रा और प्रौद्योगिकी के उपयोग में स्पष्ट सह सम्बन्ध पाया जाता है। ऐसा देखने में आया है कि वे कृषक जिनके पास अधिक भूमि है, उन कृषकों की तुलना में जिनके पास भूमि की कमी है, अथवा कम भूमि है, अधिक मात्रा में प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं। एक सरसरी दृष्टि डालने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि (सारणी–१०) भूमि की मात्रा जैसे बढ़ती जाती है नवीन पद्धतियों और प्रौद्योगिकी का प्रयोग उसी अनुपात में तीव्र गति से बढ़ता जाता हैं। बंकी विकासखण्ड में एक एकड़ तक भूमि जिन कृषकों के पास है उनमें से ८६-७% कृषकों द्वारा प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जा रहा है जबकि देवा में ७६-०% कृषकों द्वारा।

सारणी–१०

भूमि की मात्रा एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग

क्रम सं.	भूमि की मात्रा एकड़ में	विकास खण्ड बंकी			विकास खण्ड देवा		
		कुल उत्तर दाताओं की सं.	प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने वाले कृषकों की संख्या	प्रतिशत	कुल उत्तर दाताओं की सं.	प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने वाले कृषकों की संख्या	प्रतिशत
१	एक एकड़ तक	६०	५२	८६-७	७५	५७	७६-०
२	१--४	५१	४९	९६-१	५०	४८	९६-०
३	४—८	२२	२२	१००-०	१३	१३	१००-०
४	८—१२	०९	०९	१००-०	०७	०७	१००-०
५	१२ से अधिक	०८	०८	१००-०	०५	०५	१००-०
	योग—	१५०	१४०	९३–३	१५०	१३०	८६–७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु एक से चार एकड़ तक भूमि वाले कृषकों में से बंकी विकास खण्ड में ९६-१% तथा देवा में ९६-० % प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु दोनों विकास खण्डों में ४ एकड़ से अधिक भूमि वाले कृपकों द्वारा शत प्रतिशत मात्रा में प्रौद्योगिकी अपनाई जा रही है। इस तथ्य से यह स्वतः स्पष्ट होता है कि भूमि और प्रौद्योगिकी में एक स्पष्ट सह-सम्बन्ध पाया जाता है और दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। कम भूमि वाले कृषकों द्वारा प्रौद्योगिकी का उपयोग न किये जाने का सबसे प्रमुख कारण यह ज्ञात हुआ कि ऐसे कृषकों के पास धन की कमी सबसे बड़ी समस्या है जबकि प्रौद्योगिकी के उपयोग हेतु पूंजी की उपलब्धता अनिवार्य है। साथ ही साथ ऐसे कृषक जिनके पास कम भूमि है स्वयं अपने खेतों में शारीरिक श्रम करके परम्परागत ढंग से कृषि करके अच्छी फसल उगा लेते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं ऐसी स्थिति में वे प्रौद्योगिकी की कोई उपयोगिता नहीं समझते हैं।

परिवार

सामाजिक जीवन में परिवार का अपना विशेष महत्व तथा स्थान है। मानव समाज में परिवार प्राथमिक समूह है।[11] मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। संस्कृति के सभी स्तरों में चाहें उन्हे उन्नत कहा जाय अथवा निम्न, किसी न किसी प्रकार का पारिवारिक संगठन अनिवार्यतः पाया जाता है। परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक आवश्यताओं की पूर्ति में भी योग देता है तथा मानव जाति के आत्म-संरक्षण, वंश-वर्धन और जीवन की निरन्तरता बनाए रखने का प्रमुख साधन है। भारतीय सामाजिक संगठन में परिवार का अपना विशेष महत्व है। चूंकि भारतवर्ष एक कृषिप्रधान देश है और यहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप इस देश में संयुक्त परिवार प्रणाली सबसे उपयुक्त होने के करण यहाँ पर अनादि-काल से ही संयुक्त परिवार प्रणाली चली आ रही है और सम्भवतः यह पूर्णरूपेण कभी भी भारतीय समाज में समाप्त भी नहीं हो पावेगी। परन्तु इन सबके उपरान्त भी आधुनिकीकरण, पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव एवं औद्योगिकीकरण तथा नागरीकरण और भूमि सुधार कानूनों में हुए परिवर्तन के परिणाम स्वरूप भारतीय संयुक्त परिवार अत्यन्त तीव्र गति से विघटित हो रहे हैं। इनके प्रभावों में भारतीय ग्रामों का स्वरूप ही बदलता जा रहा है। साथ ही साथ भारतीय संस्कृति भी लुप्तप्राय होती जा रही है। व्यक्तियों के सोचने-समझने की पद्धतियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। भारतीय ग्रामीण समाज में वर्तमान समय में यह समस्या विकट रूप धारण कर चुकी है। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस शोधप्रपत्र में परिवार के स्वरूप और प्रौद्योगिकी में सह-सम्बन्ध ज्ञात करने का प्रयास किया तथा प्राप्त तथ्यों का विवरण सारणी–११ में दर्शाया गया है। परिवार के स्वरूप में दो तरह के परिवारों को लिया गया है, प्रथम एकाकी परिवार जिसमें उत्तरदाता और उसके अविवाहित बच्चे सम्मिलित हैं तथा द्वितीय संयुक्त परिवार जिसमें कई पीढ़ी के लोग एक साथ रहते हैं। संयुक्त परिवार में विस्तृत परिवार भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मिलित है। विस्तृत परिवारों का तात्पर्य ऐसे परिवारों से हैं जिन परिवारों के एक या कुछ सदस्य परिवार के बाहर नौकरी या अन्य व्यवसाय हेतु रहते हैं तथा अपना परिवार भी साथ में रखते हैं परन्तु घर के समस्त धार्मिक और आर्थिक मामलों में सहभागी होते है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बड़े परिवारों में किसी भी बात पर शीघ्र सहमति नहीं हो पाती है जिसका कारण यह है कि उनमें सभी सदस्यों को एक राय पर पहुंचने में अधिक समय लगता है जबकि एकाकी परिवार में कर्ता स्वतंत्र होता है। सारणी–११ से स्पष्ट है कि दोनों ही विकास खण्डों के गाँवों में संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकाकी परिवार आधुनिक अन्वेषणों एवं तकनीक का अधिक संख्या में लाभ प्राप्त कर रहे हैं। बंकी विकास खण्ड में ९०-० % संयुक्त परिवारों द्वारा प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों को अपनाया जा रहा है जबकि

सारणी–११
परिवार का स्वरूप और प्रौद्योगिकी

विकास खण्ड बंकी				विकास खण्ड देवा			
कुल परिवारों की संख्या		प्रौद्योगिकी अपनाने वाले परिवारों की संख्या		कुल परिवारों की संख्या		प्रौद्योगिकी अपनाने वाले परिवारों की संख्या	
संयुक्त	एकाकी	संयुक्त	एकाकी	संयुक्त	एकाकी	संयुक्त	एकाकी
७०	८०	६३(९०-०)	७७(९६-२)	८५	६५	७०(८२-३)	६९(९२-३)

एकाकी परिवारों में ९६-२ प्रतिशत कृषकों द्वारा। देवा विकास खण्ड में ८२-३ % संयुक्त परिवारों द्वारा नवीन तकनीकी का प्रयोग किया जा रहा है जबकि एकाकी परिवारों में ९२-३ % द्वारा, जिससे स्वतः स्पष्ट होता है कि संयुक्त की अपेक्षा एकाकी परिवारों द्वारा नवीन उपलब्धियों का लाभ अधिक मात्रा में प्राप्त किया जाता है।

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है कि वैयक्तिक अथवा सामाजिक और आर्थिक कारणों का नवीन प्रौद्योगिकी के प्रयोग से घनिष्ट सम्बन्ध है। वृद्धों की अपेक्षा युवक वर्ग इस मामले में अधिक आगे हैं तथा शिक्षित कृषकों में अशिक्षितों की तुलना में नवीन प्राविधियों के प्रति अधिक विश्वास है। इसी प्रकार आय और भूमि दोनों की अधिकता प्रौद्योगिक उपलब्धियों को बढ़ावा देती है। संयुक्त परिवारों की अपेक्षा एकाकी परिवार प्रौद्योगिकी को अधिक अपनाते हैं।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध कार्य में आधुनिक उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी के रूप में उन्नतशील उपकरणों, रासायनिक खादों, उन्नतशील बीज, उन्नत पशुधन और कीटनाशक दवाओं को चुना गया है। संक्षिप्त विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित जानकारी प्राप्त हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ बंकी विकास खण्ड जो जनपद मुख्यालय पर ही स्थित है, के ग्रामीण अंचलों में उन्नतशील प्रौद्योगिकी की जानकारी देवा विकास खण्ड के कृषकों की अपेक्षा अधिक है।

२ बंकी विकास खण्ड में उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने के विपक्ष में देवा की अपेक्षा कम लोग पाये गये। इसी प्रकार बंकी विकास खण्ड में देवा की अपेक्ष अधिकांश कृषक उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर रहे हैं।

३ उन्नत प्रौद्योगिकी के प्रति उदासीनता का मुख्य कारण आर्थिक कठिनाई है, सरलता से उपलब्ध न होना और अनभिज्ञता भी इसके लिए उत्तरदायी है। जहाँ तक उन्नत कृषि उपकरण का प्रश्न है दोनों ही विकास खण्डों में कुछ कृषक भूमि की कमी तथा बेकारी में वृद्धि होने के भय से उसका प्रयोग नहीं करते हैं।

४ बंकी और देवा दोनों ही विकास खण्डों में सभी उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी का प्रयोग कृषि की उत्पादकता में वृद्धि लाने हेतु ही अधिकांश कृषक कर रहे हैं। तत्पश्चात् दूसरे स्थान पर कृषकों ने आर्थिक लाभ के लिए प्रौद्योगिकी के प्रयोग को स्वीकार किया है। सुविधा एवं श्रमिकों की कमी के कारण कुछ लोग ही उन्नत कृषि उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

५ दोनों ही विकास खण्डों में उन्नत प्रौद्योगिकी की जानकारी का प्रमुख स्रोत शासकीय प्रचार माध्यम है जबकि शासकीय कर्मचारियों (जिसमें खण्ड विकास कार्यालय के कर्मचारी आदि आते हैं) का इस क्षेत्र में योगदान बहुत ही कम है। इसका कारण यह है कि शासकीय कर्मचारी जिनका उत्तरदायित्व है कि वे नवीन अन्वेषणों की जानकारी कृषकों को दें अपने उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीनता बरतते हैं क्योंकि इन पर शासन का समुचित नियंत्रण नहीं है।

६ उन्नत प्रौद्योगिकी को अपनाने में उत्तरदाताओं की आयु तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग में नकारात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। युवा वर्ग प्रौद्योगिकी को अपनाने में दोनों ही विकास खण्डों में सबसे आगे है जबकि ६१ वर्ष से अधिक आयु वाले सबसे पीछे हैं क्योंकि वृद्ध लोगों में अपनी प्राचीन परम्पराओं के प्रति दृढ़ आस्था तथा नवीनता के प्रति भय पाया जाता है। जबकि युवा वर्ग में नवीनता के प्रति प्रबल उत्साह पाया जाता है। प्रौढ़ वर्ग के लोग युवा तथा वृद्ध पीढ़ी में संतुलन स्थापित करने का भरसक प्रयास करती हैं।

७ शिक्षा तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग में सुदृढ सहसम्बन्ध पाया गया। जैसे-जैसे लोगों का शैक्षिक स्तर बढ़ता जाता है उनका औद्योगिकी के प्रति आकर्षण बढ़ता जाता है। दोनों ही विकास खण्डों में माध्यमिक स्तर तक अथवा उससे अधिक शिक्षा प्राप्त शत-प्रतिशत कृषकों द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है, क्योंकि अधिक शिक्षित कृषक प्रौद्योगिकी से होने वाले लाभों से पूर्ण रूपेण परिचित हैं, जब कि अशिक्षित लोग इसके महत्त्व को नहीं समझते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८ कृषकों की आय तथा प्रौद्योगिकी में भी स्पष्ट सहसम्बन्ध पाया गया। दोनों ही विकास खण्डों में छः सौ या उससे अधिक मासिक आय वाले कृषकों द्वारा शतप्रतिशत उन्नत कृषि प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि निम्न आय वर्ग के कृषक प्रौद्योगिकी के लाभों से परिचित होने के बाद भी अपने को उस स्थिति में नहीं पाते कि वे अधिक मूल्यवान प्रौद्योगिकी को क्रय करके उसका प्रयोग कर सकें।

९ भूमि की मात्रा तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग में स्पष्ट एवं सुदृढ़ सहसम्बन्ध पाया गया। दोनों ही विकास खण्डों में चार एकड़ या उससे अधिक भूमि धारक कृषकों द्वारा पूर्णरूपेण सभी प्रकार की प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है। क्योंकि अधिक भूमि रखने वाले कृषक आर्थिक रूप से सुदृढ़ होते हैं और प्रौद्योगिकीय उपकरणों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

१० परिवार के स्वरूप तथा प्रौद्योगिकीय में भी सहसम्बन्ध पाया जाता है। एकाकी परिवार संयुक्त परिवार की अपेक्षा दोनों ही विकास खण्डों में उन्नत प्रौद्योगिकी का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग करते हैं। कारण यह है कि संयुक्त परिवारों में किसी भी बात पर लोग शीघ्रता से एकमत नहीं हो पाते परन्तु एकाकी परिवारों में कर्ता कोई भी निर्णय लेने हेतु स्वतंत्र होता है। दूसरा कारण यह कि एकाकी परिवार में सदस्यों की संख्या सीमित होने के कारण कृषि कार्य में प्रौद्योगिकी का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है।

संदर्भ–ग्रंथ

१–मैरिल, आर० एस० १९६८ "दी स्टडी आफ टेक्नालोजी", डी०एस० सिल द्वारा सम्पादित इण्टर नेशनल इनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज से, दिल्ली, मैकमिलन एण्ड कं०।

२–वैबलर, १९६४ इनसाइक्लोपीडिया आफ इकोनोमी (सं० ५) बीज पेट्रो।

३–बोरोनिएक, ए० १९६९ विजनेस आर्गनाइजेशन एण्ड ट्रन्सफर एण्ड टेक्नालोजी इक्सपीरियंस आफ यू० एस० एस० आर० एण्ड प्लानिंग फार एडवांस स्किल्स एण्ड टेक्नालोजी, यूनीडा।

४–मार्क्स, कार्ल १९५४ कैपिटल (भाग प्रथम) फारेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस (मास्को)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५–वोल्फ, ए०	१९३५	ए हिस्ट्री आफ साइंस टेक्नालोजी एण्ड फिलास्फी इन एट्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन, जार्ज ऐलन अनविन लि० ।
६–	१९७६	टेकनालोजी ट्रान्सफर टू रुरल इण्डिया, काउन्सिल फार अपलीकेशन एण्ड इक्सटेन्शन आफ टेक्नालोजी टू रुरल इण्डिया, सेमीनार की संस्तुति दिल्ली ।
७–बरट्रेन्ड, ए० आई० (सम्पादित)	१९५८	रुरल सोशियोलोजी, न्यूयार्क, मैकग्राहिल कं० ।
८–स्मिथ, टी० एल०	१९५३	सोशियोलोजी आफ रूरल लाइफ (तृतीय निर्गम) न्यूयार्क, हारपर ।
९–बरट्रेन्ड, ए० आई०		पूर्व उल्लिखित ।
१०–पारसन्स, टी०	१९६१	सोशल सिस्टम, ग्लैनको, दी फ्री प्रैस ।
११–मेकाइवर, आर० एम० एण्ड सी० एच० पेज	१९६२	सोसायटी ऐन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस, लन्दन, मैकमिलन एण्ड कं० लि० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तम्भ

कमार : एक छत्तीसगढ़ी जनजाति

कु० भारती

मध्यप्रदेश भारत का हृदय-स्थल है। यह न केवल भौगोलिक विविधता बल्कि सामाजिक सांस्कृतिक विविधता के लिये भी प्रसिद्ध है। एक तरफ सतपुड़ा व विंध्या की पहाड़ियाँ हैं तो दूसरी ओर मालवा के उपजाऊ कछार। एक तरफ चंबल बीहड़ है तो दूसरी तरफ बस्तर के दुर्गम वन। इस विशाल प्रदेश में अनेक जनजातियाँ अपनी विविध सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ निवास करती हैं। अन्य विशिष्टताओं के साथ यह मध्य-प्रदेश जनजातीय विविधता के लिये भी प्रसिद्ध है। मध्यप्रदेश में ४६ जनजातियाँ निवास करती हैं जिनमें गोंड, बैगा, भील, कोरकू, मुरिया, मारिया, कवर, कोल, मांझी, ओरांव, अबुझ-माड़िया आदि प्रमुख हैं (तिवारी, १९८४ : ३०४)। इनकी कुल जनसंख्या ११९.८७ लाख है [1] जो प्रदेश की कुल जनसंख्या का २२.९७ प्रतिशत है। [2]

कमार मध्यप्रदेश की एक आदिम जनजाति है। [3] जो प्रदेश के दक्षिणी भाग में निवास करती है। कमार अधिकतर मध्यप्रदेश के रायपुर व बस्तर जिलों में पाये जाते हैं। बिन्द्रानवगढ़, फिंगेश्वर, सोरमर तथा धमतरी के नाग्री व सिहाव क्षेत्र कमार के लिये विख्यात हैं। लगभग एक शताब्दी पूर्व तक कमार सभ्यता से दूर एक नितांत जंगली जाति थी (जान बाल : जंगल लाइफ इन इंडिया, १८७८, संदर्भित तिवारी, १९८४ २३५)।

कमार संख्या में कम हैं। प्रदेश की जनजातियों की कुल जनसंख्या में कमार मुश्किल से ०.१ प्रतिशत हैं।

कु० भारती, शोध छात्रा, समाज शास्त्र विभाग, भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—१
कमार जनजाति की जनसंख्या

वर्ष	जनसंख्या
१९११	७,०००[४]
१९३१	९,२४४[५]
१९६१	११,७९५[६]
१९८१	१३,६००[७]

प्रजातीय तत्व

कमार जनजाति के प्रजातीय उद्भव की हमें सही जानकारी नहीं है। रसेल व हीरा लाल (१९७५ : ३२३) के अनुसार कमारों की प्रजाति द्रविड़ है और यह गोंड जानजाति की एक शाखा है। किन्तु रसेल तथा हीरा लाल उन आधारों को स्पष्ट करने में असमर्थ रहे जिनके द्वारा उपरोक्त मान्यता को सिद्ध किया जा सके। (दुबे, १९५१ : ५)

कमार जनजाति के लोगों का कद मध्यम है परन्तु कमार कभी कभी लम्बे कद के भी होते हैं। उनकी त्वचा भूरे से गाढ़े रंग के बीच की होती है। कभी कुछ लोगों की त्वचा का रंग गेहूंआ भी होता है। इनके सिर पर बहुत बाल होते हैं लेकिन उनमें मूँछ दाढ़ी तथा शरीर के अन्त भागों पर बाल सामान्यतः कम पाये जाते हैं। उनकी आँखों का रंग काला या गाढ़ा भूरा होता है। इन लोगों के होंट बाहर की ओर मुड़े हुए होते हैं। इनका शरीर गढ़ा हुआ होता है (दुबे, १९५१ : ९)।

ऐतिहासिक उत्पत्ति

कमार अपने को गोंडों का वंशज मानते हैं। अपनी उत्पत्ति के संबंध में उनकी अवधारणा है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम महाप्रलय हुआ और उनके थमने पर भगवान ने एक पुरुष व एक स्त्री का निर्माण किया जिनसे सृष्टि की उत्पत्ति हुई (तिवारी, १९८४ : २३५)।

रसेल तथा हीरा लाल (१९७५ : ३२४-२५) ने कमारों की उत्पत्ति के बारे में निम्न कथा का उल्लेख किया है।

कमारों का कहना है कि वे बिन्दानवगढ़ के शासक थे। एक दिन भीमराज नामक एक चिड़िया को कमारों ने मार डाला। भीमराज को दिल्ली के एक व्यक्ति ने पाला तथा सिखाया पढ़ाया था। वह पक्षियों का शिकार करता था। जब उस व्यक्ति ने मृतक पक्षी का कमारों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर्जाना मांगा तो कमारों ने देने से मना कर दिया। वह दिल्ली गया और वहाँ से आदमखोर सैनिकों को ले आया। इन सैनिकों ने सभी कमारों को मार कर खा लिया। लेकिन एक गर्भवती स्त्री उनसे बचकर निकल गई। उसने पटना जाकर एक ब्राह्मण के घर में शरण ली। बाद में उसने एक लड़के को जन्म दिया। चूंकि वह विधवा थी इसलिये उसने अपने आपको कलंक से बचाने के लिये उस बालक को गोबर के ढेर में छिपा दिया। चूंकि बालक गोबर कचरा में पाया गया इसलिये वह कचरा धुरवा के नाम से जाना गया। यह नाम कमारों में इस विश्वास के साथ लिया जाता है कि गोबर ने ही उनके पूर्वज को बचाया है। इसी प्रकार गोंड जनजाति की एक उपजनजाति का नाम भी धुर गोंड है। कचरा धुरवा ने बड़े होकर सभी जनजाति के लोगों को इकट्ठा किया और सभी आदम खोर लोगों को मार-कर फिर से बिन्द्रानवगढ़ का शासक बना। बिन्द्रानवगढ़ में जो हड्डियों के अवशेष पाये जाते हैं उन्हें कमार लोग आदमखोरों की मानते हैं। रसल तथा हीरालाल (१९७५) का कहना है कि कचरा धुरवा कमार था और आज भी कमार लोग अपनी उत्पत्ति उसी से मानते हैं। किन्तु दुबे के अनुसार कचरा धुरवा कमार न होकर गोंड था।[८]

निवास

एक शताब्दी पूर्व तक कमार लोग जंगलों में गुफा के अन्दर रहते थे। इनकी गुफा का दरवाजा पत्तियों से ढका हुआ होता था। इनकी गुफा के सामने मुर्गे मुर्गियाँ घूमती रहती थी और बाहर एक बकरा बंधा रहता था (बाल संदर्भित तिवारी, १९८४ : २३५)। किन्तु अब कमार झोपड़ियों में अथवा मिट्टी के कच्चे घरों में रहने लगे हैं। कमार परिवार घर के एक कमरे में रहता है। घर के दूसरे भाग में इनके जानवर रहते हैं। इनके घर के सामने एक माडव होता है जो तीन तरफ से खुला होता है। ये लोग सुअर तथा मुर्गियों के लिये अलग घर बनाते हैं। मुर्गियों के लिये पेटीनुमा घर होता है। शादी होने के बाद बच्चे अपना अलग अलग घर बनाते हैं जो पिता के घर के पास ही होता है (दुबे, १९५१ : १९)।

आर्थिक संगठन

कमारों की आजीविका के साधन बहुत अविकसित हैं। इनकी आजीविका का मुख्य साधन अस्थाई कृषि है जिसे ये दाही कहते हैं। अन्य साधनों में बाँस की टोकरियाँ बनाना, शिकार करना, मछली मारना, शहद इकट्ठा करना आदि है। इनकी अर्थ व्यवस्था मामूली लेन देन पर आधारित है। इनका आर्थिक जीवन अन्य भारतीय जनजातियों की तरह पिछड़ा तथा अविकसित है। ये लोग अब जंगल मजदूर के रूप में काम करते हैं। ८० प्रतिशत कमारों के पास खेती के लिये जमीन नहीं है (रिपोर्ट १९८५ : २२)। २० प्रतिशत लोगों के पास जमीन है जो कि अधिकांशत गैर उपजाऊ है इसलिये ये लोग बाँस के काम करते हैं तथा वनोत्पादन का संचयन भी करते हैं। बाल ने कमारों की अर्थ व्यवस्था को बहुमुखी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बताया है जिसमें पशुपालन का अभाव है। कमार लोग मुर्गीपालन या बकरी पालन को महत्व नहीं देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कमारों की अर्थ व्यवस्था में परिवर्तन आ रहा है।

कृषि तथा वृक्षों से प्राप्त सामग्री से जंगली पदार्थ जैसे तेंदू, अचार महुआ, चिरोंजी, कुकुरमुत्ता आदि इनके भोजन के मुख्य आधार हैं। कमार लोग शिकार में माहिर होते हैं। ये मांसाहारी हैं। ये सांप बंदर और मगर को छोड़कर सभी जानवरों का मांस खाते हैं। शिकार कमारों का मुख्य आहार है।

स्थानाँतरित कृषि (दाही)

दाही कृषि के लिये कमार सबसे पहले वन के किसी समतल क्षेत्र की तलाश करते हैं। वहाँ के पेड़ों को काटकर जला देते हैं। यह काम बुवाई के मौसम से पहले किया जाता है ताकि बुआई के समय जमीन पुरी तरह से ढक जाय। बारिश के बाद राख पर बीज बिखेर दिये जाते हैं। बारिश पाकर पौध बढ़ती है। खेती का यह तरीका बहुत निम्न व आदिम स्तर का है। ऐसी खेती से प्राप्त फसल की मात्रा कम व घटिया स्तर की होती है। कुछ ही वर्षों में ये भूखंड कृषि के योग्य नहीं रह जाते हैं। ऐसे स्थानों की जमीन हल चलाने व खाद के अभाव में जल्दी ही बंजर हो जाती है। तब कमार किसी दूसरे समतल स्थान की तलाश में निकल पड़ते हैं। इसी प्रकार ये स्थान बदलते रहते हैं और इसी कारण नया खेत तैयार हो जाता है। कृषि की यह पद्धति स्थानांतरित कृषि कहलाती है जो देश की कतिपय अन्य आदिम जनजातियों में भी देखने को मिलती है।

अधिकतर लोगों ने स्थानांतरित कृषि की कड़ी आलोचना की है। इसके कई दुष्परिणाम हैं। इससे सबसे बड़ा नुकसान है वनों का नष्ट होना। इससे प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाता है जिसके कारण अनेक विपदायें (जैसे बाढ़, आँधी, तूफान तथा अकाल आदि) आते हैं। इन लोगों की दृष्टि में लकड़ी का अर्थ सिर्फ लकड़ी है। ये बिना सोचे समझे किसी भी पेड़ को काट देते हैं। ये नहीं जानते की इस लकड़ी का कितना मूल्य है। इनकी इस अज्ञानता के कारण आज अनेक इमारती लकड़ियों की जातियाँ और जंगल समाप्त होते जा रहे हैं। अनेक बेल लतायें जड़ी बूटियाँ जलने के कारण समाप्त हो गईं जो अनेक रोगों को दूर करने में औषधि के रूप में काम में लाई जाती थी। इसी के साथ-साथ जमीन की उर्वरा शक्ति भी समाप्त हो गई। इसलिये कमार लोग आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़े हुये हैं। कमारों को अपनी आजीविका हेतु वर्ष भर जी तोड़ मेहनत करनी पड़ती है।

सामाजिक संगठन

विवाह

कमारों में विवाह अपने गोत्र में नहीं होता। परन्तु भाई व बहन के बच्चों अथवा बहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बच्चों के बीच शादी हो सकती है (रसेल व हीरा लाल, १९७५)। किन्तु दुबे (१९५१,७) का कहना है कि कमारों में दो बहनों के बच्चों के बीच विवाह नहीं हो सकता।

कमारों में लड़कियों के विवाह की उम्र पंद्रह वर्ष और लड़कों की अठारह वर्ष से कम नहीं होती। कभी कभी बाल विवाह भी देखा गया है। दुबे (१९५१) ने कमारों में जीवन साथी चुनने के निम्न तरीके बताये हैं।

(अ) बिहाव (नियमित विवाह)
(ब) सहपलायन विवाह
(स) पैथु
(द) सेवा विवाह
(य) विधवा पुनर्विवाह

कमार एक विवाही होते हैं कभी कभी इनमें बहुविवाह भी देखने को मिलता है। कमारों में बहुविवाह तभी सम्भव है जबकि पहली पत्नी बच्चे देने में असमर्थ हो। ऐसी स्थिति में पति अपनी साली, जो उसकी पत्नी से उम्र में छोटी हो, से विवाह करता है। यदि वह भी बच्चा जनने में असमर्थ हो तो वह उससे भी छोटी बहन से विवाह कर सकता है। अगर पत्नी की कोई सगी बहन नहीं हो तो वह उसकी चाचा की लड़की से शादी कर सकता है। यदि पत्नी की कोई बहन नहीं हो तो ऐसी स्थिति में पति किसी दूसरे स्थान पर विवाह कर सकता है (दुबे, १९५१) इनमें पति भात्रा विवाह और विधवा पुनर्विवाह को मान्यता प्राप्त है।

कमारों में विवाह संस्कार बहुत सरल है। विवाह माता पिता द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। विवाह प्रस्ताव पहले लड़के वालों की तरफ से जाता है। प्रस्ताव ठीक लगने पर लड़की का पिता वर पक्ष द्वारा भेजा गया प्रस्ताव रख लेता है। यदि प्रस्ताव उन्हें पसंद नहीं है तो वह यह कह देता है कि लड़का, लड़की को खिला पिला नहीं सकता या सास झगड़ालू है जो हमारी लड़की को तंग करेगी। इसलिये हमें यह रिश्ता मंजूर नहीं है। लड़की वालों की तरफ से हाँ होने पर विवाह का समय एक माह से लेकर साल दो साल के बीच निकाला जाता है। विवाह के समय लड़की वाले जितना सामान मांगते हैं उतना लड़के वालों को उन्हें देना पड़ता है। नहीं तो विवाह संबंध टूट जाता है। सगाई हो जाने के बाद प्रत्येक बड़े त्योहारों पर होने वाली बहू को उसके ससुराल वाले एक सप्ताह के लिये बुलाते हैं और बाद में उसे उसके घर वापस छोड़ जाते हैं। ऐसा नहीं करने पर लड़की वाले समझते हैं कि यह संबंध लड़के वालों को पसंद नहीं हैं।

सगाई के समय बड़े लोग जोड़े को खड़ा करके देखते हैं। जब जोड़ा उनको पसंद आता है तब लड़की का पिता लड़के वालों से कहता है कि यह मेरी लड़की है अब मै इसकी सारी जिम्मेदारी आप लोगों पर सौंपता हूँ आज से यह आपकी है। इस घोषणा के बाद लड़के लड़की पर शराब फेंकी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह की तारीख पर लड़के वाले पहले के वादे के अनुसार सामान लेकर आते हैं। सामान देखकर जब लड़की वाले संतुष्ट हो जाते हैं तब शादी होती है। मडवा (मंडप) लड़की के घर गड़ता है (दुबे, १९५१ : ९५)। हालांकि रसेल व हीरा लाल का कहना है कि मंडप लड़के वालों के यहाँ गड़ता है। लड़के वाले लड़की के घर जाते हैं। रात में भोजन व नाच गाना होता है। दूसरे दिन लड़के वाले लड़की को अपने साथ ले आते हैं जहाँ विवाह स्तंभ के सात फेरे लगाये जाते हैं। दुबे (१९५१ : ९५-१०१) ने कमारों में विवाह से संबंधित अनेक प्रथाओं व परम्पराओं का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये तेल चढ़ाना, तेल उतारना, चार तेल जो कि वधू के साथ उसके घर में विवाह से पहले की जाती है, चिखाल लेंडी पनबुड़ी, पिनदार-धुवन जिसमें लड़की अपने पीले शादी के कपड़ों को अपने मां बाप के घर धोने जाती है इत्यादि। पिनदार धुवन विवाह की अन्तिम रीति है। मायके में पिनदार धुवन करने के बाद नववधू दुबारा अपने ससुराल जाती है और दाम्पत्य जीवन सामान्य रूप से व्यतीत करती है।

पवित्र खंबे के चारों ओर चक्कर लगाने के बाद पहले वर वधू एक दूसरे पर चावल फेकते हैं। बाद में और लोग उन पर चावल फेंकते हैं। चावल फेंकने से उनक उद्देश्य यह है कि पवित्र आतमा जो उस समय वहाँ उपस्थित है इस जोड़े की हमेशा रक्षा करेगी। साथ साथ इनका दूसरा आशय यह भी है कि यह जोड़ा वंश वृद्धि शीघ्र करे।

कमारों में विधवा विवाह को आम स्वीकृति प्राप्त है। विधवा विवाह में वधू को सिर्फ चूड़ियाँ पहनाई जाती हैं और उसे एक नये कपड़े का टुकड़ा दिया जाता है। लड़की के जीवन में पूर्ण रीति रिवाजों से विवाह एक बार ही होता है। कमारों में विवाह विच्छेद सामान्यतः नहीं होता है क्योंकि उनकी मान्यता है कि एक वैधानिक पत्नी सभी शंकाओं से परे होती है।

परिवार

कमारों में एक विवाही परिवार पाया जाता है। कमारों में परिवार पितृवंशीय तथा पितृस्थानीय होते हैं। इनके परिवार के सदस्य माता-पिता तथा उनके बच्चे और अविवाहित लड़कियाँ होते हैं। सामान्यतः कमार पितृस्थानीय होते हैं। परन्तु कभी कभी मातृस्थानीय परिवार भी कमारों में देखने को मिलते हैं। इस तरह के परिवार सेवा विवाह के कारण पाये जाते हैं।

कमारों में सामान्यतः एकाकी परिवार पाया जाता है जिसमें माँ बाप तथा अविवाहित बच्चे होते हैं। विवाह के बाद आम तौर पर कमार लड़का अपनी अलग झोपड़ी बनाता है। माता-पिता से अलग घर बनाते समय आम तौर पर सम्पत्ति का बटवारा नहीं होता है। वह घर से कुछ जरूरी चीजें ही अपने साथा लाता है ।उन्हें जो कुछ भी जोड़ना होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे उसे अपनी मेहनत की कमाई से जोड़ते हैं। इनमें परिवार से अलग होने का यह मतलब नहीं है कि वे अपने माँ बाप तथा भाइयों से पूर्ण सम्बंध तोड़ लेते हैं बल्कि ऐसा वे आर्थिक व्यवस्था को ध्यान में रखकर करते हैं। किसी भी त्योहार व पूजा पाठ के समय सभी भाई 'मई घर' (मुख्य घर अर्थात् माँ बाप के घर) पर एकत्रित होते हैं जहाँ सभी संस्कार सम्पन्न होते हैं। परन्तु जैसे जैसे परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ती जाती है वैसे-वैसे मुख्य घर के देवता की पूजा अलग-अलग घर में होती है। पिता के न होने पर घर देवता की पूजा सबसे बड़ा भाई करता है। कमारों में बूढ़े हो जाने पर माँ बाप अपने किसी भी पुत्र के पास रह सकते हैं। यदि बच्चे माँ बाप का ध्यान नहीं देते हैं तो माँ बाप पंचायत से अपना हक मांग सकते हैं।

उत्तराधिकारी

कमारों में उत्तराधिकार सम्पत्ति का स्थानांतरण बहुत कम होता है। क्योंकि व्यक्ति के मरने पर उसके उपयोग की वस्तुयें उसके साथ दफना दी जाती हैं। जमीन बेचकर उसका क्रिया कर्म किया जाता है और मृत्यु भोज दिया जाता है। इतने सब कामों को करने के बाद बहुत कम सम्पत्ति बच पाती है। बची हुई सम्पत्ति लड़कों में बटती है। बड़े लड़के को पिता की सम्पति में कुछ अधिक हिस्सा मिलता है। शेष सम्पति अन्य लड़कों में बराबर बाट दी जाती है। पिता की सम्पति में लड़कियों को कोई हिस्सा नहीं मिलता है। यदि किसी व्यक्ति के पास लड़का नहीं हो तो उसकी अविवाहित लड़की या लाम सेना को उसकी सम्पति दी जाती है[१] जिससे सम्पति परिवार से बाहर नहीं जा पाती है। पुरुष बिना अपनी पत्नी के सलाह लिये सम्पति को दूसरे को दे सकता है। औरतों का सिर्फ गहनों पर ही अधिकार होता है। कमारों में पति को पत्नी से ऊंचा समझा जाता है।

गोत्र

कमार जनजाति के उपवर्ग हैं (अ) बुधराजियाये-ये मकाड़िया से उच्च समझे जाते हैं। ये बंदर का मांस नहीं खाते हैं। (ब) मकाड़िया ये बंदर का मांस खाते हैं। कमार अपने गोत्र को गोट कहते हैं। इन लोगों के कई गोत्र हैं। प्रत्येक गोत्र किसी न किसी न किसी टोटम के साथ जुड़ा होता है। परन्तु गोत्र टोटम के बीच परम्परात्मक संबंध अब धीरे धीरे समाप्त होता जा रहा हैं।

चार्ट—१
कमार जनजाति में गोत्र एवं टोटम

क्रमांक	गोत्र	टोटम
१.	नेतम	कछुआ
२.	मकरम	कछुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३.		सोरी	
	(अ)	बाघ सोरी	बाघ
	(ब)	नाग सोरी	नाग
४.		कंजम	बकरा
५.		मरई	लाश भक्षी
६.		छेदिहा	×
७.		जगत	×

कमारों के गोत्र बर्हिविवाही हैं। इनमें गोत्र का मुख्य कार्य विवाह संबंधी नियमों का पालन करवाना है।

शैक्षणिक स्थिति

कमार शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुये हैं। १९८१ की जनगणना के अनुसार कमारों में साक्षरता ५% से भी कम है।° १९६१ में कमार जनजाति के सिर्फ पाँच व्यक्तियों ने प्राथमिक स्कूल पास किया था और उनमें साक्षरता की दर १.३३ प्रतिशत थी।

राजनैतिक संगठन

कमार मध्य प्रदेश की एक आदिम एवं पिछड़ी जनजाति है। इसमें शिक्षा का भी अभाव है। कमार आर्थिक व सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से काफी पिछड़े हुये हैं। भारतीय दंड विधान अन्य जनजातियों सहित कमार पर भी लागू होता है किन्तु दैनिक जीवन में आमतौर पर कमार लोग इसका पालन नहीं करते। इन लोगों के अपने परम्परागत न्याय विधान हैं जिसका ये लोग अनुसरण करते हैं और अपने जीवन को उन्हीं नियमों के अनुरूप ढालते हैं। ये लोग सभ्य समाज की अदालत के बजाय अपनी परम्परागत पंचायत का अधिक उपयोग करते हैं। ऐसा करना उनकी परम्परा का प्रभाव हो सकता है या फिर ये लोग अदालतों से अनभिज्ञ हैं।

कमारों की पंचायत तथा सभ्य समाज की पंचायत में कई जुर्मों की सजा में अन्तर पाया जाता है। कमारों में कई क्रियाओं को अपराध माना जाता है जबकि वे सभ्य समाज में सामान्य रूप में ली जाती हैं। उदाहरण के लिये कमारों में अपने से निम्न जाति के लोगों से छू जाता, पिट जाना या उनके हाथों का भोजन ग्रहण करना आदि ऐसी अनेक क्रियायें हैं जो अपराध समझी जाती हैं। कमारों में नरहत्या, शारीरिक चोट तथा चोरी कई ऐसी अपराधिक क्रियायें है जिनकी सजा सिर्फ एक भोज है। सभ्य समाज में जबकि ये जघन्य अपराध माने जाते हैं। इसकी सजा मृत्युदंड है या आजीवन कारावास तक हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमारों में कोई केन्द्रीय अधिसत्ता नहीं होती है । पड़ौसी बस्तियों से मिलकर इनकी पंचायत बनती है जो इनके सामाजिक और धार्मिक मामलों का निपटारा करती है । पंचायत के सदस्य हमेशा बुजुर्ग लोग होते हैं । इनका निर्णय सभी को मान्य होता है । इनके निर्णय बहुमत पर आधारित होते हैं । कमारों में इससे ऊँची कोई दूसरी अधिसत्ता नहीं है जैसेकि सभ्य समाज में न्यायालय, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय पाये जाते हैं । उदाहरण के लिये यदि कोई व्यक्ति निम्न न्यायालय के निर्णय से असहमत हो तो वह उसके खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है । उच्च न्यायलय के निर्णय से भी यदि वह सहमत नहीं है तो सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है । परन्तु कमारों में ऐसा सम्भव नहीं है । पंचायत द्वारा दंड स्वरूप अपराधिक व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है । यदि व्यक्ति अपने अपराध का प्रायश्चित करना चाहता है तो पंचायत उसके निवेदन पर विचार करती है । यदि पंचायत उचित समझती है तो दंड स्वरूप उसे एक सामाजिक भोज आयोजित करने का आदेश देती है । जब तक व्यक्ति भोज का आयोजन नहीं कर लेता तब तक समाज उसका बहिष्कार करता है किन्तु भोज के पश्चात् पंचायत के निर्णय के अनुसार उसे समाज में शामिल कर लिया जाता है ।[१०] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आदिम समाज में सामाजिक भोज का आयोजन करना एक सरल बात नहीं है । कमार आर्थिक दृष्टि से बहुत गरीब होते हैं । ऐसी स्थिति में किसी कमार के लिये सामाजिक भोज का आयोजन करना एक कठिन कार्य होता है ।

अन्य जनजातियों की भांति कमारों में भी सरकारी वन्य सम्पदा चुराना अपराध नहीं समझा जाता है ।[११] इसी प्रकार शराब बनाना भी अपराध के अन्तर्गत नहीं आता है। आपसी लड़ाई झगड़े भी प्रायः मार पीट के परम्परागत तरीके से निपटा लिये जाते हैं । कुछ अपराधिक क्रियाओं का दंड दैव शक्ति पर छोड़ दिया जाता है । उदाहरण के लिये निकट संबंधियों के बीच यौन संबंधी अपराध का दंड पंचायत नहीं देती है । वरन इनका दंड देना भगवान की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है । देवताओं की पूजा न करना तथा पूर्वजों व देवी-देवताओं का अपमान करने संबंधी व्यवहार का दंड भी दैव शक्ति पर छोड़ दिया जाता है । ऐसे अपराध करने वालों को दंड के रूप में समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है ।

बलात्कार, जादू टोना, नीची जाति के लोगों के साथ भोजन ग्रहण करना, घोड़े को छूना या उस पर सवारी करना, काला जादू, गो हत्या या बैल हत्या, घाव में कीड़े पड़ना, चार पति बदलकर पांचवें से शादी करना, सहपलायन, कुल बर्हिविवाह नियम को तोड़ना आदि ऐसी क्रियायें हैं जिन्हें कमार जनजातीय कानून के अन्तर्गत अपराध समझा जाता है ।

कमारों में व्यक्ति तथा सम्पत्ति के विरुद्ध अपराधों की तादाद अधिक नहीं होती है । जो होते भी हैं वे भी गंभीर प्रकार के नहीं होते हैं । इनमें अपराध छिपाने व प्रमाणों को दबाने की प्रवृत्ति बहुत कम पाई जाती है । ऐसा इसलिये पाया जाता है कि इनमें दोषपूर्ण व्यवहार को पाप मान लिया जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनजाति के बुजुर्ग कानून व व्यवस्था के संरक्षक हैं। कमारों की परम्परात्मक पंचायत में सर्वोच्च स्थान कुरहा का होता है। कुरहा गांव का मुखिया भी होता है। इसके बाद सरपंच का मुखिया भी होता है। इसके बाद सरपंच तथा चपरासी आते हैं। चपरासी का कार्य है लोगों को बताना कि पंचायत कहां होगी और किस समय पर होगी। औरतें पंचायत की सदस्य नहीं होती हैं।

नरहत्या, खतरनाक शारीरिक चोट तथा चोरी जैसे गंभीर अपराधों के मामले अब भारतीय न्यायालयों में जाने लगे हैं।

धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन

चूंकि कमारों की अर्थव्यवस्था शिकार पर आधारित है। इसलिये कमार लोग अनेक वन देवताओं की पूजा करते हैं। शिकार मारने के बाद शिकार का सिर काटकर पानी से विधिवत् धोया जाता है। इसके बाद इसे वन देवता को अर्पित किया जाता है। वन देवता की पूजा के बाद ही शेष भाग ग्रहण किया जाता है। वन देवताओं के अतिरिक्त गाता डूमा, धरती माता, बुधाराज दुल्हादेव, शाता माई (चेचक), देवी (हैजा), बड़ी माई (बड़ी चेचक), छोटी माई (छोटी चेचक), ठाकुर देव, बतीगढ़ माई तथा बामहर्नी माई आदि ऐसी ही अनेक देवी देवता हैं जिनकी पूजा कमार करते हैं।

कमार लोग हिन्दू देवता महादेव तथा हनुमान की पूजा भी करते हैं। जादू में भी विश्वास करते हैं। कमारों में प्रचलित उत्पत्ति संबंधी मिथक इस प्रकार है (मजूमदार व मदान् १९७४ : १६२)। भगवान महादेव एकबार एक पागल सियार पर इतने क्रुद्ध हुए की उन्होंने सृष्टि को नष्ट करने का आदेश दिया। एक बुढ़िया को महादेव के क्रोध की भनक पड़ी। उसने यह बात अपने पति को बताई। दोनों भागकर जंगल में गये। वहाँ उन्होंने एक नाव बनाई। उसमें बारह वर्ष तक समाप्त न होने जितना जीवन यापन का आवश्यक साज सामान रखा। तभी जलप्लावन हुआ। जिसमें समूची पृथ्वी जलमग्न हो गई। बारह वर्ष बाद जब महादेव का क्रोध शांत हुआ तब उन्होंने अपने गणों को सृष्टि की पुनर्रचना करने का आदेश दिया। गणों ने नाव में बचे रहे लड़का तथा लड़की को देखा। महादेव ने उन्हें अपनी संतान मान लिया। एक कीड़े (केंचुआ) के मुख से पृथ्वी की कुछ मिट्टी निकाली गई। इसी से पृथ्वी की पुनर्रचना की गई। महादेव ने अपनी दत्तक संतानों को कहा कि वे फिर से पृथ्वी को आबाद करें। लड़के एवं लड़की को संभोगरत करने हेतु महादेव को बहुत प्रयास करना पड़ा।[12] लड़की ने अन्ततः कई संतानों को जन्म दिया किन्तु इन्हें जन्म देने के बाद ही शर्म के मारे उसकी मृत्यु हो गई। महादेव ने इस संतानों से कई जोड़े बनाये जो आगे चलकर विभिन्न जातियों एवं जनजातियों के जन्मदाता बने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदिरा तथा हथियार की पूजा

कमार जनजाति के लोग लोहे की पूजा करते हैं। इनके हथियार अधिकतर लोहे के बने होते हैं। ये लोग लोहे की पूजा को दुर्गा माता की पूजा मानते हैं। हथियारों की पूजा दशहरे पर की जाती है। लोहे से बनी वस्तुओं का उपयोग दशहरे के बाद ही किया जाता है। ये इन हथियारों को चावल फूलों से पूजते हैं। दशहरा तथा दुलहादेव और अन्य देवी देवताओं की पूजा के दिन घर में आग नहीं जलाई जाती है। घर के देवता की पूजा मां बाप के घर पर की जाती है। माँ बाप के न होने पर पूजा सबसे बड़े भाई के घर पर होती है।

मदिरा का सेवन करने से पहले कमार लोग मदिरा की चार पांच बूंदें पृथ्वी पर गिरा देते हैं। ये ऐसा अपनी धरती माता, देवी देवताओं तथा पूर्वजों को सम्मान प्रदर्शित करने के लिये करते हैं। इस प्रकार पहले देवी देवताओं व पूर्वजों को मदिरा अर्पण करने के बाद वे ग्रहण करते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि यदि पहले देवी देवताओं और पूर्वजों को मदिरा अर्पण नहीं की जाती तो वे उनसे रुष्ट हो सकते हैं।

कमारों के प्रमुख त्योहार हरेली, पोटा, नवारवई, दसेरा, दिवाली, छेरछेरा वया फागुन-तीहार आदि हैं।[13]

संस्कार

जन्म संस्कार

एक औरत बच्चे को जन्म देने के दिन से छः दिन तक अपवित्र समझी जाती है। छठवें दिन चाथी संस्कार किया जाता है जिसमें बच्चे के सिर के बाल काटे जाते हैं तथा माँ व बच्चे को नहलाया जाता है। उनके शरीर पर तेल तथा हल्दी से मालिश की जाती है। इसके बाद बच्चे की माँ काम कर सकती है। लेकिन न तो वह खाना बना सकती हैं और न ही पानी भर सकती है। ऐसा वह लड़का होने पर ढाई महीने तक नहीं कर सकती। अगर लड़की हुई तो तीन महीने तक परहेज करना पड़ता है। चाथी संस्कार तक जच्चा के पति को भी अपवित्र समझा जाता है। वह इस अवधि तक न तो जंगल में शिकार करने जा सकता है और न ही काम पर जा सकता है। वह भगवान की पूजा भी नहीं कर सकता है। यदि मां का दूध सूख जाता है तो उसे ताजी मछली तथा नमक खाने के लिये दिया जाता है जिससे विश्वास किया जाता है कि माँ का दूध उतर आयेगा। गर्भावस्था में औरतों को कार्य करने तथा कई स्थानों पर जाने की मनाही रहती है।

महवारी

यह सभी जनजातीय समाजों में निषेधात्मक होती है। इसके शुरू होने से लेकर आठ दिन तक औरतें अपवित्र समझी जाती हैं। वह न तो खाना बनाती हैं, न पानी भरने जाती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न ही पूजा करती है। इन दिनों में वह जमीन पर सोती है। प्रत्येक सुबह वह उस स्थान को जहाँ पर कि वह सोती है गोबर से लीपती है।

कमारों में यह भी माना जाता है कि जो व्यक्ति महवारी की अवधि में स्त्री को छूवेगा वह घर के देवता का अपमान करेगा। ऐसी स्थिति में घर के पुरुष जंगल जाने से पहले नहाते हैं। उनका विश्वास है कि बिना नहाये जंगल जाने पर वन देवता अपवित्र हो जायेंगे।

नामकरण संस्कार

यदि बच्चा परिवार के किसी सदस्य के मरने के छः महीने के अन्दर होता है तो उसका नाम उस व्यवित के नाम पर रख दिया जाता है। चाहे वह लड़का हो या लड़की हो। वे कहते हैं कि वह व्यक्ति अपने संबंधियों में फिर से वापस आ गया है।

विवाह संस्कार

यह मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण संस्कार है। कमारों में विवाह संस्कार में कई रीति रिवाजों को पूरा किया जाता है जिनका वर्णन सामाजिक संगठन के अन्तर्गत किया गया है।

मृत्यु संस्कार

आदमी के मरने पर उसे गाड़ दिया जाता है। गाड़ते समय मृतक व्यक्ति का सिर उत्तर दिशा में रखा जाता है तथा तीन दिन तक का शोक मनाया जाता है। व्यक्ति के मरने पर कमार लोग नहीं नहाते हैं। ये लोग संबंधियों या पिता के मरने पर सिर के बाल बनवाते हैं।

बाल

कमारों में बालों को पवित्र समझा जाता है। ये कभी भी अपने सिर के बाल नहीं कटवाते हैं। परन्तु किसी संबंधी या पिता के मरने पर सिर के बाल बनवाते हैं।

गुदना

औरतें शादी से पहले या बाद में शरीर के विभिन्न भागों पर गुदना गुदवाती हैं। औरतें अपने कंधों पर मोर तथा बिच्छू को हाथ के ऊपर, हाथ की उंगलियों पर बिंदियों से मक्खी का आकार गुदवाती हैं। बाहों व पैतों की पिंडलियों पर गोल गोल लाइनों के आकार की बिंदियाँ गुदवाती हैं जो उनके गहनों को दर्शाती है। वे घुटने के चारों ओर गोल आकार में गुदना गुदवाती हैं। उनकी मान्यता है कि ऐसा करवाने से स्वर्ग मिलेगा। अर्थात् कामारों में भी स्वर्ग तथा नर्क की भावना पाई जाती है जो हिन्दू तथा अन्य सभ्य समाज में व्याप्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिकार

कमार लोग शिकार करने के बहुत ही शौकीन होते हैं। वे तीर धनुष चलाने में बहुत ही निपुण होते हैं । वे बिना शील संकोच के तीर धनुष चलाते हैं । शायद ऐसा इसलिये सम्भव है क्योंकि इनकी परम्परागत पंचायत में हत्या को घोर अपराध नहीं माना गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि कब तीर उनके धनुष से निकल पड़े । साधारण विवाद पर भी वे तीर चला सकते हैं ।

टिप्पणियाँ

१ १९८५ : २

२ वही

३ आदिम जनजाति का अर्थ है अत्यधिक पिछड़ी जनजाति । जिसके पास मात्र पूर्व कृषि प्रौद्योगिकी के स्वर का ज्ञान हो । आदिम जनजाति की पहचान के मुख्य लक्षण निम्न हैं—

(अ) कृषि से पहले का तकनीकी ज्ञान का स्तर,
(ब) साक्षरता की कम दर
(स) अपरिवर्तनशीलता अथवा परिवर्तन की अत्यधिक निम्न दर
(द) आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन, तथा
(य) दूर दराज जंगलों में रहना ।

कमार के अलावा अबूझमाड़िया, मारिया, बैगा, पहाड़ी कोरवा तथा सहारिया प्रदेश की अन्य आदिम जनजातियाँ हैं ।

४ रसेल व हीरा लाल, १९७५ : ३२३ । वैसे दुबे ने १९११ में कमारों की जनसंख्या ७१८५ बताई है । यह जनसंख्या पूरे मध्य भारत की है ।

५ यह जनसंख्या पूरे मध्य भारत की है। (दुबे, १९५१ : ४)

६ तिवारी, १९४७ : २३५

७ रिपोर्ट, १९८५ : २१

८ दुबे ने कमारों की ऐतिहासिक उत्पत्ति के बारे में निम्न लिखित पौराणिक कथा का वर्णन किया है ।

नवगढ़-राज में मौलिक रूप से कमार रहते थे । उनका कोई राजा नहीं था । वे स्वयं बिना किसी द्वंद के अपनी जमीन के राजा थे । धीरे धीरे भुंजियों की शक्ति बढ़ी । चिंडा भुंजिया बहुत अच्छे लडाकू थे, ये बाद में राजा बन गये । चिंडा राजा था और चोखुटिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग उसके नौकर थे। फिर बाद में धुरवा गोंड लान्जी से आये और चींडा से लड़े और चिडा को मार डाला। फिर इस राज्य पर धुर्वा लोगों का राज हो गया।

इसी बीच दो कमार उड़ीसा राज्य से आये। उनके नाम थे निरीया तथा कारिया। सोना बेदा में वे थुत्वा महाजन के घर रुके। थुत्वा उनके पिता का फूल था। महाजन ने उनसे पूछा तुम लोग कहाँ जा रहे थे? उन्होंने कहा वे लोग नवागढ़ जा रहे हैं। जब वे लोग चलने लगे तो महाजन से कुछ पैसा मांगा। महाजन ने उन्हें पैसा दिया और कहा कि बच्चों इसके बदले में मुझे तुम लोग मोम, चमड़ा, शहद तथा सींग प्रत्येक बारह मन लाकर देना।

बेंगरपल्ली में उन्होंने धुर्वा गोडों से शरण मांगी। धुरवा ने इन लोगों को अमातपली जो कि मुर्धा के पास है रहने को जमीन दी। दोनों भाई अमातपली चले गये। वहाँ उन्होंने एक छोटी कुड़ा (अस्थाई झोपड़ी) बनाई और रहने लगे। एक दिन वे बेंगर पल्ली पहाड़ी पर शिकार करने गये। वहाँ पर उन्हें छोटी सी मेनगराम चिड़िया पेड़ पर बैठी दिखाई दी। उन लोगों ने उसे पकड़ लिया और उसे अपनी झोपड़ी में ले आये। दूसरे दिन वे सोकर उठे तो पाया कि वह चिड़िया बोलती है। उसने कहा आओ पिता हम लोग शिकार पर चलें। दोनों भाई उठे और चिड़िया के साथ जंगल में शिकार पर निकल पड़े। चिड़िया जानती थी कि जंगल में कहाँ कहाँ जानवर हैं। वह शिकार कमारों के पास ले आती थी उन्हें बताती कि शिकार कहाँ पर है। इस प्रकार प्रतिदिन कमारों के पास बहुत सारा शिकार इक्कठा होता गया। कुछ ही दिनों में वे थुत्वा महाजन के पास बारह मन सिंग, चमड़ा लेकर पहुंचे।

धुर्वा लोगों को जंगल में कोई शिकार नहीं मिलता था। धुर्वा राज ने अपने आदमियों को इसका पता लगाने को कहा। धुर्वा लोगों ने देखा भेनगराज चिड़िया सब जानवरों को इकट्टा करके कमार भाइयों की तरफ ले जा रही थी। एक दिन मौका देखकर धुर्वा लोगों ने भेनगराज को मार डाला।

दोनों कमारों को बहुत गुस्सा आया कि उनकी प्रिय भेनगराज को धुर्वा लोगों ने मार डाला। उन्होंने इसका बदला लेनेके लिये नवागढ़ राज छोड़ा और वापस उड़ीसा आ गये। यहाँ राजा की बारह वर्ष तक सेवा की। राजा के लिये उन्होंने सूप, तकना, चारिया आदि बनाया। राजा उन पर बहुत प्रसन्न हुआ और उन्हें पुरस्कार दिया। इतना समय बीत जाने पर भी वे भेनगराज की मृत्यु को नहीं भूले थे। जो पैसा उन्हें मिला था उसे लेकर वे उत्तर गये वहाँ से वे आदम खोर मुगलों की सेना लाये।

आदमखोरों ने नवागढ़-राज में विध्वंस लीला शुरू की, धुर्वा लोग नहीं जानते थे कि क्या करें। वे लोग कमारों के पास सहायता के लिये दौड़े। कमार लोग अधिक भागों में धुर्वा लोगों की सहायता करने के लिये आये। वे लोग मिलकर तीर-धनुष, बरछी, बल्लम आदि की सहायता से आदमखोरों से लड़े। आदमखोर लोग कोई वीर नहीं थे। लेकिन वे धूर्त तथा कपटी थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधे मुगल लोग कमारों तथा धुर्वा से लड़े और आधे भाग कर कमारों की औरतों और बच्चों को खाने लगे। जब एक तोते ने खबर दी की उनकी पत्नियाँ और बच्चे मर गये तो वे बिना किसी बात की परवाह किये मुगलों से लड़ने लगे।

इस युद्ध में धुर्वों का राजा मारा गया। रानी गांगी धुर्विन गर्भवती थी और वह ही गांव में अकेली बची। जब उसने देखा कि गांव चारों तरफ से घिर गया है तो वह आत्म हत्या के इरादे से पहाड़ी की चोटी पर से कूद पड़ी। लेकिन भगवान की महिमा से वह बाल-बाल बच गई। मारा माझी (कमार) को पता चला तो वह रानी को सुरक्षित स्थान पर ले गया। मारा मांझी उसे परना राज ले गया और वहां पर उसने रानी को ब्राह्मण के घर में रखा। उसने रानी को लकड़ी की तलवार (कृपाण) बनाकर होने वाले राजा को भेंट में दी। रानी ब्राह्मण के घर में नौकरानी बनकर रहती थी। एक दिन जब वह घर का कूड़ा फेंकने घूरे पर गई तो वहाँ पर उसने एक बालक को जन्म दिया जिसे कचना धुर्वा के नाम से जाना गया।

इसी समय कमार आदमखोरों को खदेड़ते हुए बासका नदी के किनारे तक ले गये। आदमखोरों ने कमारों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उस दिन के बाद आदमखोरों ने कभी भी विन्द्रानवगढ़ राज और उस क्षेत्र में वापस कदम नहीं रखा।

कचना धुर्वा धीरे-धीरे बड़ा हुआ। वह बहुत ही नटखट बालक था। जब औरतें पानी भरने मिट्टी का मटका ले जाती तो उसे गुलेल मार कर फोड़ देता या फिर पीतल का मटका होने पर तीर मारकर फोड़ देता। यह शिकायत राजा के पास पहुँची। राजा ने उसे दरबार में बुलवाया और पूछा की तुम कौन हो ? तो गांगी धुर्विन ने कहा कि यह एक गरीब औरत का बच्चा है। लेकिन राजा के बार बार पूछने पर कचना धुर्वा सामने आया और बोला मैं कंचना धुर्वा हूं और नगवढ़ के राजा धुर्वा का लड़का हुं। राजा ने कहा कि तुम्हें यह सिद्ध करना होगा कि तुम राजा धुर्वा के लड़के हो।

राजा ने कचना धुर्वा को सातवें दिन दरबार में बुलवाया और कहा कि इस केले के पेड़ को तलवार के एक ही वार में दो टुकड़े कर दो। केले के पेड़ के अन्दर राजा ने लोहे की एक मोटी छड़ डलवा दी थी। कचना धुर्वा ने माटा माझी की लकड़ी की तलवार ली और एक ही वार में केले के पेड़ के दो टुकड़े कर दिया। राजा बहुत खुश हुआ और उसने उसे विन्द्रानवगढ़ का राज दे दिया। यहाँ पर कचना धुर्वा ने कई वर्षों तक राज किया। कई युद्ध जीते। आखिर में वह मारा गया। उसका बिन सिर का जीवित शरीर दामा करेली में है और सिर नवागढ़ में।

९ लाम सेना से आशय उस व्यक्ति से है जो विवाह के बाद लड़की के घर पर रहता हो और उसी के परिवार के लिये कार्य करता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० कमारों में सामाजिक बहिष्कार एक कठोर दंड है। इसमें न केवल बहिष्कृत व्यक्ति से सामाजिक सम्पर्क तोड़ लिया जाता है बल्कि दंड की अवधि तक उसे सामान्य बस्ती से बाहर रहा पड़ता है।

११ वन्य सम्पदा की चोरी के अन्तर्गत बन से लकड़ी काटना महुए की शराब बनाना और सरकारी क्षेत्र में उत्पन्न वस्तुओं की चोरी आदि आती है।

१२ सबसे पहले महादेव बाघ बनकर इन दोनों को डराने आये। जिससे ये लोग पास सो जायें। लड़की तो डर गई मगर लड़के ने कहा यह तो केवल बाघ है। यह तुम्हारा कुछ नहीं करेगा सो जाओ। महादेव ने दूसरी बार साँप का रूप धारण किया। इस बार फिर लड़की डर गई लेकिन लड़के ने कहा यह तुम्हें नहीं काटेगा। सो जाओ। इसी प्रकार महादेव ने कई प्रयास किये जिससे ये दोनों करीब सो जायें। आखिर में महादेव ने चिटियों का रूप धारण किया और लड़की के शरीर को घेर लिया। लड़की ने घबरा कर कहा मैं तो चारों तरफ से चींटियों से घिर गई हूं। लड़के की तरफ कोई चींटी नही थी। लड़के ने कहा यह मेरे पास सो जाओ। यहाँ पर चीटियाँ नहीं हैं। इस प्रकार भगवान महादेव अपने उद्देश्य में सफल हुए (दुबे, १९५१ : १४२)

१३ दुबे, १९५१ : १५२-५३.१

संदर्भ

दुबे, बी० के० तथा एफ० बहादुर १९६७ ए० स्टडी आफ ट्राइबल पीपुल एण्ड ट्राइबल एरिया ऑफ एम. पी., भोपाल, ट्राइबल रिसर्च एंड डिवेलपमेंट इंस्टीट्यूट, एम० पी०

दुबे, एस० सी० १९५१ दी कमार, लखनऊ, यूनिवर्सल पब्लिकेशन

मजूमदार, डी० एन० तथा टी० एन० मदन १९७४ सामाजिक मानवशास्त्र परिचय, गोपाल भारद्वाज, नई दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाऊस

नेगी, बलबीर सिंह १९६४ एन्थ्रोपोग्राफी, इलाहाबाद, किताब महल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिपोर्ट	१९८५	ड्राफ्ट ट्राइबल सब प्लान सेवेन्थ फाइव इयर प्लान (१९८५-९०), भोपाल, गवर्नमेंट आफ मध्य प्रदेश, डाइरेक्टरेट आफ ट्राइबल एरिया डिवेलपमेंट प्लानिंग, अंक १
रसेल, आर० बी० तथा हीरा लाल	१९७५	ट्राइबल एंड कास्टस आफ दी सेन्ट्रेल प्रोविंस आफ इंडिया, दिल्ली, राजधानी बुक सेंटर
तिवारी, शिव कुमार	१९८४	मध्य प्रदेश के आदिवासी, भोपाल मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ आकादमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहकारिता सह-अस्तित्व एवं **सहयोग**

द्वारा

समाजवाद एवं आर्थिक समृद्धि

के लिए

समर्पित

कैरियर चिट फंड प्राइवेट लिमिटेड

फ्लैट नं० १, न्यू मार्केट

हजरतगंज, लखनऊ-२२६००१

जर्मन सहयोग से निर्मित

ओमेगा

रंगीन टी० वी०

बाजार में निम्नतम् मूल्य पर उपलब्ध

वितरक : ओमेगा मार्केटिंग प्रा० लि०

फ्लैट न० ३, न्यू मार्केट

हजरतगंज, लखनऊ-२२६००१

फोन : ३४४९७, ३११२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोचरवाद (Phenomenology)

अयोध्या सरन तिवारी

मानव चिंतन के प्राचीनतम अभिलेखों से पता चलता है कि मनुष्य प्रारम्भ से ही इस जगत के रहस्यों को समझने और समझाने का प्रयास करता रहा है। उसके इसी जिज्ञासु स्वभाव की ओर अरस्तू ने संकेत किया है। वस्तुतः मनुष्य ऐन्द्रिक स्तर पर ही जीवन यापन करने वाला प्राणी नहीं है। उसने संसार को सदैव जीवन मूल्यों और आदर्शों को ढालने वाले साँचे के रूप में ही देखा और समझा है। भौतिक जगत के भीतर उसने अर्थों की तहें खोजी हैं। गुफाओं में रहने वाले आदिम मानव ने जीवन को समझने का जो प्राथमिक प्रयास किया था, आधुनिक जीवन-दर्शन उसी प्रयास का चरम प्रतिफल है।

इसी दिशा में समाजशास्त्र एक अपेक्षाकृत नया उपक्रम है जिसे शनैः शनैः मान्यता एवं समादर प्राप्त हो रहा है। इधर कुछ वर्ष पूर्व समाज शास्त्रीय अध्ययन से दो शाखायें प्रस्फुटित हुई हैं–गोचरवादी-समाजशास्त्र और Ethno-methodological समाजशास्त्र। परम्परागत समाजशास्त्र एवं इन विधाओं में जो अन्तर है वह प्रकारान्तर न होकर दृष्टिकोण का अन्तर है। गोचरवादी समाजशास्त्र दैनिक जीवन में अन्तर्वैयक्तिक चेतना (Intersubjective Consciousness) यानी व्यक्ति के अपने निजी चिंतन और विचारों को आधार मानकर चलता है, जबकि परम्परागत समाजशास्त्र का विषय है ज्ञान—विशेष रूप से बौद्धिक ज्ञान—एवं सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन। गोचरवादी और Ethno metheodological समाजशास्त्रियों ने अपना ध्यान बौद्धिकता से हटाकर व्यक्ति के आत्यन्तिक अंतरंग और आत्मपरक पहलुओं पर संकेन्द्रित किया है। इनके अध्ययन का क्षेत्र इस प्रकार है:—

(१) वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण—वह इनमें किस प्रकार के अर्थ खोजता है?

(२) किस परिप्रेक्ष्य में मनुष्य अपने और दूसरों को देखता है?

(३) मनुष्य का व्यवहार किन निहित प्रयोजनों से परिचालित होता है।

डा० अयोध्या सरन तिवारी, प्रवक्ता समाजशास्त्र, जय नारायण डिग्री कालेज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ विद्वानों के मतानुसार यही समाजशास्त्र के अध्ययन का तात्विक क्षेत्र होना चाहिये।

अपनी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक 'Ideas : Introduction to pure phenomenology' (1913) में एडमंड हुसर्ल (Edmund Husserl) ने 'गोचरवाद' शब्द का प्रयोग दार्शनिक एवं विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ में किया है। किसी भी विज्ञान की सामान्य विधि के अनुसार प्रकल्पित तथ्यों के आधार पर परीक्षण प्रणाली द्वारा अज्ञात तथ्यों का अनुसंधान एवं प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन किया जाता है। गोचरवादी सिद्धान्त की अध्ययन शैली अपेक्षाकृत मृदु होती है। गोचरवाद प्रकल्पित अवधारणाओं को यथासम्भव दरकिनार कर कठोर आत्मनिरीक्षण के माध्यम से पर्यवेक्षण, वर्णन, वर्गीकरण की एक ऐसी तकनीक उपार्जित करने का प्रयास करता है जिसके द्वारा प्रकृति की संरचनायें एवं पारस्परिक सम्बन्धों के सत्य उजागर हो सकें। वस्तुत: ये सत्य प्रायोगिक विधि के द्वारा द्रष्टव्य नहीं हो सकते। 'Ideas' पुस्तक के प्रणयन का उद्देश्य गोरचवादी दर्शन एवं गोचरवादी मनोविज्ञान के अन्तर को सुस्पष्ट करना था। हुसर्ल ने गोचरवादी मनोविज्ञान को गौण तथा गोचरवादी दर्शन को समस्त विज्ञान की आधारशिला माना है। कोई भी समाजशास्त्री या मनोवैज्ञानिक जब गोचरवादी पद्धति से परीक्षण सम्पादित करता है तो वह शोध-क्षेत्र में अब तक व्याप्त सभी सिद्धान्तों और अवधारणाओं को ताख पर रख देता है। स्पष्ट है कि वह सभी पूर्व धारणाओं से अपने को मुक्त नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ, वह बाह्य जगत की उपस्थिति एवं प्रकृति की तारतम्यता को तो मानकर चलता ही है। जैसा प्लेटो (Plato) ने कहा है कि दर्शनशास्त्र को छोड़कर प्रत्येक विज्ञान किसी न किसी पूर्वानुमान को आधार मानकर आगे बढ़ता है। प्रत्याशी के अनुरूप गोचरवादी दर्शन एक ऐसे विज्ञान को प्रस्तुत करने का उपक्रम है जो सर्वथा पूर्वानुमानों से मुक्त हो। विशुद्ध गोचरवाद (pure phenomenology) ऐसे ही विज्ञान का नाम है।

हुसर्ल कहता है कि चेतना को प्राकृतिक कारणों (Natural Causes) की शब्दावली में स्पष्ट करने का प्रयास तभी तक बचकाना प्रतीत होता है, जब तक हम यह भूले रहते हैं कि चेतना को शासित करने वाले पदार्थ (Matter) और नियम (Laws) स्वयं मानवीय अनुभव के ही अंग हैं। हुसर्ल के अनुसार दार्शनिक को इसी बिन्दु पर प्रवेश करना चाहिये। अनुभव के अन्तरंग क्षेत्र में "जो अनुभव करता है" तथा "जिसे अनुभव किया गया है" के मध्य अन्तर को सिद्ध करना उसका प्राथमिक कर्तव्य है। हुसर्ल कहता है कि गोचरवादी दार्शनिक को अपने स्वभागवत विश्वासों को ही नहीं, जगत की बाह्य स्थिति एवं स्वयं अपनी सत्यता में अपने विश्वासों को स्थगित करना होगा। Causation और Motion के सम्बन्ध में हमारे पूर्वाग्रहों को विलग करने के लिये ही स्वभावगत दृष्टिकोण के स्थगन की आवश्यकता होती है। वास्तव में यह कार्य प्रणाली (methodological procedure) का पूर्वापेक्षित अंग है। इसका उद्देश्य जहाँ हमें मानव-सुलभ वृत्तियों और पूर्वाग्रहों से मुक्त करना है, वहीं वस्तुस्थिति के शीतल मस्तिष्क से आकलन करने हेतु मानसिकता का निर्माण करना भी है। निर्णयों के स्थगन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रक्रिया को यूनानी दर्शन में 'epoche' शब्द से व्यक्त किया जाता है। हुसर्ल भी epoche शब्द को इसी अर्थ में प्रयोग करते हैं।

समाजशास्त्र में गोचरवादी दृष्टिकोण इसी दार्शनिक-भूमि पर प्रतिष्ठित है। यों तो यह दृष्टिकोण इस शास्त्र की प्रारम्भिक अवस्था में ही परिलक्षित होने लगा था, किन्तु कार्य-प्रणाली सम्पन्न सैद्धान्तिक मत के रूप में इसकी स्थापना इस शताब्दी के तीसरे चरण में हुई। बड़े-बड़े चिन्तक इस विचारधारा से आकृष्ट हुए और उन्होंने इसके विकास में अपना योगदान दिया। जैसा टिमाशेफ (Timascheff) कहता है, हुसर्ल का गोचरवाद प्रत्यक्षवाद (positivism) अथवा प्रकृत अनुभववाद (natural empiricism) की समीक्षा है। अनुभववाद यह मानकर चलता है कि वैज्ञानिक अपनी पाँच इन्द्रियों के सहारे इस जगत का परीक्षण कर वस्तु-निष्ठ ज्ञान की वह राशि प्रस्तुत कर सकता है जो जगत की वास्तविकता को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ हो। गोचरवादी अनुभववाद को मात्र भोलापन मानता है और उसकी तीखी आलोचना करता है क्योंकि अनुभववाद मानव-मस्तिष्क को महज एक खाली-डिब्बे की तरह समझता है, या ऐडी (Edie) के शब्दों में 'मानव-मस्तिष्क' को वाह्य जगत से प्राप्त पृथक, सहज, आणविक प्रभावों का अभिग्रहक (raceptor) मानता है।

हुसर्ल का गोचरवाद इस प्रकार एक महत्वपूर्ण दार्शनिक उपक्रम के रूप में हमारे सामने आया जिसका उद्देश्य मानव ज्ञान की परम विशुद्ध भूमि का अनुसंधान एवं उद्घाटन था। गोचरवाद की खोज उन तत्वों (essences) की खोज थी जिन पर सांस्कृतिक, सामाजिक सापेक्षवाद (relativism) का प्रभाव नहीं होता। डिकेन्स (Dickens) के अनुसार हुसर्ल के पूर्णरूप से विकसित दर्शनशास्त्र को व्याख्यात्मक भाष्यविज्ञान (hermeneutic) कहा जा सकता है जो मानव-ज्ञान की परमशुद्ध आधार-भूमि को अव्यक्त पूर्व-धारणाओं द्वारा उजागर करता है। यही इस विज्ञान का चारित्रिक गुण है। इस प्रकार यह कहना अनुचित होगा कि गोचरवाद परमशून्य विन्दु से अपना अनुसंधान प्रारम्भ करता है। सच तो यह है कि यह अनुसंधान निहित पूर्वाग्रहों (hidden biases) तथा प्राक्-सैद्धान्तिक अभिप्रायों (pre-theoritical notions) को प्रकाश में लाकर अपनी वस्तु-निष्ठता (objectivity) को सिद्ध करता है। मानव-ज्ञान या बुद्धि (understanding) का स्वरूप विशुद्ध रूप से ऐतिहासिक होता है। अस्तु, गोचरवादी-व्याख्या, आलोचना तथा पुनर्निरीक्षण की अनवरत प्रक्रिया पर आधारित होती है। हुसर्ल का विश्वास था कि यद्यपि यह दृश्य-जगत वास्तविक है और उसका अस्तित्व वस्तु-निष्ठ है फिर भी मानव की व्यक्तिनिष्ठ चेतना (Subjective consciousness) से ज्ञातव्य होने के कारण विवेचना स्तर पर यह जगत समाज-निर्मित वास्तविकता का रूप धारण कर लेता है। गोचरवाद को आमूल-परिवर्तनवादी दार्शनिक मत (radical philosophical position) माना गया है, क्योंकि वह समाजशास्त्र के अनुभवजन्य आधार (empirical—foundation) पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है और व्यक्ति-निष्ठ चेतना से कटे हुए तथाकथित वस्तु-निष्ठ विज्ञान की सम्भावना को नकारता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध गोचरवाद से समाज-शास्त्रीय गोचरवाद की ओर बढ़ने के पूर्व हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि गोचरवादी—समाजशास्त्र वस्तुतः नव-प्रत्यक्षवाद (neo-Positivism) का विशुद्ध विलोम है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, गोचरवादी समाजशास्त्र अनुभव-जन्य आधारों को सन्दिग्ध मानता है एवं परम्परागत समाजशास्त्रीय ज्ञान की पर्याप्तता पर ही नहीं, उसकी अर्थवत्ता पर भी प्रश्न चिन्ह लगाता है। अतः यदि गोचरवादी समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र और निजी परिप्रेक्ष्य (perspective) प्राप्त करना है तथा हुसर्ल के गोचरवाद से अपना नाता कायम रखना है तो जैसा टिमाशेफ (Timascheff) कहते हैं—गोचरवादी समाजशास्त्र को चेतना की संरचना के विश्लेषण पर एवं वैयक्तिक चेतना की संरचना के पारस्परिक सम्बन्धों पर विशेषरूप से अपना ध्यान संकेन्द्रित करना होगा।

यहाँ यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिये कि हुसर्ल महोदय सामाजिक एवं व्यवहारवादी विज्ञान (Behavioural Science) की ठोस एवं संकल्पनात्मक समस्याओं से अवगत न थे। अस्तु, कई समाजशास्त्री एवं दार्शनिक गोचरवादी समाजशास्त्र की सत्ता एवं सम्भावना को ही संदेह की दृष्टि से देखते हैं। फिर भी समाजशास्त्रियों का एक मुख्य दल गोचरवादी दृष्टिकोण के विकास में प्रयत्नशील है। इस दिशा में वे जर्मनी के निर्वासित नागरिक एल्फ्रेड शुट्ज (Alfred Schutz) की कृतियों को आधार बना रहे हैं। शुट्ज गोचरवादी समाजशास्त्र के जनक-तुल्य माने जाते हैं—कम से कम अमरीकी धरती पर उपविद्या के रूप में इस शास्त्र को स्थापित करने में उनका विशेष योगदान है। अपनी पुस्तक में उन्होंने मैक्स वेबर (Max Weber) के कर्म (action) की अवधारणा एवं आदर्श-प्रतीक संरचना विधि (ideal type construction) को भी स्पष्ट किया है। हीप एवं राथ (Heap and Roth) कहते हैं, शुट्ज (Schutz) ने अपनी कृति में दृश्यजगत के निश्चर-प्रारूप-संरचना (invariant formal structure) एवं परिवर्तन-कौशल (manipulation) तथा संगति एवं वर्गीकरण की प्रणाली (System of relevance and-typification) पर भी प्रकाश डाला है।

शुट्ज के अवदान की विवेचना के पूर्व यूरोप में गोचरवाद के कुछ मसलों पर कार्य कर रहे कतिपय दार्शनिक समाजशास्त्रियों का उल्लेख करना आवश्यक है। इन समाजशास्त्रियों में महत्वपूर्ण नाम जर्मनी के एल्फ्रेड वीरकांट (Alfred Vierkandt) और उनके समकालीन फ्रांसीसी समाजशास्त्री जूल्स मनरो (Jules Monnerot) के हैं। वीरकांट (Vierkandt) की पुस्तकों में 'Natural and Cultural-People' (1895) और 'Theory of Society' (1900) उल्लेखनीय हैं। वीरकांट के अनुसार समाज मानव की पारस्परिक क्रियाओं का समुच्चय है। (निस्संदेह यह कोई मौलिक विचार नहीं है) उनकी कार्य-प्रणाली को उद्भावनात्मक पृथकीकरण (ideational abstraction) की संज्ञा दी गई है। इस प्रणाली के अनुसार मूलभूत अपरिवर्त्य अवधारणाओं (basic irreducible concepts) के चिन्तन द्वारा शोधकर्ता अनुसंधान सम्पादित करता है। शुट्ज की कृतियों में भी 'irreducible—concepts' और 'contemplation' की बहुत चर्चा हुई है। मानरो (Monnerot) दुर्खीम विरोधी (anti–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Durkhemian) थे जैसा उनकी पुस्तक 'Social Facts Are Not Things' के शीर्षक से ही सुस्पष्ट है। उनकी रचनाओं में हमें तात्कालिक अनुभवों को घनीभूत करने वाली उन सामाजिक स्थितियों का अध्ययन मिलता है जिनका समाजशास्त्रीय विश्लेषण हो सकता है। मानरो (Monnerot) का दृढ़ विचार था कि सामाजिक तथ्य (Social facts) वस्तुतः मानव द्वारा परिभाषित एवं अनुभूत स्थितियों का ही दूसरा नाम है। वे तथ्यात्मक इसी अर्थ में हैं जिस अर्थ में हम मानवीय युक्ति-योजनाओं (contrivances) को तथ्यात्मक मान सकते हैं।

Alfred Schutz (1899-1959) **एल्फ्रेड शुट्ज**—शुट्ज महोदय उन्हीं अर्थों और अभिप्रायों को केन्द्रीय महत्व देते हैं जिन अर्थों और अभिप्रायों में मनुष्य किसी सामाजिक स्थिति या स्थितियों को देखता है। जिन अर्थों से मनुष्य समाज को मंडित करता है उन्हीं अर्थों को शुट्ज विशिष्ट महत्व देते हैं। उन्होंने हुसर्ल की दार्शनिक दृष्टि को अपनाते हुए वेबर (Weber) की व्यक्ति-निष्ठ बुद्धि (Subjective Understanding) की अवधारणा को भी अपनी प्रणाली में समाहित किया। सामाजिक समस्याओं पर हुसर्ल की दार्शनिक विचारधारा को लागू करने की प्रक्रिया से शुट्ज ने वेबर की उक्त अवधारणा को बहुत अनुकूल पाया। शुट्ज की मूलभूत मान्यता थी कि अनुभव और अर्थों की साझीदारी-संबन्धी अवधारणा वह आधार निर्मित करती है जिस पर सामाजिक जीवन संभव होता है। इस सन्दर्भ में उनकी प्रमुख कृतियाँ The Phenomenology of Social World, The Problem of Social World, Studies in Social Theory तथा Studies in Phenomenological Philosophy हैं। सामाजिक सम्बन्धों के प्रमुख तत्वों, जिन पर उसने बल दिया, वे हैं—विशिष्टता या विलक्षणता (Uniqueness) एवं प्रतीकीकरण (typification) बार-बार पुनरावृत्त होने वाली सामाजिक स्थितियाँ एक ऐसी प्रक्रिया को परिचालित करती हैं जिसके द्वारा स्थितियों और व्यक्तियों के प्रतीकीकरण एवं वर्गीकरण (typification categorizing of situations and persons) की क्रिया सम्पन्न होती है। स्थूल सिद्धान्त यह है कि जितना अधिक सम्बन्ध वैयक्तिक होगा, उतना ही अधिक अनोखा या विशिष्ट उस सम्बन्ध का स्वरूप होगा और जितना ही अधिक सम्बन्धों का स्वरूप अवैयक्तिक होगा, उसी के अनुपात में उन सम्बन्धों का चरित्र प्रतीकात्मक (typified) होगा। व्यक्तिगत एवं अव्यक्तिगत सम्बन्धों के स्वरूप पर ही उन सम्बन्धों का चरित्र आश्रित होगा। व्यक्तिगत सम्बन्धों की प्रगाढ़ता से विशिष्टता या विलक्षणता (uniqueness) उत्पन्न होती है और अव्यक्तिगत सम्बन्धों से प्रतीकीकरण का निर्माण होता है। शुट्ज के अनुसार दैनिक जीवन को व्यक्ति द्वारा दी गई अर्थवत्ता ही सर्वाधिक महत्व की होती है। शुट्ज व्यक्ति द्वारा दी गई परिभाषा या मान्यता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। उनका विश्वास है कि पारस्परिकता या अन्योन्याश्रय की दशा में सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए सामाजिक स्थितियाँ वस्तुतः समानार्थी होती है। शुट्ज इस प्रकार की स्थिति को परिप्रेक्ष्य की आदान-प्रदानता (reciprocity of perspectives) कहता है। उदाहरणार्थ, वाद्यवृन्द में प्रत्येक वादक अपने निर्देशक के मन्तव्य की साझीदारी करता है, पूरे वृन्द में मन्तव्य की समरूपता होती है, अतः एक वादक सरलता से अपना स्थान निर्देशक के साथ अदल-बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। इस प्रकार परस्पर प्रभावी स्थितियों में अर्थों की साझीदारी की परिकल्पना की जा सकती है। इन स्थितियों में लोग परिचित वास्तविकता के आधार पर व्यवहार करते हैं। हुसर्ल ने अपनी प्रणाली में जगत की सत्तामीमांसा (ontology of the life world) की भी चर्चा की है। इस संबंध में कदाचित् उनका यही आशय है कि मानवीय अनुभवों का एक प्रकल्पित स्वयं सिद्ध प्रारूप है जिसके भीतर मानव अपना जीवन जीता है। शुट्ज ने इसी स्वयंसिद्ध विश्व-रचना (a priori structure of the world) की व्याख्या की है जिसके अन्तर्गत ही सामाजिक घटना-जगत (Social phenomenon) को भली प्रकार समझा जा सकता है। इसके साथ ही शुट्ज इन प्रकल्पित तथ्यों में अन्तर्व्यक्ति-निष्ठता (inter-subjectivity) की अवधारणा भी निहित पाते हैं। इस अवधारणा की वे चर्चा करते हैं, पर उसकी पूर्णता से व्याख्या नहीं करते। दृश्य जगत (life-world), अन्तर्व्यक्ति-निष्ठता (inter-subjectivity) एवं प्रकृत दृष्टिकोण (natural attitude)—ये हैं तीन स्तंभ जिन पर शुट्ज का सामाजिक गोचरवाद स्थित है।

बर्गर (Berger) और **लकमन** (Luckmann) ने इसी विचारधारा पर समाजशास्त्र की रचना की है। ये दोनों विचारक अपने को ज्ञान (Knowledge) का गोचरवादी समाजशास्त्री मानते हैं। इनकी चर्चा करने के पूर्व कार्ल मैनहीम (Karl Mannheim) का उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि ज्ञान (knowledge) के समाजशास्त्र में मैंनहीम का वही स्थान है जो गोचरवादी समाजशास्त्र में शुट्ज का है। दोनों की विचारधारा पर हुसर्ल का गहरा प्रभाव है। कार्ल मैनहीम (1893—1947) एक जर्मन समाजशास्त्री थे। अपनी प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक 'Ideology and Utopia (1936) में मैनहीम कहते हैं कि ज्ञान की प्रक्रिया (act of cognition) को मीमांसात्मक चेतना (Theoritical-consciousness) का प्रयास नहीं मानना चाहिए, क्योंकि मानव-चेतना पर मीमांसा से इतर तत्वों (non-theoritical elements) का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। ये तत्व मनुष्य के सामाजिक जीवन एवं उसकी इच्छा-वृत्तियों से प्रस्फुटित होकर उसके जीवन पर अपना महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। अस्तु, मैंनहीम ने चेतना के इस स्तर को समझने एवं मनुष्य के ज्ञान के विश्लेषण हेतु एक नई विद्या (discipline) की वकालत की—ज्ञान के समाजशास्त्र की। इस विद्या के अनुसार सभी मानव ज्ञान स्थिति-बद्ध होता है। अर्थात् वह समाज की सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियों की पूंजीभूत राशि से आबद्ध होता है। प्रत्येक युग अपने मिजाज के मुताबिक एक विशिष्ट विचारधारा विकसित करता है। निहित विभिन्नताओं में उपजने के कारण एक वैचारिक शैली की तुलना दूसरी वैचारिक शैली से नहीं हो सकती। एक ही युग में परिवर्तन एवं रूढ़िवाद की अन्तर्विरोधी धाराएँ भी साथ-साथ प्रवाहित होती हैं। रूढ़िवाद का आग्रह सिद्धान्तवादिता को जन्म देता है। इस सिद्धान्तवादिता में जहाँ एक ओर विगत युग का अतिरंजित आदर्शीकरण होता है, वहीं स्थायित्व के तत्वों को भी विशिष्ट रूप से प्रश्रय दिया जाता है। इसके विपरीत परिवर्तन का आग्रह आदर्श के स्वप्न लोकों की सृष्टि करता है और सुनहरे भविष्य के विधायक कारणों को वरीयता प्रदान करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैनहीम के अनुसार सिद्धान्तवादिता और आदर्शलोक की परिकल्पना के मध्य एक भूमि हो सकती है, जहाँ दोनों का सह-अस्तित्व बिना कटुता या वैमनस्य के हो सकता है—भले इस सह-अस्तित्व से समाज का कुछ बनता-बिगड़ता न हो। मैनहीम इन दोनों विचारधाराओं के ध्रुवीकरण से उत्पन्न समाज में विरोधी दलों के संघर्ष की प्रवृत्ति की ओर भी इंगित करता है। उसका कहना है कि वाद-विवाद एवं घात-प्रतिघात की मानसिकता से मुक्त अपेक्षाकृत सीमित संख्या वाले बुद्धिजीवी (जो किसी भी खेमे में प्रतिबद्ध नहीं हैं) वही सत्य के निकटस्थ होते हैं। मैनहीम के अनुसार इन बुद्धिजीवियों को समाज के संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में समकालीन विचारधाराओं में सामंजस्य बैठाना चाहिए जिससे वैचारिक असंतुलन या एकांगिकता को काफी हद तक दूर किया जा सके। इस प्रकार के गत्यात्मक संश्लेष (dynamic synthesis) से समाज को उसकी सीमाओं के भीतर यथार्थवादी दृष्टिकोण के निकट लाया जा सकता है। मैनहीम के अनुसार प्रत्येक सामाजिक-ऐतिहासिक स्थिति एक रेखीय, सतत् विकासमान, अप्रतिगामी एवं लौकिक विस्तार की गतिशील धारा होती है। प्रत्येक स्थिति की अपनी विशिष्टता होती है और इस स्थिति में उपजा ज्ञान भी समय एवं स्थिति सापेक्ष होने के नाते अपनी विशिष्टता लिये होता है।

फिर भी ज्ञान के समाजशास्त्री होने के नाते मैनहीम स्थितियों की सत्यता से इतना आकृष्ट न थे। सत्य की उनकी अवधारणा भिन्न थी। उनके अनुसार सत्य यथार्थ का एक गुण है। वह व्यक्ति जो अपने युग की जीवन्त शक्तियों के संपर्क में होता है, वही सत्य को समझता है। मैनहीम की इस विचारधारा में उनका मार्क्सवाद, इतिहासवाद तथा यथार्थवाद परिलक्षित होता है। उन्होंने विचार और यथार्थ के समीकरण के स्थान पर विचार और स्थिति के समीकरण पर अधिकाधिक बल दिया। दूसरे शब्दों में मैनहीम सत्य से अधिक यथार्थ के परिमार्जित रूप को महत्वपूर्ण समझते हैं।

इस प्रकार मैनहीन के चिन्तन पर हुसर्ल के गोचरवाद का प्रभाव स्पष्ट है। हुसर्ल के गोचरवाद में जिस बात ने मैनहीम को सर्वाधिक आकृष्ट किया वह (तत्वों का सूक्ष्म अध्ययन न होकर) मानव विचार की अभिप्रायता (intentionality) थी। हुसर्ल ने कहा था कि समकालीन विचारधारा में ज्ञाता और ज्ञात (Known) के अन्तर को तथा ज्ञान-प्रक्रिया की निश्चेष्टता संबन्धी अवधारणा को त्यागना होगा। उसके स्थान पर साभिप्राय कर्मशीलता (intentional activity) के माध्यम से ज्ञान-प्रप्ति की सक्रियता को महत्व देना चाहिए।

पीटर बर्गर (Peter Berger) और **टामस लकमन** (Thomes Luckman) ने ज्ञान के गोचरवादी समाजशास्त्र पर अपने विचार अपनी पुस्तक 'The Social-Construction of Reality' में व्यक्त किये हैं। उनकी विचारधारा परम्परागत ज्ञान के समाजशास्त्र से भिन्न है। वे ज्ञान की वैधता विषयक मीमांसा में नहीं उलझते। उनके अध्ययन का मूल विषय वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा ज्ञान की राशि समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कर वास्तविकता के रूप में प्रतिष्ठित होती है। इन विद्वानों के मतानुसार ज्ञान के समाजशास्त्र का सरोकार यथार्थ की सामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिक संरचना के विश्लेषण (analysis of social construction of reality) से है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हुसर्ल के व्यापक प्रभाव के फलस्वरूप गोचरवादी समाजशास्त्र परम्परागत वैज्ञानिक समाजशास्त्र के अनुभवजन्य अध्ययन शैली से हटकर चेतना के अन्तर्वैयक्तिक स्वरूप (inter-subjectivity) को महत्व देता है और मानव के पारस्परिक व्यवहार में सामाजिक अर्थवत्ता की खोज करता है। गोचरवादी समाजशास्त्र की एक शाखा जिसे ethnomethodology कहते हैं, उसमें दैनिक जीवन की व्यावहारिक स्थितियों में सहज तथ्यों (Commonsense reality) की संरचना प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है।

गोचरवादी समाजशास्त्र की कुछ अवधारणायें जिन्हें विशेष समादर मिला है उन्हें भली प्रकार समझ लेना चाहिए। घटाव या अपचयन (Reduction) की अवधारणा—उसका अर्थ और प्रयोग भी—महत्वपूर्ण है क्योंकि शुट्ज के गोचरवादी समाजशास्त्र में यह शब्द केन्द्रीय महत्व का है। गोचरवादी बाह्य-जगत के अस्तित्व को नकारता नहीं है, पर विश्लेषण के उद्देश्य से वह उसके अस्तित्व में अपने विश्वास को स्थगित कर देता है, अर्थात् जान-बूझ कर बाह्य-जगत सम्बन्धी तमाम निर्णयों से अपने को अलग कर लेता है। गोचरवाद समाजशास्त्र का सार तत्व ही यह है कि वह व्याख्या की प्रवृत्ति पर रोक लगाकर जड़-चेतन, स्त्री-पुरुष, सांस्कृतिक उपादानों, सामाजिक संस्थाओं, विज्ञान की स्थापनाओं तथा समूचे वाह्य-जगत के प्रति पूर्व-धारणाओं सभी को कोष्ठ-बद्ध कर देता है।

शुट्ज तथा उनके परवर्ती गोचरवादी समाजशास्त्रियों ने जो जटिल पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये हैं उनमें एक 'तत्व की अवधारणा' भी है। हीप और रॉथ के अनुसार तत्व (essence) अन्तर्बद्धि प्रसूत अपरिवर्त्य गुण (intuited invariant quality) है जिसके बिना अभिप्रेत वस्तु (intended object) तथा दृश्य-जगत, वह नहीं हो सकता, जो वह है। तत्व (essence) का आशय संभावनाओं के उस प्रकल्पित क्षेत्र से है जो वास्तविकता का अग्रगामी होता है। गोचरवादी कहते हैं कि तत्व का अनुसंधान अन्तबुद्धि (intuition) के द्वारा-किन्तु किसी प्रयत्क्ष अभिप्रेत वस्तु (intended object) के माध्यम से किया जाता है। यह अभिप्रेत वस्तु ऐसी होती है जिसे हम अनुभवित (experience) कर सकते हैं शुट्ज के अनुसार हम तत्व तक अपचयन या घटाव (reduction) की प्रक्रिया से पहुंचते हैं। किसी भी वस्तु के विशिष्ट एवं चारित्रिक गुण तक हम प्रकल्पना के द्वारा ही पहुंच सकते हैं—उस युक्ति के द्वारा जो वस्तु जगत के वास्तविक ज्ञान पर आधारित हो।

गोचरवादी समाजशास्त्र में एक अन्य कठिन शब्द जो विशेष महत्व का है वह 'फेनामेनन'। वर्तमान समाजशास्त्र हुसर्ल के उस कथन को महत्व देते हैं जिसमें उन्होंने कहा था—'to the things themselves'। इस कथन का संकेत उस दृश्य-जगत (phenomenon) से है जो हमारी प्रत्यक्ष चेतना के समक्ष है। हीप और रॉथ ने phenomenon की व्याख्या करते हुए कहा है कि इस शब्द से हुसर्ल का आशय उस विशुद्व वास्तविकता से है जो गोचरवादी घटाव या अपचयन (reduction) के माध्यम से उपलब्ध होती है। स्पष्ट है कि सामान्य चेतना द्वारा ग्रहण की गई वास्तविकता से यह वास्तविकता भिन्न व अमिश्रित तथा शुद्ध होती है। अतः Phenomenon

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे सामने तभी उभर आता है जब हम किसी वस्तु को वास्तविक न मानकर उसमें निर्दिष्ट (intended) अर्थ का ही साक्षात्कार करें । निर्दिष्ट (intended) शब्द से हुसर्ल के (intentionality) अभिप्रायता की अवधारणा का स्मरण होता है । अभिप्रायता का शब्द हुसर्ल की भाषा और कार्यप्रणाली (methodology) में प्रमुख स्थान रखता है । यद्यपि अभिप्रायता (intentionality) को प्रयोजन (purpose) के अर्थ में भी प्रयोग किया जा सकता है, पर ऐसा अनुभव के predictive स्तर पर ही होता है यानी वेबर के अर्थों में 'निर्णय' या 'कर्म' (action) के स्तर पर । हीप और रॉथ के अनुसार हुसर्ल की 'अभिप्रायता' का सम्बन्ध pre-predictive level से भी है ।

गोचरवादी समाजशास्त्री वास्तविकता (reality), व्यक्तिनिष्ठ (subjective), वस्तुनिष्ठ (objective) शब्दों का पारिभाषिक अर्थों में प्रयोग करते हैं । वैयक्तिक वास्तविकता (subjective reality) का आशय व्यक्ति द्वारा स्वीकृत विश्वासों, आशाओं, परिभाषाओं, अर्थों और मूल्यों की उस राशि से है जो सामाजीकरण की प्रक्रिया में उसे उपलब्ध होती है । वस्तुनिष्ठ वास्तविकता से आशय है—सामाजिक स्तर पर मूल्यों और मान्यताओं की सामूहिक स्वीकृति । जब समूचे समुदाय द्वारा मान्यताओं की सामूहिक भागीदारी होती है तो वे वस्तुनिष्ठ (objectify) हो जाती हैं । वैयक्तिक दायरे से निकलकर मनुष्यों के वर्गों, स्थितियों, चरित्रगत व्यवहार के सम्बन्धों में ये मान्यताएँ सामान्यीकृत होकर पूरे समाज द्वारा अपनाई जाती है । इस प्रकार व्यक्ति-सामान्य सामाजिक जगत में भागीदारी प्राप्त करता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक संरचना प्रतीकीकरण एवं उससे उत्पन्न पारस्परिक प्रभावों की पुनरावृत्ति होने वाली प्रक्रिया का सिलसिला है । इसी प्रकार गोचरवादी दृष्टिकोण से संस्था (Institution) की परिभाषा इस प्रकार होगी कि संस्था पारस्परिक प्रतीकीकरण का एक सुपरिचित क्रम है । व्यक्ति संस्थागत जगत को वस्तुनिष्ठ वास्तविकता के रूप में देखता है, पर स्थूल रूप से वस्तुनिष्ठ प्रतीत होने वाले जगत की वस्तुनिष्ठता वस्तुतः मानव-कृत है । वैचारिक चेतना (reflective-consciousness) संस्थागत व्यवस्था को तार्किकता का जामा पहना देती है । वह तर्क जिसके द्वारा सामाजिक संस्थाएँ सुगठित या संगठित होती हैं उसे-legitimization कहा जाता है । इसके द्वारा सीमित प्रयोजनों की संस्थाओं को भी एक अपेक्षाकृत विशाल परिप्रेक्ष्य में समाहित कर लिया जाता है । शुट्ज के शब्दों में हम कह सकते हैं कि समस्त प्रतीकात्मक जगत और न्याय संगति की प्रक्रिया (legitimization) वस्तुतः मानव के ही उत्पाद (products) हैं । उनके अस्तित्व की वास्तविकता एवं वैधता वास्तविक व्यक्तियों के जीवन में ही होती है । इन मनुष्यों के परे इनका कोई अनुभव-जन्य अस्तित्व नहीं होता ।

शुट्ज की विशेषकर गोचरवादी समाजशास्त्र की आलोचना हुई है । जहाँ कुछ आलोचनाएँ कटु और असंतुलित रहीं हैं, वहीं अन्य प्रबुद्ध एवं रचनात्मक भी हैं । एक आलोचक मारिस नटेसन (Maurice Nateson) हैं जो अस्तित्ववादी और गोचर व्यवहारवादी दार्शनिक हैं तथा सामाजिक एवं व्यवहारवादी विज्ञान के पण्डित हैं । नटेसन का कहना है कि समाज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्री को आत्मालोचक होने के साथ सैद्धान्तिक दृष्टि से सम्पन्न होना चाहिए। उसे अपने मत को प्रस्तुत करने के पूर्व उसकी आन्तरिक रूप से जाँच-परख कर लेनी चाहिए। वार्शे (Warshay) जो दूसरे आलोचक हैं उन्होंने अनुभवजन्य प्रणाली के पक्ष और विपक्ष दोनों में अपना मत व्यक्त किया है। अनुभव-जन्य प्रणाली के पक्ष में उनका कहना है कि यह वस्तु-निष्ठ दृष्टिकोण से जो चेतना के भौतिकवादी अवधारणा का पोषण करता हुआ मनुष्य को प्राकृतिक जगत (natural phenomenon) में प्रतिष्ठित करता है। इसके साथ ही वार्शे (Warshay) विश्व को समझने की दूसरी प्रणाली व्यक्तिनिष्ठ प्रणाली का भी समर्थन करता है। यह प्रणाली आधुनिक विज्ञान की अनुभव-जन्य प्रणाली से हटकर सामाजिक वास्तविकता को गोचरवादी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करती है। इस व्यक्ति-निष्ठ दृष्टिकोण के अनुसार विज्ञान मानव-चेतना से उत्पन्न inter–subjective world का एक अंग या पहलू है। यों तो नटेसन ने गोचरवादी समाजशास्त्र की आलोचना की है फिर भी उन्होंने इसके विकास में योगदान दिया है और वैज्ञानिक एवं दार्शनिक जगत में इसे प्रतिष्ठित किया है। उदाहरण के लिए उन्होंने शुट्ज द्वारा प्रयुक्त सामाजिक-भूमिका (social role) और प्रतीकीकरण (typification) की अवधारणाओं के माध्यम से अन्तर्वैयक्तिक चेतना का विश्लेषण किया है। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य सामाजिक अवधारणाओं को जिनमें प्रतीकीकरण भी शामिल है—आत्मसात कर लेता है, अर्थात् विशिष्ट स्थितियों में मानव-व्यवहार के सम्बन्ध में सामाजिक स्तर पर जो प्रत्याशायें और मूल्यांकन होते हैं वह उन्हें आन्तरिक रूप से ग्रहण कर लेता है। इस प्रक्रिया में वैयक्तिक प्रतीकीकरण भी सम्मिलित होता है। आत्म-प्रतीकीकरण (self-typification) का अर्थ होता है व्यक्ति द्वारा स्वयं अपनी भूमिका एवं छवि का व्यक्तिगत स्तर पर मूल्यांकन। नटेसन ने इन अवधारणाओं का व्यापक स्तर पर प्रयोग किया है न केवल सामाजिकता के विश्लेषण में (जो उनके चिन्तन का मुख्य विषय है) अपितु विज्ञान, कला और धर्म के सन्दर्भ में मनुष्यों के मूल्यांकन में भी। कहना न होगा कि जहाँ नटेसन ने गोचरवादी समाजशास्त्र की आलोचना की है, वहीं उस शास्त्र के सशक्त पहलुओं का भरपूर और प्रभावी उपयोग भी किया है। अपनी आलोचना और समर्थन के द्वारा नटेसन ने इस नये अमरीकी समाजशास्त्र के विकास और समृद्धि में एक निर्णायक की भूमिका अदा की है।

संदर्भ

चिनोय, एली तथा जॉन पी० हैविट	१९७५	सोशियोलाजिकल परस्पेक्टिव, न्यूयार्क रेन्डम हाउस, पृ १५६
टिमाशेफ, निकोलस एस० तथा जार्ज थ्योडर्सन	१९६७	"सोशियोलाजिकल थ्योरी", न्यूयार्क, रैंडम हाउस, पृ० ३५२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैनहीम, कार्ल	१९४९	"इंडियालॉजी एण्ड यूटोपिया", न्यूयार्क, हारकोर्ट, ब्रेस एण्ड वर्ल्ड ।
वैलेस, रुथ तथा एलिसन वुल्फ,	१९८०	"कन्टेम्पोररी सोशियोलाजिकल थ्योरी, ऐगेलवुड क्लिपस, प्रेंटिस-हाल, पृ० २६६
बर्गर, पीटर तथा टामस लकमैन	१९६६	"दी सोशल कन्स्ट्रक्शन आफ रिअल्टी", न्यूयार्क, डबल डे, पृ० १९
हीप, जेम्स तथा फिलिप रॉय	१९७३	"आन फेनमेनालाजिकल सोसाइटी", अमेरिकन सोशियोलाजिकल रिव्यू, ३८, २८८
एडी, जेम्स	१९६२	"व्हाट इज फेनमेनालाजी, शिकागो क्वाड्रैंगिल बुक्स, पृ० १९
डिकेन्स, डेविड	१९७९	स्काट मैकनाल द्वारा सम्पादित "थ्योरिटिकल पर्स्पेक्टिव्ज़ इन सोशियालाजी" में सेंट मार्टिन्स प्रेस, न्यूयार्क, पृ० ३४५
	१९७३	कृपया देखें टिमासेफ तथा थ्योडर्सन की पुस्तक "सोशियोलाजिकल थ्योरी" (पृ० २९१—३०५) मारिस नटेसन की पुस्तक "एडमण्ड हुसर्ल, फिलासफर आफ इनफिनिट टास्कस (इवान्ट्सन नार्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी प्रेस, १९७३) में हुसर्ल के गोचरवाद की समाजवादी—अन्तर्दृष्टि से बड़ी सूचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई जो इस संदर्भ में अधिक जानकारी एवं तुलनात्मक अध्ययन हेतु द्रष्टव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका में गोचरवादी समाजशास्त्र के विविध रूपों को जार्ज साथास द्वारा सम्पादित निबन्ध संग्रह में विशद रूप से प्रस्तुत किया गया है। संग्रह का नाम है—"फेनमेनोलाजिकल सोशियालाजी: इश्यूज एण्ड एप्लीकेशन्स, न्यूयार्क, विले ।
एच० आर०, वेग्नर	१९७०	द्वारा सम्पादित "एल्फ्रेड शुट्ज आन फेनमेनालाजी एण्ड सोशल रिलेशन्स", शिकागो, दि यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, पृ १६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंगियों में संस्कृतीकरण

जगदीश नारायण सिंह
एवं
विनोद सिंह

भारतीय समाज में परिवर्तन को समझाने वाले अनेक अभिगम समाजशास्त्र के अन्तर्गत प्रचलित हैं। इन अभिगमों में श्रीनिवास द्वारा प्रवर्तित (१९५२, १९६२, १९६६) संस्कृतिकरण एवं पश्चिमीकरण का अभिगम, रेडफिल्ड (१९५५-५६), सिंगर (१९५९) एवं मैकिम मैरियट (१९५५, १९५९) का लघु एवं बृहद परम्पराओं का अभिगम, डी० पी० मुकर्जी (१९४२) एवं ए० आर० देसाई का प्रकार्यात्मक एवं द्वन्द्वात्मक प्रारूप पर आधारित संरचनात्मक अभिगम,लुई ड्यूमा (१९६६) का ऐतिहासिक अन्तर्जन्य अभिगम; एस० सी० दूबे (१९६५) का पौराणिक, शास्त्रीय, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, स्थानिक, पश्चिमी और उप-सांस्कृतिक परम्पराओं पर केन्द्रोभूत बहुल परम्परातमक अभिगम तथा योगेन्द्र सिंह (१९७३) का समन्वित अभिगम विशेष रूप से महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

जहाँ तक संस्कृतिकरण के सैद्धान्तिक अभिगम की यथार्थता की बात है अब तक भारतीय समाज में परिवर्तन सन्बन्धी इससे अधिक प्रभावशाली दूसरा कोई अभिगम प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। प्रो० श्रीनिवास ने सर्वप्रथम मैसूर के कुर्ग लोगों के विशेष अध्ययन के सन्दर्भ में एक या दो पीढ़ी के अन्दर जातीय संस्तरण में ऊपर उठने की एक प्रवृत्ति के रूप में इस अवधारणा को व्यक्त किया तथा ब्राह्मणीकरण की संज्ञा से इसे सम्बोधित किया। बाद में इसकी पुनः परिभाषा देते हुए लिखा कि "संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई निम्न हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह अपनी प्रथाओं, कर्मकाण्डों, वैचारिकी तथा जीवनशैली को किसी उच्च और प्रायः द्विज जाति की दिशा में परिवर्तित करते हैं।" साधारणतया ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति परम्परा से स्थानीय समाज द्वारा सोपान में जो उसे स्थान मिला हुआ है, उससे ऊँचे स्थान का दावा करने लगती है। किन्तु संस्कृतिकरण से सम्बद्ध गतिशीलता के परिणामस्वरूप व्यवस्था केवल पदमूलक परिवर्तन ही होते हैं, कोई संरचनामूलक परिवर्तन नहीं (श्रीनिवासः १९६६)।

जगदीश नारायण सिंह, व्याख्याता, समाजशास्त्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–२२१००५।
विनोद सिंह, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–२२१००५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रो० श्रीनिवास की यह मान्यता है की संस्कृतिकरण की प्रक्रिया भारतीय इतिहास में निरन्तर चलती रही है और आज भी चल रही है। भारतीय सामाजिक जीवन का कोई भी विश्लेषण संस्कृतिकरण की अन्तर्क्रियायों पर विचार किये बिना पूर्ण नहीं हो सकता। इसकी महत्ता के कारण ही विगत तीन दशकों से हमारे देश के अनेक समाजशास्त्री एवं मानवशास्त्री देश के विभिन्न भागों की निम्न जातियों एवं जनजातियों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का अध्ययन करने का प्रयास करते रहे हैं। इन अध्ययनकर्ताओं में मैरियट, वेली, सिंगर, कोहेन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कोहेन (१९५५) द्वारा उत्तर प्रदेश में माधवपुर गाँव के हरिजनों के अध्ययन से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि वहां की हरिजन जाति जो कि परम्परागत रूप से अस्पृश्य मानी जाती रही है ; जातीय संस्तरण में अपनी जातिगत प्रस्थिति को उच्च करने के लिए चेतन रूप से प्रयत्नशील है। कालिया (१९५९) ने अपने अनुसन्धान परिणामों के आधार पर उत्तर प्रदेश की जौनसार बावर और मध्य प्रदेश में बस्तर क्षेत्र की जनजातियों तथा महार, (१९६०) ने एक अन्य अस्पृश्य जाति के बदलते हुए धार्मिक आधार का संकेत दिया है। मैरियट ने भारतीय सभ्यता में सांस्कृतिक संस्तरण के बदलते पथ का उल्लेख किया है जबकि सिंगर सैद्धान्तिक रूप में संस्कृतिकरण की अवधारणा पर प्रकाश डालता है। गोल्ड (१९६१) अपने विश्लेषणात्मक तथ्यों के आधार पर उत्तर प्रदेश के उच्च जातियों जैसे ब्राह्मण एवं राजपूतों में पश्चिमीकरण तथा निम्न जातियों में संस्कृतिकरण की प्रवृत्ति का उल्लेख किया है। वरनवाल (१९६१) ने हिमालय की तराई में रहने वाली पहाड़ी जातियों के संस्कृतिकरण का उल्लेख किया है।

चानना (१९६१) एक ऐसे क्षेत्र में संस्कृतिकरण के प्रसार का विवेचन करते हैं, जो १९४७ में देश के विभाजन तक इस्लाम और कुछ पश्चिमी एशियाई सस्कृति के रूपों में बहुत अधिक प्रभावित था। विलियम रो (१९६८) के अन्वेषणात्मक तथ्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि उत्तर प्रदेश के सेनापुर गांव के नोनियों ने संस्कृतिकरण के सन्दर्भ में वहाँ की उच्च जातियों से घोर संघर्ष किया है। रो ने यह भी बताया कि बम्बई, बंगाल तथा उत्तर प्रदेश में कायस्थ जाति के सदस्यों ने अपने को कई दशाब्दियों तक क्षत्रिय जाति के रूप में घोषित किया था, जबकि १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तीव्रगति से ये अपनी धर्मनिरपेक्ष प्रस्थिति में सुधार कर रहे हैं। अन्य अन्येताओं के गवेषणात्मक अध्ययनों के निष्कर्षों से भी इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि निम्न जाति के सदस्य अपनी जाति और प्रस्थिति को ऊँचा करने के लिए द्विज या उच्च जातियों के जीवन प्रतिमानों को स्वीकार कर रहे हैं।

प्रस्तुत लेख में इन अध्ययनों के उल्लेख का प्रधान उद्देश्य संस्कृतिकरण की प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अध्ययन करना नहीं है, बल्कि कतिपय महत्वपूर्ण अध्ययनों की जानकारी देते हुए नगरों में भंगी जाति के सदस्यों द्वारा अपनी सामाजिक प्रस्थिति को ऊंचा उठाने के सन्दर्भ में उनकी संस्कृतिकरण की प्रवृत्ति को जानने का प्रयास करना है। भंगी जाति में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया पर अब तक कोई ऐसा व्यवस्थित अध्ययन नहीं प्राप्त है जिससे इस सन्दर्भ में कुछ नवीन प्रकाश डाला जा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय समाज के परम्परागत जातीय संस्तरण में भंगी जाति की अत्यन्त निम्नस्थ प्रास्थिति रही है (मनुस्मृति १०.२९३०, ५१-५७, ३.२३९)। इनका प्रधान कार्य परम्परागत रूप से विष्टा साफ करना तथा झाड़ू देना रहा है। सम्भवत: ऐसे गन्दे कार्य को करने से ही भंगी जाति को अधमाधम माना जाता रहा है, जिसके स्पर्श मात्र से द्विज या सवर्ण जातियां अपावन हो जाती रही हैं। परम्परागत जाति व्यवस्था में ये भंगी अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं से ग्रसित थे (आइजक : १९६२; बेली : १९५८ : २२२, एप्सटीन : १९६२ : १८६)। प्राय: ये निर्योग्यताएं उच्च जातियों के सांस्कृतिक पवित्रता तथा अपवित्रता की धारणा में निहित थी (ड्यूमा : १९६६, सच्चिदानन्द : १९७७ : १०६)। सामाजिक अन्त: क्रियाओं के क्षेत्र में उच्च जातियों द्वारा उनसे सामाजिक दूरी बनाये रखने को अत्यधिक मान्यता दी जाती थी। बिसिपारा गाँव के अध्ययन में बेली (१९५८) ने इस वक्तव्य को स्वीकार किया है और यह इंगित किया है कि गांव में भंगी जाति संस्तरण में निम्नस्थ हैं। सवर्ण जाति के लोग इनके हाथों से भोजन तथा जल ग्रहण नहीं करते। कुछ मामलों में निश्चित दूरी के भीतर उनका प्रवेश वर्जित है और कहीं-कहीं उनका दर्शन भी सामाजिक अपराध है। डेजिल इवेट्सन तो इन्हें निम्न में भी निम्नतम मानते हैं, यहाँ तक कि घुमक्कड़, सन्सी तथा जिप्सी से भी निम्न ही नहीं बल्कि सामाजिक दर्जे में नियम के अनुसार पांव पर भी मुश्किल से इनको रखा जा सकता है। आर० इजाक्स हेरल्ड (१९६५) इन्हें अस्पृश्यों में सबसे निम्नस्थ कार्य करने वाला मानते हैं। ये पृथकों में भी पृथक लोग हैं। क्रुक तथा सर इलियट धार्मिक दृष्टि से भंगियों को किसी एक धर्म या सम्प्रदाय का नहीं मानते। ये हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख आदि धार्मिक सम्प्रदायों में पाये जाते हैं। इनमें चलने वाले धर्म के अनेक संकटों का वर्णन भी क्रुक (१८९६) ने किया है। हिन्दुओं की भाँति ये अपने मृतकों को जलाते हैं। लालबेग की पूजा या उनके नाम पर त्याग करते हैं, मुसलमानों की तरह मुर्गों का गला रेतते हैं और टिगा का विधान रिश्तेदारों के मरने पर करते हैं जो कि विशेषकर मुसलमानों की ही एक रीति है।

इनकी अनेक निर्योग्यताओं तथा अमानवीय समानताओं को देखते हुए समय-समय पर विभिन्न समाजसुधारकों ने आन्दोलन किये। स्वतंत्रता बाद नया संविधान बनने पर उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था, संवैधानिक सुविधाएं, मताधिकार, उच्च जाति के समकक्ष स्थिति प्रदान करने का अवसर दिया गया (सम्भरवाल : १९७०)। आधुनिक शिक्षा के विकास तथा राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी से पारस्परिक ढाँचे में परिवर्तन की प्रेरणा भी इन्हें मिली (दूबे : १९६०)। विगत कुछ दशकों में भंगियों ने अपने रीति - रिवाजों, प्रथाओं, कर्मकाण्डों, वैचारिकी तथा जीवन शैली को उच्च जातियों की दिशा में परिवर्तित करना भी प्रारम्भ कर दिया है। जातीय नामकरण के क्षेत्र में ये अपने को महर्षि बालिमकी का वंशज मानने लगे हैं। मुरादाबाद के भंगी (सिंह एवं मिश्र : १९८०) स्वयं को कभी-कभी बालमीकि ब्राह्मण कहते हैं। नगर में बालमीकि के नाम पर "बालमीकि नगर" की प्रतिस्थापना कर लिये हैं। यदि कोई इन्हें भंगी या मेहतर कहता है तो वे उसका विरोध करते हैं। इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खानपान के क्षेत्र में मृत जानवरों का मांस तथा जूठे पत्तलों का भोजन करना छोड़ दिया है। जोधपुर के भंगियों ने भी सूअर का मांस खाना छोड़ दिया है (श्याम लाल : १९८१ : ३३) तथा अब पूर्णतया शाकाहारी भोजन करने लगे हैं मुरादाबाद के कुछ पढ़े-लिखे भंगी तो सुअर पालना बन्द कर दिये हैं। उनका विश्वास है कि वे निम्नस्तरीय तथा तिरस्कृत इसलिए हैं क्योंकि वे सुअर पालते हैं। बनारस के ७७·० प्रतिशत पढ़े-लिखे भंगी उच्च जातियों के संग परस्पर खानपान में सहभागिता करते हैं तथा अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को विष्टा साफ करने तथा झाड़ू देने का कार्य करने की आज्ञा नहीं देते हैं और न ही स्वयं वे यह कार्य करते हैं (विनोद सिंह : १९८४)।

व्यक्तिगत नामकरण तथा वेश-भूशा के क्षेत्र में भी भंगियों में संस्कृतिकरण का प्रयास देखने को मिलता है। जोधपुर, बनारस, मुरादाबाद आदि नगरों के भंगी सवर्ण हिन्दुओं की तरह अपना तथा अपने बच्चों का नाम अजय, अशोक, दिलीप, प्रदीप, मोहन आदि रखने लगे हैं। वेश भूषा के क्षेत्र में ये फुलपैण्ट, डिस्को शर्ट तथा इनकी स्त्रियां जो कभी चांदी का आभूषण पहनती थी, अब उच्च जाति के हिन्दू स्त्रियों के समान सोने का आभूषण या आभूषणहीन होकर रखने लगी हैं।

भंगियों के घरेलू उत्सव विवाह, संस्कार आदि उत्तरोत्तर उच्च जातियों की भांति परिवर्तित हो रहे हैं। मुरादाबाद के भंगियों में विवाह के समय अश्वारोहण संस्कार की प्रथा का प्रचलन हो गया हैं। अब इनमें दहेज प्रथा प्रारम्भ हो गयी है। एक अध्ययन (सिंह :- १९८४) के अनुसार वाराणसी के भंगियों में ६७·६७ प्रतिशत स्वेच्छा से दहेज प्राप्त करने के पक्ष में हैं। ७·६७ प्रतिशत दहेज की मांग के समर्थक हैं। ७७·० प्रतिशत विधवा विवाह के पक्ष में तथा ८·६७ प्रतिशत कभी कभार विधवा विवाह के पक्ष में हैं। स्त्री शिक्षा के पक्ष में ७५·३३ प्रतिशत तथा द्विज संस्कार अपनाने के पक्ष में २२·३३ प्रतिशत भंगी पाये गये।

अपनी जाति प्रस्थिति से ऊपर उठने के लिए भंगी धार्मिक कर्मकाण्डों को सुसंस्कृत करने लगे हैं। पढ़े-लिखे भंगी परिवारों में धार्मिक ग्रन्थों का पठन-पाठन तथा शिशुओं के नामकरण के अवसर पर ब्राह्मणों द्वारा जन्मकुण्डली बनाये जाने का उल्लेख वाराणसी तथा मुरादाबाद के भंगियों में मिलता है। कुछ भंगी यज्ञ, हवन तथा गायत्री मंत्र का जाप करते भी पाये गये हैं। परम्परागत रूप से यज्ञोपवीत पहनने पर इनके लिये निषेध रहा है, किन्तु अब कुछेक भंगी यज्ञोपवीत पहनना आरम्भ कर दिये हैं कुछेक भंगी साधु बनकर, खड़ाऊ तथा रुद्राक्ष की माला पहनकर धुनी रमाते तथा कुछ तीर्थ यात्रा करते हुए भी पाये गये हैं। शिलांग के भंगियों में भी धार्मिक प्रतिबद्धता देखने को मिलती है। (सरकारी : १९८४)। यहाँ के भंगी ईश्वर पर आस्था व्यक्त करने के लिए अपने लिए पृथक गुरुद्वारा तथा मन्दिर का निर्माण कर लिए हैं।

मेरी चटर्जी (१९७५) के अनुसार वाराणसी के भंगियों में अपनी यथास्थिति के प्रति राजनीतिक कार्यों के लिए प्रतिबद्धता की भावना दिखाई देती है। आगरा के चमारों की भाँति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये भी धीरे-धीरे आधुनिक राजनीतिक कार्यवाहियों को अपनाते जा रहे हैं। लेकिन अपनी निम्न स्थिति के कारण नौकरशाही के आगे अपने को हीन ही समझते हैं। कानपुर तथा दिल्ली में इस तरह की बात नहीं है। यहाँ के भंगी अलग-अलग समय पर लम्बी हड़ताल करने में सफल रहे हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भंगी जाति के सदस्य संस्कृतिकरण की प्रक्रिया की ओर अभिमुखीकृत हैं।

संदर्भ

इप्सटीन, टी० एस० : इकोनामिक डेवलपमेण्ट एण्ड सोशल चेन्ज इन साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, बाम्वे, १९६२.

इजाक्स, हेरल्ड : इण्डियाज एक्स अनटचेबुल्स, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, १९६५।

कोहेन, बी० एस० : चेन्जिग स्टेटस आफ ए डिप्रेस्ड कास्ट, (एडिटेड) इन मैरियट, विलेज इण्डिया, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, १९५५।

क्रुक : दि ट्राइब्स एण्ड कस्ट्म्स ऑफ द नार्थ-वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, वाल्यूम १, कलकत्ता, १८९६।

कालिया, एस० एल० : संस्कृताइजेशन एण्ड ट्राइबलाइजेशन, बुलेटिन ऑफ दि ट्राइबल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, छिन्दवारा (एम० पी०), अप्रैल १९५९।

गोल्ड, एच० ए० : संस्कृताइजेशन एण्ड वेस्टर्नाइजेशन : ए डायनेमिक व्यू, दि इकनामिक वीकली, १३, १९६१।

चानना, देवराज : संस्कृताइजेशन एण्ड वेस्टर्नाइजेशन : ए डायनेमिक व्यू, इकनामिक वीकली, वाल्यूम ८, नं० ९, मार्च ४, १९६१।

चटर्जी, मेरी : कानजुगल रोल्स एण्ड सोशल आर्गनाइजेशन इन एन अर्बन स्वीपर कम्युनिटी, डाक्टोरल डिजर्टेशन, बी० एच० यू०, १९७४।

ड्यूमा, लुइस : होमो हायरकीज, विकास पब्लिकेशन्स, बंगलोर, १९६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूबे, एस० सी० : स्टडी ऑफ काम्पलेक्स कल्चर्स, (एडीटेड) इन टी० के० एन० उन्नीथान, इन्द्रदेव एवं योगेन्द्र सिंह, टुवर्ड्स ए सोशियोलाजी ऑफ कल्चर इन इण्डिया, प्रेन्टिस हाल, नयी दिल्ली, १९६५।

बैले, एफ० जी० : कास्ट एण्ड इकोनामिक फ्रन्टीयर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५८।

बर्नवास, ए० पी० : संस्कृताइजेशन, दि इकनामिक विकली, वाल्यूम ७, नं० १५, १९६१।

भगवानदास : शिडयूल्ड कास्ट एण्ड नेशन बिल्डिंग, सोशल एक्शन, वा० ३५, १९८२।

मुकर्जी, डी० पी० : माडर्न इण्डियन कल्चर, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९४२।

माहार, पालिन एम० : चेंजिग रिलिजिस प्रैक्टिसेस ऑफ एन अनटचेबुल कास्ट, इकनामिक डेवलपमेण्ट एण्ड कल्चरल चेंज, वाल्यूम ८, नं० ३, १९६०।

मैरियट, मैकिम : चेंजिग चैनल्स ऑफ कल्चरल ट्रांसमिशन इन इण्डियन सिविलाइजेशन इन बी० एफ० रे (एडि) इण्टरमीडिएट सोसाइटीज, सीटले, वाश, १९५९।

मेरियट, मैकिम (एडिटेड) : विलेज इण्डिया, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, १९५५।

रेडफील्ड, राबर्ट : सोशल आर्गनाइजेशन ऑफ ट्रेडिशन, इस्टर्न क्वार्टर्ली, वाल्यूम १५, १९५५-५६।

रो, डब्ल्यू० एफ० : दि न्यू चौहान्स : ए कास्ट मोबिलिटी मुवमेण्ट इन नदर्न इण्डिया, इन सोशल मोबिलिटी इन द कास्ट सिस्टम इन इण्डिया, जे० सिलवर वर्ग, एडिटेड, दि हेग मार्सैन पब्लिशर्स, १९६८–अ।

रो, डब्ल्यू० एफ० : मोबिलिटी इन दि नाइनटिन्थ सेंचुरी कास्ट सिस्टम, इन स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज इन इण्डियन सोसाइटी, एम० सिंगर एण्ड बी० एस० कोहन (एडिटेड), शिकागो, अलडाइन, पृ० २०१–२०७, १९६८ ब।

लाल, श्याम : कास्ट एण्ड पोलिटिकल मोबिलाइजेशन : दि भंगीज, पंचशील प्रकाशन, १९८१।

सम्भरवाल, एस० : स्टेट्स नेट-वर्क एण्ड मोबिलिटी इन पंजाब इण्डस्ट्रियल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाउन, इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ एडवान्स्ड स्टडी, शिमला, १९६० ।

सच्चिदानन्द : दि हरिजन एलीट, थामसन प्रेस, नई दिल्ली, १९७७ ।

सरकार, जे० : कास्ट, आकुपेशन एण्ड चेन्ज, बी० आर० कारपोरेशन, न्यू देहली, १९८४ ।

सिंगर, मिल्टन (एडिटेड) : ट्रेडिशनल इण्डिया : स्ट्रक्चर एण्ड चेंज, अमेरिकन फोकलोर सोसाइटी, फिलेडेलफिया, १९५९ ।

सिंह, योगेन्द्र : माडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन, थामसन प्रेस, नई दिल्ली, १९७३ ।

सिंह, एस० डी० एण्ड जे० के० मिश्र: दि भंगीज ऑफ मुरादाबाद, पेपर प्रजेन्टेड इन फिफटीन्थ आल इण्डिया सोशियालाजिकल कानफरेन्स, मेरठ, नवम्बर ३, १९८० ।

सिंह, विनोद : नगरीय परिवेश में भंगी समुदाय, डाक्टोरल डिजर्टेशन, बी० एच० यू० १९८४ ।

श्रीनिवास, एम० एन० : कास्ट इन माडर्न इण्डिया एण्ड अदर एसेज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, १९६२,

श्रीनिवास, एम० एन० : रिलीजन एण्ड सोसाइटी अमंग दि कुर्ग्स ऑफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड क्लरेण्डन प्रेस, १९५२ ।

श्रीनिवास, एम० एन० : सोशल चेंज इन माडर्न इण्डिया, वर्कले युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, १९६६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कानपुर महानगर में बाल श्रमिकों का शोषण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

उमा रानी गुप्ता

बाल श्रमिकों के शोषण की समस्या वर्तमान समय की महत्वपूर्ण एवं गम्भीर समस्या है। वर्तमान समय में सामाजिक परिवर्तन की तीव्रता, सामाजिक कल्याण की भावना तथा सामाजिक विज्ञानों के योगदान ने बाल श्रमिकों के शोषण के सम्बन्ध में विशेष जागरूकता पैदा कर दी है। इसलिए शोषण से सम्बन्धित अध्ययन की बाढ़ भी आ गयी है। अभी तक समाजशास्त्रियों द्वारा केवल उद्योग धन्धों में कार्यरत बाल श्रमिकों के शोषण का अध्ययन किया गया है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्र, घरों में कार्य करने वाले तथा होटलों एवं रेस्तरों में कार्य करने वाले बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में अध्ययन बहुत ही कम किया गया है। प्रस्तावित अध्ययन में बाल श्रमिकों की उन दशाओं तथा परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, जो कि उनको सेवाकाल में भीषण अनुभव द्वारा प्राप्त हुई हैं। वर्तमान न्याय व्यवस्था तथा सरकारी नीतियाँ अन्यायपूर्ण एवं अमानवीय होने के कारण बाल श्रमिक अन्याय तथा शोषण दोनों के शिकार होते हैं, जिनकी व्यथा कोई नहीं सुनता ।

उपर्युक्त तथ्यों को तत्कालीन श्रम मन्त्री स्व० टी. अन्जैया ने भी स्वीकार किया था कि देश में करीब दो करोड़ बच्चे बाल श्रमिक के रूप में कार्य कर रहे हैं। श्री अन्जैया ने यह अनुभव किया कि निर्धनता एवं आर्थिक विषमताओं के कारण हमारे देश के बच्चे कार्य करने पर विवश हैं लेकिन सरकार को इनके उचित वेतन के साथ ही स्वास्थ्यप्रद कार्य की दशाओं तथा परिस्थितियों के सम्बन्ध में उचित व्यवस्था तो करनी ही चाहिए ।[1]

भारत में विभिन्न स्थानों पर कार्यरत बाल श्रमिकों के साथ शोषण तथा दुर्व्यवहार कैसे किया जाता है, उसका एक विहंगम अवलोकन प्रस्तुत है। उत्तर प्रदेश में भदोही तथा मिर्जापुर का कालीन उद्योग, फिरोजाबाद का काँच उद्योग तथा मुरादाबाद का पीतल उद्योग, तमिलनाडु के शिवाकाशी में माचिस तथा आतिशबाजी उद्योग एवं विभिन्न होटल तथा रेस्तरों में बाल श्रमिक रात दिन कठोर परिश्रम करते हैं। कालीन उद्योगों में बाल श्रमिकों को कारखानों के मालिक तथा उनके दलालों द्वारा पिछड़े क्षेत्रों से बच्चों के अभिभावकों को १००-१५० रुपये

(श्रीमती) उमारानी गुप्ता, शोध छात्रा, कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देकर तथा भविष्य में अच्छी सुख सुविधा एवं आकर्षक वेतन का लालच देकर लाया जाता है। इन बालकों से प्रशिक्षण के नाम पर तीन वर्ष तक अवैतनिक कार्य कराया जाता है। निर्धारित घण्टों से अधिक कार्य लेने के बाद भी भरपेट भोजन नहीं दिया जाता । बच्चों द्वारा बीमारी आदि के कारण कार्य करने से मना करने पर या भागने की कोशिश करने पर सेवायोजकों द्वारा अमानवीय तरीके से पिटाई की जाती है। कहीं-कहीं तो गर्म सलाखों से दागने तक के समाचार प्राप्त हुये हैं।

आगरा जिले की फिरोजाबाद तहसील सुहाग-नगरी के नाम से प्रसिद्ध है। यहां छोटे-बड़े काँच तथा चूड़ी के कारखानों में ३० हजार से भी अधिक बाल श्रमिक कार्य करते हैं। १००० से. ग्रे. से १६०० से. ग्रे. के तापमान की भट्ठियों के समीप अपने जीवन को खतरे में डालकर कार्य करते हैं। उपर्युक्त कार्य हेतु वयस्क श्रमिक ३०/- प्रति दिन लेता है, वही बाल श्रमिक को १०/- देकर यह कार्य कराया जाता है। सुहाग नगरी में हो रहे बच्चों के शोषण के सम्बन्ध में फिरोजाबाद से निर्वाचित विधायक श्री रघुवर दयाल वर्मा तथा अन्य सोलह सदस्यों द्वारा विधान सभा में आवाज उठायी गयी थी। श्रम मन्त्री ने बाल श्रमिकों की समस्या को गम्भीर मानते हुये **'राज्य बाल श्रमिक परामर्श दात्री समिति'** के गठन की घोषणा की है।[२]

बिहार के औद्योगिक जिले कटिहार में **बाल श्रमिकों का सर्वेक्षण राम विलास महतो द्वारा किया गया।**[३] कटिहार में बाल श्रमिकों की संख्या ५००० के करीब है। अधिकांश बच्चों की उम्र ८ से १४ वर्ष के बीच की है। इन बच्चों से होटल, साइकिल तथा मोटर मरम्मत, बीड़ी बनाने, घरेलू कार्यों एवं कुटीर उद्योगों में कार्य लिया जाता है। सेवायोजकों द्वारा इन बच्चों से निर्धारित घण्टों से अधिक कार्य तो लिया जाता ही है तथा गलती होने पर अभद्र व्यवहार तथा मारपीट तक की जाती है। ४० बच्चे बंधुआ मजदूर हैं बाकी बच्चों को ५/- रोजाना वेतन दिया जाता है। **गुलाबी शहर जयपुर के होटल तथा रेस्तराँ कर्मचारी संघ के महामन्त्री अनिल कुमार शुक्ला के अनुसार**[४] दस हजार श्रमिक जयपुर के १००० होटल तथा रेस्तरों में कार्य करते हैं। इनमें से ३ हजार बाल श्रमिक ही हैं। इन बच्चों की उम्र ८-१५ वर्ष की है। इन बच्चों से भी १८ घण्टे कार्य लिया जाता है तथा मजदूरी ५/- ही दी जाती है। साधारण सी गलती होने पर इन बच्चों की जमकर पिटायी तथा नुकसान होने पर वेतन में कटौती भी की जाती है। इन बाल-श्रमिकों का कोई सेवा रिकार्ड न होने के कारण श्रम विभाग भी कोई कार्यवाही नहीं कर पाता है।

कानपुर महानगर में सर्वेक्षण कर्ता सुरेश अवस्थी[५] द्वारा बालकों को बंधुआ श्रमिक बनाने के सम्बन्ध में जो तथ्य प्रकाश में लाये गये, वे बड़े ही मार्मिक हैं। इन बच्चों को गुलाम बनाने का मुख्य स्थान कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन है। देश के कोने-कोने से अधिकांश बच्चे भागकर या भूल भटककर कानपुर आते हैं। जैसे ही ये बच्चे स्टेशन के निकास द्वार से बाहर आते हैं, इनको कुछ असामाजिक तत्वों द्वारा धमकी देकर अपने वश में कर लिया जाता है। इन असामाजिक तत्वों को क्षेत्रीय सफेदपोश नेताओं तथा पुलिस का संरक्षण भी प्राप्त होता है। जब ये बच्चे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन असामाजिक तत्वों द्वारा बनायी गई व्यूह रचना में फँस जाते हैं, तो इनको १५-२० रुपये में होटलों के मालिकों को बेच दिया जाता है, जहाँ ये रात दिन कठोर परिश्रम करते हैं। सर्वेक्षण से पता चला है कि होटलों में अधिकांश बच्चों की आपूर्ति इन्हीं अराजक तत्वों द्वारा की जाती है। इसी प्रकार फेथफुलगंज का हैण्डलूम उद्योग (दरी उद्योग तथा अन्य हस्त निर्मित कपड़ा उद्योग) में हजारों की संख्या में बाल श्रमिक कार्य करते हैं। इन बच्चों से भी १८ घण्टे तक कार्य लिया जाता है तथा मजदूरी भी ४—५ रुपये दी जाती है। कार्य सिखाने के नाम पर इन बच्चों के साथ वयस्क श्रमिक भी मारपीट तथा अभद्र व्यवहार करते हैं। बाल श्रमिक निर्धनता तथा कार्य सीखने की जिज्ञासावश सब कुछ सहन करते रहते हैं।

समाजसेवियों तथा सरकार द्वारा उठाये गए कदम

बंधुआ मुक्ति मोर्चा के राष्ट्रीय अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश ने सुप्रीम कोर्ट मेरिट याचिका दायर करके मिर्जापुर तथा भदोही से सैकड़ों बाल बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया है। प्रशासन ने इन बच्चों को मुक्त कराकर बंधुआ मजदूरी अधिनियम १९७६ के अन्तर्गत मुक्ति प्रमाण पत्र दिया तथा इनके पुनर्वास के लिए तत्कालीन अनुदान भी दिया गया।[६] बनवासी सेवा आश्रम के श्री प्रेम भाई[७] ने भी कालीन उद्योगों में कार्यरत बाल श्रमिकों के हो रहे शोषण के सम्बन्ध में एक याचिका सर्वोच्च न्यायालय में दायर की थी। २३ जून १९८६ को श्री प्रेम भाई की इसी याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने **'बाल श्रमिक पुनर्वास तथा कल्याण योजना'** बनाने का निर्देश राज्य सरकार को दिया। राज्य सरकार इस पर गंभीरता से विचार कर रही है कि इन श्रमिकों को कौन सा ऐसा रोजगार प्रदान किया जाए, जिससे ये अपने जीवन का निर्वाह कर सकें।

इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार द्वारा भी वाराणसी तथा मिर्जापुर जिले के अन्तर्गत ६ विकास खण्डों के कालीन उद्योगों में कार्यरत १५ हजार बाल श्रमिकों के उत्थान तथा स्तरोन्नयन के लिए ४४ करोड़ रुपए की केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत बाल श्रमिक की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन में सुधार के लिए विशेष रूप से कार्य किया जायेगा। उपर्युक्त जानकारी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयोजित **'कालीन उद्योग में बाल श्रमिक, उनकी समस्याओं और राहत योजनायें'**[८] विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला में तत्कालीन श्रम मन्त्री स्व० टी० अन्जैया द्वारा दी गई थी।

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय ने प्रस्तावित नये बाल श्रमिक कानून के अन्तर्गत शिवकाशी, तमिलनाडु के आतिशबाजी तथा माचिस उद्योगों में कार्य करने वाले ४५,००० बाल श्रमिकों के लिए १४ करोड़ रुपये की कल्याणकारी योजना बनायी है। तीन वर्षों में पूरी होने वाली इस योजना में बाल श्रमिकों को प्राथमिक शिक्षा, शारीरिक तथा मानसिक विकास, लंच के समय सस्ते भोजन की सुविधा एवं बीमारी की दशा में चिकित्सा सुविधा पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।[१०]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह राज्य मंत्री श्री ए० पी० संगमा ने कुछ कारखानों में (जहाँ बच्चों को जीवन का खतरा रहता है) बाल श्रमिकों को रोक लगाने के सम्बन्ध में एक विधेयक २२-८-८६ को राज्य सभा में पेश किया है । इस विधेयक में १४ वर्ष से कम आयु वाले को बच्चा माना गया है। प्रस्तावित कानून का उल्लंघन करने वालों को एक वर्ष तक की सजा तथा २० हजार रुपये तक के जुर्माने की व्यवस्था की गयी है ।[११]

सरकार द्वारा उठाये गये उपरोक्त कदमों का यदि सही रूप से क्रियान्वयन हो जाये, तो बाल श्रमिकों के शोषण में काफी कमी आ सकती है । वस्तुतः सरकार को इस सम्बन्ध में 'सख्त कदम उठाना आवश्यक है ।

उपरोक्त अध्ययनों तथा सर्वेक्षणों के आधार पर निम्न तथ्य प्रस्तुत हैं:—

(१) कुल राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत बाल श्रमिकों द्वारा अर्जित होने के बावजूद भी इन बाल श्रमिकों को न तो भरपेट खाने को मिल पाता है और न ही शरीर ढकने के लिए कपड़े ही मिल पाते हैं ।

(२) सेवायोजक बालकों से वयस्कों की अपेक्षा कार्य तो अधिक लेते ही हैं, न्यूनतम मजदूरी पर अधिकतम श्रम का उपयोग भी करते हैं ।

(३) असंगठित, शोषित तथा पीड़ित बाल श्रमिकों की कार्य की दशायें खराब होने के कारण इनको विश्राम का समय रात में ही दिया जाता है ।

(४) सेवायोजक बाल मजदूर अधिनियम की या तो उपेक्षा करते हैं या जानने की कोशिश ही नहीं करते हैं ।

(५) जिन बच्चों की उम्र शिक्षा ग्रहण करने तथा खेलने-कूदने की हो, वे बालक मजदूरी करें, यह देश तथा समाज के लिए शर्म की बात है ।

(६) ४५ प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों को उच्च वर्ग के लोग अपने स्वार्थवश गरीबी रेखा से नीचे ही देखना चाहते हैं ।

(७) चालीस वर्षों के स्वाधीन भारत में सरकार ऐसी नीति का निर्धारण करने में असमर्थ रही है, कि बाल श्रमिकों की प्रथा का उन्मूलन हो सके ।

अध्ययन के उद्देश्य

उपरोक्त अध्ययनों एवं समस्या के विस्तार को दृष्टिगत रखते हुये निम्नलिखित मुद्दों/पहलुओं पर इस शोधपत्र में विश्लेषण एवं विचार मंथन किया जायेगा ।

(१) बाल श्रमिकों के शोषण की प्रवृत्ति, प्रकृति एवं विस्तार की सीमाएँ ।

(२) सैद्धान्तिक स्तर पर बाल श्रमिकों के शोषण को सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सम्बद्ध करके अवधारणाओं एवं उपकल्पनाओं को विकसित किया जायेगा। इनका आधार अनुभव सिद्ध अध्ययन की पृष्ठभूमि से होगा।

(३) बाल श्रमिकों के शोषण के सामाजिक संदर्भ में जो कि सामाजिक ढाँचे से उद्‌भूत एवं विकसित होते हैं, उनका विश्लेषण एवं वैचारिक स्तर पर प्रतिवादन।

(४) विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित निष्कर्षों का गठन एवं नव उपकल्पनाओं की अभिव्यक्ति पर विचार एवं शोध किया जा सकता है।

शोध समस्या

उपर्युक्त शोधों तथा अध्ययनों के आधार पर कानपुर महानगर के १०० बाल श्रमिकों (५० होटल तथा रेस्तराँ उद्योग एवं ५० फेथफुलगंज का हैण्डलूम उद्योग दरी तथा हस्त निर्मित कपड़ा उद्योग) का चयन अध्ययन के लिए किया गया है। इनके शोषण के प्रकारों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया गया है:—

(१) बाल श्रमिकों का शोषण सेवायोजकों द्वारा यथा-निर्धारित घण्टों से अधिक कार्य लेना, न्यूनतम मजदूरी का न देना, मारपीट तथा अभद्र व्यवहार आदि।

(२) बाल श्रमिकों का शोषण वरिष्ठ साथियों द्वारा कार्य को सिखाने के नाम पिटाई तथा अभद्र व्यवहार आदि।

अध्ययन पद्धति

कानपुर महानगर के १०० बाल श्रमिकों (५० होटल तथा रेस्तरा के बाल श्रमिकों एवं ५० फेथफुलगंज का हैण्डलूम उद्योग (दरी तथा अन्य हस्त निर्मित कपड़ा उद्योग) का चयन देव निदर्शन के आधार पर किया गया है। प्रस्तावित अध्ययन में प्राथमिक तथा अन्य श्रोतों से प्राप्त सूचना का प्रयोग आँकड़ा प्रस्तुतीकरण के लिए किया गया है। इस प्रकार से प्राप्त सूचना को सांख्यकीय पद्धति से विश्लेषित किया गया है तथा अर्थपूर्ण व्याख्या की गयी है।

आंकड़ा प्रस्तुतीकरण

कानपुर महानगर के होटल तथा रेस्तराँ में कार्यरत बाल श्रमिकों के शोषण के प्रकारों को तालिका नं० १ में विश्लेषित किया गया है।

तालिका नं० १
होटल तथा रेस्तराँ उद्योग, कानपुर महानगर

बाल श्रमिकों के शोषण के प्रकार	बाल श्रमिकों के उत्तर प्रतिशत में
(१) निर्धारित घन्टों से अधिक कार्य लेना।	९०
(२) न्यूनतम वेतन का न दिया जाना	९२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) खाने योग्य भोजन न दिया जाना	८०
(४) स्नानादि वस्तुओं का न देना	७५
(५) रात में सोने की अलग व्यवस्था का अभाव	८५
(६) अभद्र व्यवहार तथा मारपीट	७०
(७) नुकसान होने पर वेतन में कटौती	६५

(स्रोत—क्षेत्र सर्वेक्षण एन ५०)

उपर्युक्त तालिका नं० १ से स्पष्ट है कि अधिकाँश बालकों से निर्धारित घन्टों से ज्यादा कार्य तो लिया जाता है एवं न्यूनतम वेतन का भुगतान भी नहीं किया जाता है। खाने के योग्य भोजन का न देना, स्नान के लिए साबुन का न देना तथा कार्य में देरी हो जाने पर अभद्र व्यवहार तथा मारपीट तक की जाती है। कुछ बालकों ने डरते हुए बताया कि उनके मालिक बड़े कठोर तथा निर्दयी है, उनको (बाल श्रमिकों) को रात में सोने के लिए ५—६ घण्टे से ज्यादा नहीं देते हैं। सामान की टूट फूट हो जाने पर वेतन से कटौती तक कर ली जाती है। बच्चों को जो मजदूरी (५०—६०) रुपये मिलती है, उसको इन बालकों के अभिभावक ले जाते हैं।

कानपुर महानगर के फेथफुलगंज का हैण्डलूम उद्योग (दरी तथा अन्य हस्त निर्मित कपड़ा उद्योग) के बाल श्रमिकों के शोषण के प्रकारों को तालिका नं० २ द्वारा विश्लेषित किया गया है।

तालिका नं०—२

हैन्डलूम उद्योग (दरी तथा अन्य हस्तनिर्मित कपड़ा उद्योग फेथफुलगंज, कानपुर महानगर)

बाल श्रमिकों के शोषण के प्रकार	बाल श्रमिकों के स्तर प्रतिशत में
(१) निर्धारित घण्टों से अधिक कार्य लेना	८५
(२) न्यूनतम वेतन का न देना	८०
(३) खाने योग्य भोजन का न देना	९०
(४) स्नानादि वस्तुओं का न दिया जाना	९०
(५) रात में सोने की अलग व्यवस्था का अभाव	९०
(६) अभद्र व्यवहार तथा मारपीट	७५
(७) नुकसान होने पर वेतन में कटौती	६८

(स्रोत—क्षेत्र सर्वेक्षण एन ५०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त विश्लेषण से पता चलता है कि हैण्डलूम उद्योगों में अधिकांश बाल श्रमिकों का शोषण किया जाता है। अधिक घण्टे कार्य लेना, न्यूनतम वेतन का न देना, प्रसाधन की सुविधाओं का न देना, खाने योग्य भोजन का न देना, विश्राम की अलग व्यवस्था का न होना आदि प्रकार से शोषण होता है। वरिष्ठ श्रमिकों तथा सेवायोजकों द्वारा कार्य सिखाने के नाम पर पिटाई तथा अभद्र व्यवहार भी किया जाता है। नुकसान होने पर वेतन में कटौती की जाती है।

बाल श्रमिकों के शोषण के परिणाम

(१) वैयक्तिक विघटन।
(२) स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव।
(३) शिक्षा का अभाव एवं अरुचि।
(४) सामाजिक अव्यवस्था।
(५) बाल अपराध में वृद्धि।

बाल श्रमिकों के शोषण से उपर्युक्त परिणाम होते हैं जिसका समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

कुल राष्ट्रीय आय का १० प्रतिशत बाल श्रमिकों द्वारा अर्जित किया जाता है[१]। लेकिन बाल श्रमिकों द्वारा अर्जित की गई राष्ट्रीय आय का चौथाई भाग भी इनके कल्याण के लिए खर्च नहीं किया जाता है। बाल श्रमिकों की सुरक्षा के बहुत से कानून होने के बाद भी इस समस्या पर नियंत्रण नहीं पाया जा सका है। करोड़ों रुपये की आय होने के बावजूद भी इन बाल श्रमिकों को गरीबी ही हाथ आती है। बाल श्रमिक वोट बैंक न होने के कारण श्रमिक नेताओं की भीड़ इकट्ठा नहीं कर सकते और न ही हड़ताल आदि के द्वारा अपने शोषण के विरोध में आवाज ही उठा सकते हैं। बाल श्रमिकों के ऊपर हो रहे शोषण के संबन्ध में नीति निर्धारकों, समाजसेवियों तथा शोध कर्ताओं को उचित ध्यान देने की जरूरत है, क्योंकि सरकारी तन्त्र पर उत्तरदायित्व डालकर बाल श्रमिकों के शोषण की समीक्षा नहीं की जा सकती है।

बाल श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिये निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं।

सुझाव

(१) बालकों की कार्य करने की उम्र १४ वर्ष कर देनी चाहिये, तथा इस उम्र तक के बच्चों को निःशुल्क रोजगार पूरक शिक्षा प्रदान की जाये।

(२) सेवायोजन कार्यालय में पंजीकृत बच्चों को ही बाल श्रमिक के रूप में कार्य करने की अनुमति दी जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सेवायोजकों को बाल श्रमिकों का सेवा रिकार्ड रखने के लिये बाध्य किया जाय तथा श्रम निरीक्षकों द्वारा समय-२ जाँच भी की जाय।

(४) बाल श्रमिकों की प्रथा का उन्मूलन करने के पक्ष में मेरा मत नहीं है, क्योंकि जिन बच्चों पर अपने परिवार के भरण पोषण की जिम्मेदारी है, वे परिवार भुखमरी के शिकार होने लगेंगे।

(५) सरकार द्वारा बनाई गयी नीतियों का कार्यान्वयन कराने के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा लगातार दबाव डाला जाये।

(६) न्यायपालिका द्वारा भी इस सम्बन्ध में सरकार को आवश्यक निर्देश तथा मार्गदर्शन देने चाहिये।

(७) महानगरों में बाल श्रम अधिकारियों की नियुक्ति भी एक अच्छा कदम हो सकता है।

आभार प्रदर्शन

मैं डा० लक्ष्मी शंकर मिश्र, सहायक निदेशक, प्रौढ़ तथा सतत शिक्षा, कानपुर विश्वविद्यालय की अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके निर्देशन में यह शोध पत्र तैयार किया गया।

सन्दर्भित पत्र-पत्रिकायें

(१) दैनिक जागरण, कानपुर — ११ दिसम्बर, १९८५

(२) आज, कानपुर — २२ अक्टूबर, १९८५

(३) समाज कल्याण पत्रिका — जून, अंक १९८६

(४) दैनिक जागरण, कानपुर — १५ जून, १९८६

(५) दैनिक जागरण, कानपुर — २२ दिसम्बर, १९८५

(६) दैनिक जागरण, कानपुर — १० दिसम्बर, १९८५

(७) आज, कानपुर [राजेन्द्र द्विवेदी की रिपोर्ट] — ५ जुलाई, १९८६

(८) आज, कानपुर — ५ जून, १९८५

(९) टी० बी० रिपोर्ट (राष्ट्रीय प्रसारण) — २ जून, १९८६

(१०) टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली — २० अगस्त, १९८६

(११) दैनिक जागरण, कानपुर — २३ अगस्त, १९८६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थ सूची

(१) वी० पी० गिरी — लेबर प्रावलम्स इन इंडस्ट्री

(२) के० एन० श्रीवास्तव — इन्डस्ट्रियल पीस एण्ड लेबर इन इंडिया।

(३) आर० के० मुखर्जी — इंडियन वर्किंग क्लास

(४) वी० डी० सिंह — इंडस्ट्रियल लेबर इन इंडिया

(५) जी० एन मेहरोत्रा — इंडस्ट्रियल रिलेशन्स इन चेन्जिग इंडिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों में विवाह की आयु तथा प्रजनन-दर निर्धारण : कोल जनजाति पर आधारित एक अध्ययन

एस० बी० सिंह परमार

एक जैविक तथ्य होते हुए भी आयु का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अपना विशेष महत्व है। जब कभी जनांकिकीय विभेदों तथा पारिवारिक आकार पर विचार होता है, सहज ही स्त्रियों के विवाह की आयु की ओर ध्यान आकृष्ट हो जाता है। वस्तुतः यह एक समाजशास्त्रीय तथ्य है कि कम आयु में विवाहित स्त्रियों की तुलना में अधिक आयु में विवाहित स्त्रियों के अपेक्षाकृत कम बच्चे पैदा होते हैं। उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है : चन्द्रशेखरन, १९५९ : ०९; ब्लेक, १९६७ : १३२; बुसफील्ड, १९७२ : ११७-१३४; चौधरी, १९८३ : १४३; भाटिया, १९८३ : १८९; भारत, रजिस्ट्रार जनरल, १९६१। उल्लेखनीय है कि स्त्रियों की विवाह की आयु परिवार के केवल आकार का ही निर्धारण नहीं करती बल्कि राष्ट्र विशेष की जनसंख्या के आकार को भी निश्चित करती है (अग्रवाल, १९६७ : १७२; बाल्डविन, १९७७ : ०२; संयुक्त राष्ट्र संघ १९८० : ०४)।

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। चीन के पश्चात्, भारत ही दूसरा देश है जो जनसंख्या वृद्धि की समस्या से ग्रसित है। १९८१ की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल जनसंख्या ६८ करोड़ से भी अधिक हो चुकी है जिसमें ४८ प्रतिशत स्त्रियां थीं। इतना ही नहीं जनसंख्या निरन्तर वृद्धि की ओर उन्मुख है।

भारत में स्त्रियों का सामान्य प्रजनन-काल १५ एवं ४५ वर्षों के मध्य माना जाता है। सामान्य प्रजनन-काल के अन्तर्गत स्त्रियों के सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता विवाहित जीवन-काल को कम कर घटायी जा सकती है। विवाह की आयु में एक निश्चित सीमा तक वृद्धि करके उक्त काल को कम करना सम्भव है और इस प्रकार यह वृद्धि जन्म दर को कम करने में सहायक हो सकती है।

भारत में स्त्रियों की विवाह की आयु जनसंख्या वृद्धि में महत्वपूर्ण कारक समझी जाती है। भारतीय परम्परा स्त्रियों की कम आयु में विवाह करने की है। विवाह कन्यादान है जिसे

डा० शीलभद्र सिंह परमार, अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, अतरी परा-स्नातक कॉलेज, अतरी (बाँदा) उ०प्र०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजस्वला होने के पूर्व सम्पन्न करना श्रेयस्कर माना गया है। कपाडिया (१९६३ : १४६) ने भी यह स्वीकार किया है कि कौमार्य की अत्यधिक प्रशंसा ही एक ऐसा तथ्य है जिसने सम-सामयिक ब्राह्मणों में वयस्कता से पूर्व विवाह की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया तथा श्रेष्ठ विवाह के इस गुण पर विशेष बल देने का यह परिणाम हुआ कि हिन्दुओं में वयस्कता अथवा रजोदर्शन के पूर्व ही विवाह होने लगे। पाराशर (देखें कपाडिया, १९६३ : १४८-१४९) द्वारा रजोदर्शन के पूर्व होने वाले विवाहों को धार्मिक तथा सामाजिक मान्यता दिये जाने से बाल विवाह बहुत शीघ्रता से फैल गये तथा उन्होंने उच्च जातियों में गहरी जड़ जमा ली। ज्यों ही एक बार यह ब्राह्मणों के लिए मान्य प्रतिमान बन गया त्यों ही यह समस्त हिन्दू समाज के लिए एक सामान्य प्रथा बन गई। समय बीतने के साथ यह प्रथा इतनी प्रबल हो गई कि इसके विपरीत जाना सामाजिक तिरस्कार तथा अपमान का कारण माना गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते लड़कियों के विवाह की आयु घटकर ६ वर्ष तक हो गई। बाल विवाह एक नियम तथा कर्तव्य बन गया। स्वतंत्रता के पश्चात् विवाह की आयु बढ़ाने की दिशा में कानूनी कदम उठाये गये हैं तथापि परम्परा का प्रभाव विधान तथा व्यवहार दोनों में पाया जा सकता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम की ओर जन सामान्य का वांछित ध्यान आकृष्ट नहीं हो सका। राव (१९७६ । १८) के अनुसार मात्र उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के दम्पति नगरीय क्षेत्रों में उपलब्ध परिवार नियोजन सुविधाओं का लाभ उठा पाते हैं जिनकी संख्या नगण्य है। इसी प्रकार का मत सिद्ध (१९७४ : २३६) ने भी व्यक्त किया है। इससे परिलक्षित होता है कि जन्म-निरोध के नवीनतम् कृत्रिम साधनों का प्रचलन जन सामान्य में, विशेषतया ग्रामीण अंचल में, सहज रूप में नहीं हो सका है। इन परिस्थितियों में विवाह की आयु जनसंख्या वृद्धि को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

जनसंख्या के सन्दर्भ में विवाह की आयु के महत्व के बावजूद भी इस पर समुचित आंकड़ों का अभाव है। विशेषतया जनजातियां विद्वानों का ध्यान आकृष्ट नहीं कर सकीं। प्रस्तुत अध्ययन शोध के इस उपेक्षित क्षेत्र पर प्रकाश डालने की दिशा में एक लघु प्रयास है। अनुभवाश्रित आधार पर स्त्रियों की विवाह की आयु का उनकी प्रजनन-दर पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है।

अध्ययन उद्देश्य

वर्तमान अध्ययन के दो उद्देश्य हैं। प्रथम, स्त्रियों की विवाह की आयु ज्ञात करना, तथा द्वितीय, स्त्रियों की विवाह की आयु का उनकी प्रजनन-दर पर प्रभाव एवं उक्त प्रभाव के विस्तार की सीमा को ज्ञात करना।

अध्ययन अभिकल्प

इस अध्ययन का अनुसंधान अभिकल्प अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक है। इसका प्रमुख उद्देश्य है स्त्रियों की विवाह की आयु का उनकी प्रजनन-दर प्रभाव का अन्वेषणात्मक अध्ययन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना। साथ ही इस परिकल्पना का परीक्षण भी किया जायेगा कि "स्त्रियों की विवाह की आयु उनकी प्रजनन-दर तथा परिवार के आकार से सम्बद्ध है।" उक्त परिकल्पना के आधार हैं—समसामयिक भारतीय समाज में व्याप्त दशायें तथा उपलब्ध शोध सामग्री।

इस अध्ययन के आंकड़े बांदा जनपद के पाठा क्षेत्र के मनगवां गांव की उर्वर आयु समूह की 'कोल' जनजाति की महिलाओं से प्राप्त किये गये हैं। मनगवां की लगभग ८४ प्रतिशत जनसंख्या कोल जनजाति की है। यह गाँव सेण्ट्रल रेलवे के प्रमुख स्टेशन तथा ब्लाक मुख्यालय मानिकपुर के पश्चिम में २५ किमी० दूर स्थित है। इस गांव तक या तो रेलगाड़ी द्वारा अथवा वन विभाग द्वारा निर्मित कच्ची सड़कों से मारकुण्डी होकर पहुंचा जा सकता है। टिकरिया रेलवे स्टेशन इसी गांव में स्थित है।

उर्वर आयु समूह की कुल १६८ स्त्रियों में से १०० को व्यवस्थित यादृच्छिक निदर्शन विधि द्वारा अन्वेषणार्थ चुना गया। आंकड़े साक्षात्कार-अनुसूची के माध्यम से एकत्रित किये गये थे। ग्रामीण महिलाओं के शर्मीले स्वभाव, पुरुषों से पर्दा करने की प्रवृत्ति तथा अपरिचितों से कम से कम बोलने की प्रकृति के कारण साक्षात्कार करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु ग्राम प्रधान तथा अन्य कोल पुरुषों की सहायता से साक्षात्कार को सहज तथा प्रभावी बना लिया गया। इसके लिए ग्राम प्रधान तथा अन्य कोलों से पहले ही सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया था। पूर्व सर्वेक्षण तथा साक्षात्कार अक्टूबर १९८३ तथा जून १९८४ के मध्य किये गये।

जिन स्त्रियों से साक्षात्कार किया गया वे तभी अनपढ़ थीं। उनमें से अधिकांश का प्रमुख व्यवसाय कृषि-मजदूरी था। प्रतिदर्श की २० प्रतिशत स्त्रियां १५-२४ आयु समूह की, तथा ३९ प्रतिशत २५-३४ आयु समूह की और शेष ४१ प्रतिशत ३५-४४ आयु समूह की थीं। स्त्रियों की औसत आयु ३२ वर्ष थी। उल्लेखनीय है कि प्रतिदर्श के ३५ प्रतिशत महिलाओं के पति नसबन्दी आपरेशन करा चुके थे। ऐसा पता चला कि उनमें से अधिकांश पति अपनी इच्छा के विरुद्ध नसबन्दी कराने के लिए प्रभावशाली व्यक्तियों के द्वारा बाध्य किये गये थे।

विवेचना एवं विश्लेषण

यों तो विवाह की आयु एक ऐसा जैव-सामाजिक कारक है जो जनसंख्या नियंत्रण तथा वृद्धि दोनों के लिए ही उत्तरदायी है। फिर भी एक ऐसे समाज में विवाह की आयु का महत्व और भी बढ़ जाता है जहाँ पर गर्भनिरोध के कृत्रिम साधनों का प्रचलन लगभग नहीं के बराबर हो। जहां पर विवाह की आयु में वृद्धि कर दी गयी है वहां प्रजनन-दर कम देखी गयी है। विकसित देशों में ही नहीं विकासशील देशों में भी ऐसा पाया जा सकता है। चीन गणराज्य (टीन, १९७०), ट्यूनीसिया (लाफम, १९७०), मलेशिया (चो और रेदरफोर्ड, १९७३) और श्रीलंका (इमरवार, १९७७) इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की यह प्रक्रिया काफी समय पूर्व पश्चिमी यूरोप में प्रारम्भ हुई थी जबकि वहाँ विलम्ब विवाह का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलन हुआ (कोल, १९७३) उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए, वर्तमान अध्ययन के आंकड़ों की ओर देखना समीचीन होगा।

सारणी १ के आंकड़ों पर दृष्टिपात करने से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि स्त्रियों में विवाह की कम आयु का प्रचलन है। साथ ही स्त्रियों में विवाह की आयु तथा उनकी प्रजनन-दर में नकारात्मक सह सम्बन्ध है (r = —१७)।

सारणी १

स्त्रियों का विवाह की आयु तथा जीवित सन्तानों की संख्या के आधार पर वितरण

विवाह की आयु	जीवित सन्तानों की संख्या			जीवित सन्तानों की औसत संख्या	स्त्रियों की संख्या
	१-४	५-८	९-१२		
१०-१४	३१	६६	०३	५.०	३५
१५-१९	५५	३२	१३	४.९	५६
२०-२४	६७	३३	—	३.७	०९
योग					१००

r = —.१७

५ प्रतिशत सम्भाविता स्तर पर महत्वपूर्ण

जिन स्त्रियों का विवाह सर्वाधिक कम आयु १०-१४ वर्ष के बीच हुआ है, उन्होने औसत ५ बच्चों, जो सर्वाधिक है, को जन्म दिया है। ज्यों-ज्यों विवाह की आयु बढ़ती है, उत्पन्न होने वाले बच्चों की संख्या घटती जाती है। आयु समूह १५-१९ वर्ष के बच्चों के जन्म का औसत ४.९ है। लेकिन २०-२४ आयु समूह में यह औसत घटकर ३.७ हो जाता है। इससे यह संकेत मिलता है कि विवाह की आयु जितनी कम है, जन्म लेने वाले बच्चों की संख्या उतनी ही अधिक है। इसके विपरीत विवाह की आयु अधिक होने की दशा में बच्चों की संख्या कम हो जाती है। दोनों घरों के बीच नकारात्मक सह सम्बन्ध है। किन्तु 'r' का बहुत कम मूल्य (—.१७) इस सत्य की ओर संकेत करता है कि विवाह की आयु स्त्रियों की प्रजनन-दर को प्रभावित तो करती है परन्तु यह प्रभाव बहुत सीमित है।

उपरोक्त विरोधाभास को किस प्रकार स्पष्ट किया जाय? भारत में वैधानिक आधार पर विवाह की निम्नतम आयु लड़कों एवं लड़कियों के लिए क्रमशः २१ वर्ष एवं १८ वर्ष निर्धारित की गई है। (हिन्दू विवाह अधिनियम, १९५५)। वर्तमान अध्ययन के आधार पर एक स्त्री के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा १८ वर्ष से कम आयु में पैदा किये गये बच्चों का औसत .७६ है (सारणी २ का अवलोकन कीजिए)। इससे स्पष्ट है कि यदि कानून का अक्षरशः पालन हो तो हमारे जैसे समाज में, जहां गर्भनिरोध के कृत्रिम साधनों का न्यूनतम उपयोग होता है, सन्तानोत्पत्ति को किंचित मात्र ही रोका जा सकता है।

इस तारतम्य में स्त्रियों के विभिन्न प्रसव समूहों में जीवित बच्चों के जन्म के आधार पर भी विश्लेषण किया गया है। (सारणी २)।

सारणी २

स्त्रियों की वर्तमान आयु तथा उनके विभिन्न प्रसव समूहों में जीवित जन्मों का विवरण

वर्तमान आयु समूह तथा प्रत्येक समूह में स्त्रियों की सं०	स्त्रियों के विभिन्न प्रसव समूहों में जीवित जन्मों की संख्या						योग	जन्मों की औसत संख्या
	१५-१९	२०-२४	२५-२९	३०-३४	३५-३९	४०-४४		
१५–१९ (०५)	०६	—	—	—	—	—	०६	१.२
२०–२४ (१५)	१५	२९	—	—	—	—	४४	२.९
२५–२९ (१५)	११	२७	१७	—	—	—	५५	३.७
३०–३४ (२४)	३२	५३	३६	०३	—	—	१२४	५.१
३५–३९ (१६)	१९	२९	२४	२१	०५	—	९८	६.१
४०–४४ (२५)	२०	४८	४३	२६	१२	०४	१५३	६.१
योग (१००)	१०३	१८६	१२०	५०	१७	०४	४८०	—
जन्मों का औसत	१.०	२.०	१.५	.७६	.४१	.१६	—	४.८

१८ वर्ष से कम आयु में जीवित जन्मों का औसत .७६

स्पष्ट है कि कोल स्त्रियों के सम्पूर्ण जनम काल में २०-२९ वर्ष आयु जनन की दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। १५-१९ वर्ष आयु समूह में यह औसत १ बच्चे का जन्म, २०-२४ वर्ष में २ का, २५-२९ वर्ष में १.५ का, ३०-३४ वर्ष में .७६ का, ३५-३९ वर्ष में .४१ का, तथा ४०-४४ वर्ष के आयु समूह में .१६ बच्चे के जन्म का है। यह भी स्पष्ट है कि सम्पूर्ण जनन काल में कुल सम्भावित जन्मों का औसत ६.१ है तथा १८ वर्ष से कम आयु में जन्मों का औसत .७६ है। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक विधान के अन्तर्गत विवाह की आयु में किसी प्रकार की वृद्धि ६.१ सम्भावित जन्मों की तुलना में केवल .७६ जन्मों को ही नियंत्रित कर सकती है।

निष्कर्ष

पूर्ववर्ती उपलब्धियां इस बात का संकेत करती हैं कि विवाह की आयु स्त्रियों की प्रजनन-दर को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है और यह प्रभाव बड़ा ही सीमित है। ये निष्कर्ष चन्द्रशेखरन (१९५९ : ०९), अग्रवाल (१९६७ : १७२), भाटिया (१९८३ : १८९), चौधरी (१९८३ : १४३) तथा अरौरा (१९८३ : ४९) के निष्कर्षों से आंशिक रूप में मिलते हैं। हमारा निष्कर्ष विवाह की आयु और प्रजनन-दर के सह सम्बन्ध की पुष्टि तो करता है, परन्तु इनकी निकटता को नकारता है।

आभार

(१) इस लेख का सार लेखक की रिसर्च प्रोजेक्ट "एज ऐट मैरिज ऐज ए डिटरमिनेण्ट आफ फर्टिलिटी एण्ड फैमिली साइज" से लिया गया है जिसके लिए आर्थिक सहायता भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली से प्राप्त हुई थी। लेखक उक्त संस्था के प्रति आभार प्रदर्शित करता है।

(२) लेखक डा० राजेन्द्र पाण्डेय, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, आई० आई० टी० कानपुर का भी उनके समालोचनात्मक पठन, उचित संशोधनों और महत्वपूर्ण सुझावों के लिए आभारी है।

सन्दर्भ

अग्रवाल, एस० एन० १९६२ : **एज ऐट मैरिज इन इण्डिया**, इलाहाबाद : किताब महल।

अग्रवाल, एस० एन० १९६७ : **इफेक्ट आफ ए राइज इन फीमेल एज आन बर्थ रेट्स इन इण्डिया**, प्रोसीडिंग्स आफ दि वर्ल्ड पापुलेशन कान्फ्रेन्स १९६५, न्यूयार्क, यूनाइटेड नेशन्स।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अरोरा, जी० 1983 : सोशियो-इकनामिक डिटरमिनेण्ट्स आफ फर्टिलिटी, **दि जरनल आफ फेमिली वेलफेयर**, वाल्यूम 29, सं० 3।

बाल्डविन, स्टीफेन 1977 : **नपसियलिटी एण्ड पापुलेशन पालिसी : ऐन इनवेस्टीगेशन इन ट्यूनीसिया, श्रीलंका एण्ड मलेशिया**, न्यूयार्क : दि पापुलेशन काउन्सिल।

ब्लेक, ज्यूडिथ 1967 : **पैरेण्टल कण्ट्रोल, डिलेड मैरिज एण्ड पापुलेशन पालिसी**, प्रोसीडिंग्स आफ दि वर्ल्ड पापुलेशन कान्फ्रेन्स हेल्ड ऐट बेलग्रेड, 1965, न्यूयार्क : यूनाइटेड नेशन्स।

भाटिया, जे० सी० 1983 : **एज ऐट मैरिज एण्ड फर्टिलिटी इन घाना (वेस्ट अफ्रीका)**, डेमोग्रेफी इण्डिया, वाल्यूम 12, सं० 2।

बुशफील्ड, जान 1972 : **एज ऐट मैरिज ऐज ए वैरियेबुल-इन सोशियो-इकनामिक डिफरेन्सियल्स इन फर्टिलिटी**, डेमोग्रेफी, वाल्यूम 6, सं० 1।

चन्द्रशेखरन, एस० 1957 : **इण्डियन पापुलेशन प्राब्लेम**, पेपर प्रेजेण्टेड ऐट दि इनाग्रल कान्फ्रेन्स आफ दि यूनाइटेड नेशन्स डेमोग्रेफिक टीचिंग एण्ड रिसर्च सेण्टर, बाम्बे, नवम्बर 5।

चौधरी, आर० एच० 1983 : **दि इन्फ्लूएन्स आफ फीमेल एजूकेशन, लेबर फोर्स पार्टीसिपेशन एण्ड एज ऐट मैरिज आन फर्टिलिटी बिहैवियर इन बांगला देश**, जनसंख्या, वाल्यूम 1, सं० 2।

चौहान, जे० एस० 1974 : **एज ऐट मैरिज**, दि जरनल आफ फेमिली वेलफेयर, वाल्यूम 20, सं० 4।

चो, एल० एण्ड आर० डी० रेदरफोड 1973 : कम्परेटिव एनालिसिस आफ रीसेण्ट फर्टिलिटी ट्रेण्ड्स इन ईस्ट एशिया, **प्रोसीडिंग्स आफ इण्टरनेशनल पापुलेशन**, वाल्यूम 2। आई० यू० एस० एस० पी० : लीग (बेल्जियम)।

कपाडिया, के० एम० 1963 : **भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार**, दिल्ली : मोतीलाल वनारसीदास।

कोल, ए० जे० 1965 : फैक्टर्स एसोसियेटेड विथ दि डेवलपमेण्ट आफ लो फर्टिलिटी : ए हिस्टोरिक समरी, **प्रोसीडिंग्स आफ दि वर्ल्ड पापुलेशन कान्फ्रेंस**, वाल्यूम 2, पेज 205-209।

कोल, ए० जे० 1973 : दि डेमोग्रेफिक ट्रान्जीशन थियरी रिकन्सीडर्ड, पेपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेजेन्टेड **ऐट दि इण्टरनेशनल पापुलेशन कान्फ़्रेंस आफ दि इण्टरनेशनल यूनियन फार साइंटिफिक स्टडी आफ पापुलेशन** लीग, वाल्यूम २, पेज ५३-७१ ।

इमेरवार, जी० ई० १९७७ : सोशियो-इकोनामिक : हाउ मच इकोनामिक एण्ड हाउ मच सोशियो, इन रूजिका, एल० टी० (एडिटेड), **दि इकोनामिक एण्ड सोशल सपोर्ट्स फार हाई फर्टिलिटी,** कैनबरा : दि आस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेण्ट आफ ज्याग्रफी, पेज १८७-२०२ ।

लाफम, आर० जे० १९७० : फेमिली प्लानिंग एण्ड फर्टिलिटी इन टयूनिसिया, **डेमोग्राफी**, वाल्यूम ७, सं० ७ ।

राव, एम० एन० एण्ड के० के० मैथेन १९७० : **रूरल फील्ड स्टडी आफ पापुलेशन कण्ट्रोल, सिंगूर १९५७-६६,** कलकत्ता : नवाना प्रिंटिंग वर्क्स प्रा० लि० ।

रास, ए० डी० १९६१ : **हिन्दू फेमिली इन इट्स अरबन सेटिंग**, टोरण्टो : यूनिवर्सिटी आफ टोरण्टो प्रेस ।

सिद्ध, के० के० १९७४ : फेमिली प्लानिंग : **दि रिलीजियस फैक्टर**, नई दिल्ली : अभिनव पब्लिकेशन्स ।

सिंह, के० पी० १९७४ : वीमेन्स एज ऐट मैरिज, **सोशियोलाजिकल बुलेटिन**, वाल्यूम २३, सं० २ ।

टीन, वाई० एच० १९७० : मारिटल मोराटोरियम एण्ड फर्टिलिटी इन चाइना, **पापुलेशन स्टडीज**, वाल्यूम २४, सं० ३, पेज ३०७-३२३

यूनाइटेड नेशन्स पापुलेशन डिवीजन रिपोर्ट १९८० : सम फैक्टर्स अफ़ेक्टिंग फर्टिलिटी इन डेवलपिंग कण्ट्रीज ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रौद्योगिकी, भूमि सुधार कानून तथा परिवर्तनशील कृषक आर्थिक संरचना

सुरेन्द्र नाथ पाठक

प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत वे सभी निर्देश, विधियां और साधन सम्मिलित हैं जो कि हर प्रकार की सामग्रियां और पदार्थों के भौतिक, यांत्रिक और रसायनिक प्राप्ति के लिए, उनके उपचार के लिए हैं, साथ ही साथ अर्थ व्यवस्था की विभिन्न शाखाओं में तैयार उत्पादों के पूर्ण वितरण के लिए भी आवश्यक है।[1] बोरोनिस्क के अनुसार प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत कार्य करने की विधियों का सिस्टेमाइजेशन और आर्गनाइजेशन भी सम्मिलित है।[2]

मार्क्स ने "जीवित रहने या जीवन बनाये रखने के लिए उत्पादन के उपकरणों के रूप में पशुओं तथा पौधों के अवयवों के बनने" को प्राकृतिक शिल्प विज्ञान माना था और यह भी कहा था कि "शिल्प विज्ञान उस तरीके या विधि का उद्घाटन करता है जिसके द्वारा मनुष्य प्रकृति से निपटता है अर्थात यह उत्पादन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वह जीवित रहता है।[3]

समाजशास्त्रीय भाषा में प्रौद्योगिकी शब्द का प्रचलन आधुनिक औद्योगिक प्रक्रियाओं के संदर्भ में ही किया जाता रहा है, परन्तु वर्तमान समय में इसका प्रयोग और भी सीमित होकर मुख्यतः दो रूपों में किया जाता है :—

(१) विशुद्ध अर्थात सैद्धान्तिक विज्ञान से अभियन्ताओं तथा शिल्प वैज्ञानिकों की वैज्ञानिक उपलब्धियों के औद्योगिक प्रयोग को अलग करने के लिए।

(२) वैज्ञानिक सिद्धान्तों का हवाला दिए बिना औद्योगिक विधियों तथा उपकरणों को उन्नत करने या मशीनी आविष्कार करने के व्यावहारिक कार्यों के लिए।[4]

इस अध्ययन में मुख्य रूप से कृषि सम्बन्धी प्रौद्योगिकी के कृषक आर्थिक संरचना पर पड़ने वाले प्रभावों तथा उनसे होने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। कृषि

रिसर्च स्कालर, समाज शास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी प्रौद्योगिकी में मुख्य रूप से उन्नतशील रसायनिक खादें, फसलों को बीमारी और कीड़ों से बचाने वाली दवाओं, नवीन कृषि सम्बन्धी संयंत्रों एवं उपकरणों, उन्नत बीज तथा उन्नत पशुधन को सम्मिलित किया जाता है। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों यथा कार्य या श्रम बचत सम्बन्धी प्रौद्योगिकी तथा भूमि बचत या उत्पादन सम्बन्धी प्रौद्योगिकी में विभक्त किया जा सकता है।

भूमि सुधार कानूनों से तात्पर्य उन नियमों से है जो कि भू-स्वामित्व तथा भू-राजस्व व्यवस्था में सुधार लाने के उद्देश्य से समय-समय पर शासन द्वारा निर्मित तथा लागू किए गए हैं। इन कानूनों के द्वारा शासन ने वास्तविक कृषकों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा में सुधार लाने का प्रयास किया है। इस अध्याय में जिन कानूनों का प्रभाव कृषक समाज में ज्ञात करने का प्रयास किया है वे प्रमुख रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेण शासन द्वारा निर्मित किये हैं, जो कि निम्नवत् है :—

१—"दि यू० पी० जमीन्दारी एबोलीशन ऐक्ट। १९५०।" इन्फोर्स्ड इन १९५२।

२—"दि इम्पोजीशन आफ सीलिंग आन लैण्ड होल्डिंग ऐक्ट १९६०"।

३—"दि यू० पी० कनसोलिडेशन आफ लैण्ड होल्डिंग ऐक्ट। १९५४।"।

४—"दि यू० पी० को-आपरेटिव सोसाइटीज ऐक्ट १९६५"।

इसी प्रकार मजदूरों को देय न्यूनतम मजदूरी का भी समय-समय पर शासन द्वारा निर्धारण किया जाता रहा है और इसके कार्यान्वयन हेतु शासन द्वारा प्रभावी कदम भी उठाए गए हैं। इसके परिणाम स्वरूप ही भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन उत्पन्न हुए हैं।

कृषक प्रौद्योगिकी और भूमि-सुधार कानूनों का सीधा प्रभाव ग्रामीण आर्थिक संरचना पर पड़ा है जिसके कारण ग्रामीण आर्थिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जब भी किसी समाज की आर्थिक संरचना में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं तो उसकी सामाजिक संरचना में भी परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। प्रौद्योगिकी के विकास से औद्योगीकरण को और औद्योगीकरण से नगरीयकरण को बढ़ावा मिलता है। औद्योगिक समाज में मनुष्य को इस बात की छूट होती है कि वह अपनी योग्यता सिद्ध करे और दूसरों से प्रतियोगिता कर सके। इस कारण वह नए-नए ऐसे कार्य सीख सकता है जिससे उसकी आय बढ़े और उत्पादन संगठन में उसका अर्जित पद भी ऊँचा उठे। इससे विशिष्टीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिलता है जिसके परिणामस्वरूप नवीन आविष्कार होते हैं तथा पुराने परम्परागत कारीगरों तथा शिल्पियों का ह्रास एवं लोप हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति मात्र आंशिक कर्मचारी रह जाता है और पूरे काम की जिम्मेदारी नहीं रहती है। इस प्रकार विशिष्टीकरण से कार्य कुशलता और उत्पादकता में वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप लोगों की आय में वृद्धि होने के साथ ही साथ कार्य की सरलता के कारण अवकाश की मात्रा में वृद्धि होती है जिससे उन्हें अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधा तथा आवश्यकता की पूर्ति का उचित अवसर प्राप्त होता है। जब कि इसके विपरीत ग्रामीण सामाजिक जीवन में औद्योगिक विकास के पूर्व लोग परम्परागत रूप से एक ही व्यवसाय को करते रहते थे और वे अपने व्यवसाय से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य को स्वयं ही पूरा करते थे। चूंकि ग्रामीण जीवन प्रकृति पर निर्भर था जिससे प्राकृतिक आपदाओं के समय वे निःसहाय हो जाते थे और इसी कारण ग्रामीण जीवन अभावों में ग्रस्त था। वर्तमान समय में प्रौद्योगिकीय विकास से औद्योगीकरण को बढ़ावा मिला जिसके परिणाम स्वरूप बड़े-२ कारखानों तथा औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और ग्रामीण जनता रोजगार हेतु यहां आने लगी। पलायन का यह अवसर भी औद्योगीकरण की प्रक्रिया यथा रेल एवं बस यातायात की सुविधा उपलब्ध होने के कारण ही प्राप्त हुई और बढ़ी। इस पलायन का मुख्य कारण यह है कि यहां विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों तथा फ़ैक्ट्रियों आदि में लोगों को आसानी से कार्य मिल जाता है एवं गांव की अपेक्षा कम मेहनत और कम समय में अधिक मजदूरी मिलती है जिससे ये लोग गांव में अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार लाते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हमारी सरकार ने कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुधारने हेतु अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं जिनमें भूमि सुधार की व्यवस्था सबसे महत्वपूर्ण है। समय-समय पर शासन ने भूमि सुधार कानून पारित किये हैं जिनसे ग्रामीण जीवन के सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। एक ओर जहां जमींदारी उन्मूलन से जमींदारों की आर्थिक स्थिति निम्न तथा सामाजिक प्रतिष्ठा कम हुई है वहीं पर दूसरी ओर भूमिहीनों, भूमिहीन खेतिहर मजदूरों और काश्तकारों की आर्थिक और सामाजिक दोनों ही स्थितियों में सुधार हुआ है। इसी प्रकार चकबन्दी व्यवस्था से कृषकों की आय में वृद्धि हुई है तथा सीलिंग लागू करने और इससे उपलब्ध भूमि का भूमिहीनों में वितरण करने से समाज में अनेक परिवर्तन हुए हैं यथा बड़े कृषकों की आय में कमी, संयुक्त परिवारों का विघटन, समाज के कमजोर वर्गों एवं भूमिहीनों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में वृद्धि तथा विभिन्न प्रकार के आपसी एवं जातीय तनाओं में वृद्धि।[५] चूंकि ग्रामीण जीवन मुख्य रूप से कृषि पर ही निर्भर है इसलिए भूमि की व्यवस्था में जब भी कोई परिवर्तन होता है तो उससे ग्रामीण आर्थिक एवं सामाजिक जीवन अवश्य प्रभावित होता है, जैसा कि विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है।[६]

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र में ग्रामीण सामाजिक जीवन के आर्थिक पक्ष, यथा व्यवसायिक आय और आर्थिक स्तर रहन-सहन का स्तर भौतिक सम्पत्ति सामर्थ्य आदि में वर्तमान प्रौद्योगिक आविष्कारों तथा भूमि सुधार कानूनों के प्रभाव स्वरूप होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन कर वास्तविक स्थिति ज्ञात करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन पद्धति

अध्ययन के उद्देश्यों तथा सुविधा को ध्यान में रखते हुए बाराबंकी जनपद के बंकी तथा देवा विकास खण्डों के दो-दो गांव क्रमशः बनवा (१८८ घर), फैजुल्लागंज (८० घर) तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलूकपुर (१५८ घर), और बीकर (११२ घर) का चुनाव किया गया (घरों की तुलना में परिवारों की संख्या अधिक है क्योंकि किसी-२ घर में दो या दो से अधिक परिवार रहते हैं परन्तु उनके चूल्हे अलग-२ जलते हैं। प्रस्तुत अध्ययन हेतु चुने हुए घरों के प्रधान मुखिया अर्थात् बटवारे से पूर्व जो मुखिया था उसका अथवा वयोवृद्ध मुखिया का ही साक्षात्कार लिया गया)। इन विकास खण्डों और गांवों का चुनाव इस प्रकार किया गया कि एक विकास खण्ड जनपद मुख्यालय के सन्निकट का हो और उसके गांव भी विकास खण्ड मुख्यालय के सन्निकट हो तथा दूसरा विकास खण्ड जनपद मुख्यालय से अपेक्षाकृत अधिक दूरी का हो और उसके गांव भी विकास खण्ड मुख्यालय से अपेक्षाकृत अधिक दूरी के हों जिससे कि तुलनात्मक अध्ययन द्वारा दोनों के अन्तर को स्पष्ट किया जा सके। इन विकास खण्डों तथा गांवों के चयन में इस तथ्य को भी ध्यान में रक्खा गया कि एक विकास खण्ड तथा उसके गांव जनपद मुख्यालय के सन्निकट के हों जिससे कि वहां पर संचार, यातायात सुविधाओं, आधुनिक प्रौद्योगिकी और नगरीकरण तथा भूमि सुधार कानूनों का पर्याप्त प्रभाव एवं जानकारी हो तथा दूसरे में अपेक्षाकृत कम प्रभाव एवं जानकारी हो। तत्पश्चात् देव निदर्शन प्रणाली द्वारा कुल तीन सौ परिवारों का चयन किया गया जिनके मुखिया का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से साक्षात्कार करके सम्पर्क संकलित किया गया। सभी उत्तरदाता अपने परिवार के मुखिया एवं पुरुष सदस्य थे, जिनमें से अधिकांश प्रौढ़, वृद्ध, विवाहित तथा अशिक्षित थे और उनका मुख्य व्यवसाय कृषि था। समस्त उत्तरदाताओं में ६३ प्रतिशत हिन्दू तथा ३७ प्रतिशत मुसलमान थे। समंक संकलन वर्ष १९८५-८६ में किया गया।

संकलित समंकों का विवरण एवं विष्लेषण :

व्यावसायिक परिवर्तन

वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन-यापन का मुख्य स्रोत कृषि है। स्वतंत्रता प्राप्ति एवं जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व तथा वर्तमान ग्रामीण समाज में बहुत अधिक अन्तर है। परम्परागत ग्रामीण समाज में जीविकोपार्जन का साधन केन्द्र मात्र कृषि ही नहीं था अपितु जजमानी व्यवस्था एवं कुटीर उद्योग भी जीवन यापन के महत्वपूर्ण साधन थे। ब्राह्मण का कार्य कृषि न होकर धार्मिक कृत्यों का सम्पादन कराना तथा शिक्षा व्यवस्था का संचालन कराना था। इसी प्रकार नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, कुम्भकार, कहार आदि जजमानी व्यवस्था एवं कुटीर उद्योगों पर निर्भर करते थे अर्थात् ये सभी जातियां प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर न होकर परोक्ष रूप से निर्भर करती थी। प्रमुख रूप से ये जातियां अपने परम्परागत व्यवसाय पर निर्भर थी तथा वस्तु विनिमय के अन्तर्गत यह कृषि कार्य हेतु वांछित सेवाओं में सहयोग प्रदान करती थीं और प्रतिदान में कृषि उत्पादन का प्रत्येक फसल पर एक निश्चित हिस्सा प्राप्त करती थी। वर्तमान समय में यह सभी जातियां प्रत्यक्षतः कृषि पर निर्भर हैं और इनके परम्परागत जातीय व्यवसाय गौड़ हो गये हैं। यही नहीं अनेक लोगों ने अपने परम्परागत जातीय व्यवसाय पूर्ण रूपेण छोड़ दिये हैं जब कि कुछ लोग मात्र अपनी पारिवारिक आय बढ़ाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु ही अपने परम्परागत जातीय व्यवसायगौड़ (Secondary) व्यवसाय के रूप में कर रहे हैं।

ग्रामीण सामाजिक ढांचे में पदसोपान क्रम की दृष्टि से आन्द्रे विते द्वारा वर्णित कृषक स्तरीकरण[७] को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण करने पर अध्ययन में सम्मिलित सभी ३०० कृषक परिवार अपनी जमीन पर स्वयं कृषि कर रहे थे। ऐसा कोई भी परिवार नहीं था जो स्वयं कृषि न करता रहा है। इस संदर्भ में प्राप्त निष्कर्ष हीरामानी[८] के निष्कर्षों से साम्य रखते हैं। सारणी-१ का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर बहुत ही मनोरंजक तथ्य निकलते हैं, जो कि प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप उत्पन्न स्थिति एवं कल्याणकारी शासकीय नीतियों का ही परिणाम है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि इस अध्ययन में केवल कृषक परिवारों को ही सम्मिलित किया गया है जब कि जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व इनमें से विकास खण्ड देवा में ३२-७ प्रतिशत एवं विकास खण्ड बंकी में ४३-३ प्रतिशत परिवार ही प्रत्यक्ष रूप से कृषि में संलग्न थे। शेष में से देवा विकास खण्ड में ३१-३ प्रतिशत कुटीर उद्योगों में, १-३ प्रतिशत धार्मिक व्यवसाय, ६-७ प्रतिशत व्यापार, १०-० प्रतिशत जजमानी (Service caste) और १८-० प्रतिशत कृषि मजदूरी में संलग्न थे अर्थात् यही उनके मुख्य व्यवसाय थे। इसी प्रकार बंकी विकास खण्ड में ७.३ प्रतिशत कुटीर उद्योगों, ८.७ प्रतिशत व्यापार, तथा ४०.७ प्रतिशत कृषि मजदूरी में संलग्न थे। चूंकि बंकी विकास खण्ड के अध्ययन हेतु चुने गये दोनों गांवों में ब्राह्मण, नाई, धोबी एवं कहार आदि जातियां नहीं है इसलिए इनमें धार्मिक व्यवसाय तथा जजमानी पेशे में कोई न पहले संलग्न था और न ही अब है। इस प्रकार सब मिलाकर देवा विकास खण्ड में जमीन्दारी उन्मूलन से पूर्व ६०.३ प्रतिशत तथा बंकी विकास खण्ड में ५६.७ प्रतिशत परिवारों का मुख्य व्यवसाय या जीविकोपार्जन का साधन कृषि नहीं था। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भूमि सुधार कानूनों, आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी के विकास तथा शासन की कल्याणकारी नीतियों के फलस्वरूप भारतीय समाज में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं उनसे ग्रामीण समाज में आश्चर्यजनक गतिशीलता दृष्टिगोचर हो रही है जैसा कि सारणी-१ से स्पष्ट है कि देवा विकास खण्ड में ६७.२ प्रतिशत तथा बंकी विकास खण्ड में ५६.७ प्रतिशत परिवारों ने अपने जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व के व्यवसायों को छोड़कर कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपना लिया है। जो लोग अब भी अपने पूर्व व्यवसायों को कर रहे हैं, वे या तो अंशकालिक व्यवसाय के रूप में अथवा गौड़ व्यवसाय के रूप में, जिसका एक मात्र उद्देश्य परिवार की आय को बढ़ाना है। परन्तु इस तरह के व्यवसायों में केवल मध्यम एवं सबसे अधिक निम्न जातियां ही हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सबसे अधिक व्यावसायिक गतिशीलता निम्न और मध्य जातियों में ही आई है क्योंकि जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व यही जातियां सबसे अधिक पिछड़ी थीं तथा इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति दयनीय थी। इन जातियों की स्थिति में इतना अधिक अन्तर उत्पन्न होने का एक मुख्य कारण भूमि व्यवस्था में होने वाला परिवर्तन है जिसमें से जमीन्दारी उन्मूलन एवं सीलिंग व्यवस्था मुख्य हैं। इन दोनों ही कानूनों के प्रभावस्वरूप जमीन्दारों की काफी जमीनें निकली हैं जो येक-केन प्रकारेण[९]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं जातियों को प्राप्त हुई हैं।

यह स्थिति उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम वर्तमान समय में ग्रामीण अंचलों में कृषक मजदूरों की कमी की समस्या पर दृष्टि डालते हैं। चूंकि कृषक मजदूरों की आपूर्ति इन्हीं पिछड़ी और निम्न जातियों से होती थी और अब प्रौद्योगिक विकास के परिणाम-स्वरूप औद्योगीकरण का विकास होने से इन जातियों के लोग गांवों में मजदूरी करने की अपेक्षा

सारणी–१

जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व प्रमुख व्यवसाय

विकास खण्ड, देवा			विकास खण्ड, बंकी		
क्र० सं० व्यावसायिक श्रेणी	संख्या	प्रतिशत	क्र० सं० व्यावसायिक श्रेणी	संख्या	प्रतिशत
१—जमीन्दारी/काश्तकारी (कृषि) (ब्राह्मण-५, कुर्मी-३० यादव-१२, स्वर्णकार-२)	४९	३२-७	१—जमीन्दारी/काश्तकारी (कृषि) (कुर्मी-८, यादव-१५ मुसलमान -४२) (शेख-२, पठान-४०)	६५	४३-३
२—कुटीर उद्योग (लोहार-२, लोनिया-१, कुम्भकार-५, बढ़ई-३, बकसोर-२, जुलाहा-२४, धुनिया (बेहना)-५, दर्जी-५)	४७	३१-३	२—कुटीर उद्योग (लोनिया-३, गड़रिया-३, (धुनिया (बेहना)-५)	११	७-३
३—धार्मिक व्यवसाय (ब्राह्मण-१, गोसाई-१)	०२	१-३	३—धार्मिक व्यवसाय		
४—व्यापार (यादव-३, स्वर्णकार-३, भूज-२, तेली-२)	१०	६-७	४—व्यापार (यादव-५, भूज-१, कबाड़िया-५, तेली-२)	१३	८-७
५—जजमानी सेवक (कहार-२, धोबी-१, नाई-१२)	१५	१०-०	५—जजमानी सेवक	—	—
६—कृषक मजदूर (पासी-९, चमार-१२, भंगी-१, साइ-५)	२७	१८-०	६—कृषक मजदूर (पासी-३, चमार-५०, नट-४, साई-४)	६१	४०-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े-२ औद्योगिक नगरों जैसे बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, कानपुर एवं लखनऊ आदि में मजदूरी करने चले जाते हैं जहां पर उन्हें कम शारीरिक श्रम और कम समय में गांवों की अपेक्षा कई गुना अधिक पारिश्रमिक प्राप्त होता है। फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति शीघ्र अच्छी हो जाती है। इस पलायन में भूमि सुधार कानूनों की भूमिका महत्वपूर्ण है, क्योंकि जमीन्दारी व्यवस्था में ये कृषक मजदूर अपने जमीन्दारों की अनुमति के बिना कोई कार्य नहीं कर सकते थे और न ही कहीं आ-जा सकते थे। परन्तु जमीन्दारी उन्मूलन के फलस्वरूप जमीने वास्तविक कृषकों को मिल गयी। सीलिंग लागू करने से प्राप्त हुई भूमि और ग्राम समाज की बंजर तथा परती पड़ी हुई भूमि का निम्न जातियों के भूमिहीनों को आवंटन भी शासन की ओर से कर दिया गया जिससे इन जातियों का अपनी भूमि पर अधिकार हो जाने से ये लोग जमींदारों के प्रभाव से मुक्त होकर स्वतंत्र हो गए। संशोधित सीलिंग अधिनियम के कार्यान्वयन के फलस्वरूप जनवरी १९८३ के अन्त तक प्रदेश में कुल २,८८,५९२ एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित हुई जिसमें से १,४०,६३४ एकड़ भूमि, १,९४,९८८ परिवारों को आवंटित की गयी है जिसमें से १,४४,३८१ परिवार अनुसूचित जाति/जनजाति के हैं। शासन ने जिन भूमिहीनों को भूमि प्रदान कराई है उनमें सभी पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के हैं। इनमें भी ७५ प्रतिशत व्यक्ति अनुसूचित जाति/जनजाति के ही हैं।[१०] ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक मजदूरों की कमी की समस्या का एक प्रमुख कारण भूमि सुधार कानून भी है क्योंकि अब निम्न जातियों के सदस्यों के पास अपने खेतों में ही पर्याप्त कार्य रहता है अतः इन्हें अन्य लोगों के यहां मजदूरी करने का समय ही नहीं मिलता। दूसरा कारण यह भी है कि इन पूर्व शोषित जातियों की आर्थिक स्थिति में सुधार होने से इनकी सामाजिक स्थिति में भी सुधार हुआ है। अस्तु वर्तमान समय में ये लोग दूसरों के यहां शारीरिक श्रम करना अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं। अब केवल वे ही परिवार कृषक मजदूर के रूप में कार्य करते हैं जिनके परिवार का कोई सदस्य किसी नगर में कार्य करने नहीं जाता और उसकी आर्थिक स्थिति दयनीय है परन्तु ऐसे लोग भी बहुत अधिक मजदूरी लेकर ही कार्य करते हैं।

व्यावसायिक परिवर्तन का एक और कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक प्रौद्योगिकी के उत्तरोत्तर विकास के फलस्वरूप कुटीर उद्योगों का ह्रास होता है जो कि कुछ समय पहले तक अनेकों जातियों की जीविका के मुख्य साधन थे। इन उद्योगों के नष्ट होने का प्रमुख कारण यह है कि इनमें अधिक समय तथा अधिक परिश्रम नष्ट करने पर भी इनमें संलग्न सदस्यों की आर्थिक स्थिति दयनीय रहती है। इसके लिए कुछ तो सरकार उत्तरदायी है और कुछ आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी। सरकार इसलिए उत्तरदायी है क्योंकि वह इन व्यवसायों में संलग्न लोगों को उचित सुविधाएं समयानुसार तथा सरलतापूर्वक उपलब्ध नहीं करा पाती है और न ही इनके द्वारा उत्पादित माल की बिक्री का ऐसा प्रबन्ध है कि वह समयानुसार उचित मूल्य पर बिक सके और इनकी पूंजी कुछ लाभ के साथ निकलती रहे। आधुनिक विकसित प्रौद्योगिकी इसलिए उत्तरदायी है कि बड़े-बड़े कारखानों में आधुनिक मशीनों द्वारा निर्मित माल अच्छे होने के साथ-साथ सस्ते भी होते हैं, जिसके कारण इस माल की खपत कुटीर उद्योगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उत्पादित माल की तुलना में अधिक और शीघ्र हो जाती है । इसके अतिरिक्त कुटीर उद्योग-धन्धे सामाजिक दृष्टि से हेय होने के कारण उनसे सम्बद्ध जातियां अपनी सामाजिक स्थिति उच्च बनाने के उद्देश्य से उसे छोड़ती जा रही हैं । इस प्रकार इन व्यवसायों के लुप्त होने से परम्परागत व्यवसाय जो प्रत्येक जातियों हेतु निर्धारित थे अब बहुत ही तीव्र गति से बदल रहे हैं तथा परम्परागत जातियों के स्थान पर नवीन व्यावसायिक जातियों का अभ्युदय ग्रामीण क्षेत्रों में भी होने लगा है । सारणी १ में अंकित छः व्यावसायिक जातियों में से (कुटीर उद्योग व्यापार और जजमानी) तीन में अधिकतम व्यावसायिक परिवर्तन हो रहा है क्योंकि यह तीनों व्यावसायिक वर्ग अपने परम्परागत व्यवसाय को छोड़ते जा रहे हैं ।

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि प्रस्तुत अध्ययन हेतु चुने गये सभी ३०० परिवारों का मुख्य व्यवसाय कृषि है जब कि जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व विकास खण्ड देवा में ३२.७ प्रतिशत तथा विकास खण्ड बंकी में ४३.३ प्रतिशत परिवारों का ही मुख्य व्यवसाय कृषि था । सारणी २ के अवलोकन एवं सूक्ष्म विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि उन परिवारों में से, जिनका मुख्य व्यवसाय जमीन्दारी उन्मूलन से पूर्व कृषि नहीं था, देवा विकास खण्ड में १७.३ प्रतिशत तथा बंकी विकास खण्ड में ८.० प्रतिशत परिवारों द्वारा ही कृषि को गौड़ व्यवसाय के रूप में अपनाया गया था । इस प्रकार जमीन्दारी उन्मूलन से पूर्व विकास खण्ड, देवा में ५०.० प्रतिशत तथा विकास खण्ड बंकी में ४८.७ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका कृषि न तो मुख्य व्यवसाय था और न ही गौड़ । अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जमीन्दारी उन्मूलन से पूर्व देवा और बंकी विकास खण्डों में क्रमशः ५०.० एवं ४८.७ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जो कृषि पर निर्भर न होकर अन्य व्यवसायों पर निर्भर थे, परन्तु वर्तमान समय में उन सभी ने कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपना लिया है । इस प्रकार यह तथ्य स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि अब ग्रामीण अंचलों में व्यावसायिक संरचना अपने परम्परागत स्वरूप से लगभग पूर्ण रूपेण हट चुकी है । अब विभिन्न जातियों हेतु निर्धारित व्यवसायों का कोई महत्व नहीं रहा और न ही किसी को उसे करने हेतु बाध्य किया जा सकता है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा एवं योग्यतानुसार कोई भी व्यवसाय करने हेतु स्वतंत्र है । ब्राह्मण वर्ग जो पहले हल चलाना अपवित्र कार्य समझता था, अब ट्रैक्टर के आविष्कार के फलस्वरूप अपने खेतों की जुताई स्वयं कर लेते हैं । इसी तरह नलकूप, नहर और रहट से सिंचाई तथा फसलों की कटाई-दवाई आदि के यन्त्रों के आविष्कार के परिणामस्वरूप शारीरिक श्रम, जो कि हेय माना जाता था, की समस्या का भी कुछ सीमा तक समाधान होता जा रहा है ।

आय और गरीबी

किसी भी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति उनकी विभिन्न स्रोतों से अर्जित आय पर निर्भर करती है । अतः किसी भी जनसंख्या की आर्थिक स्थिति का निर्धारण करने हेतु चाहे कितने ही सीमित क्षेत्र का अध्ययन क्यों न किया जाये उसका महत्व कम नहीं होता है । इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन भी इसका अपवाद नहीं है । चूँकि प्रश्नगत अध्ययन ग्रामीण जनसंख्या के उस भाग का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी-२
जमीन्दारी उन्मूलन के पूर्व गौण व्यवसाय

विकास खण्ड, देवा						विकास खण्ड, बंकी					
क्रम सं०	मुख्य व्यावसायिक श्रेणी	गौण व्यवसाय				क्रम सं०	मुख्य व्यावसायिक श्रेणी	गौण व्यवसाय			
		कृषि	अन्य	कुछ नहीं	योग			कृषि	अन्य	कुछ नहीं	योग
१.	**कुटीर उद्योग** (लोहार-१, कुम्हार-३ बढ़ई-२, जुलाहा-६ धुनिय (वेहना)-२)	१४ (९.३)	—	३३ (२२.०)	४७ (३१.३)	१.	**कुटीर उद्योग** (लोनिया-२, गड़रिया-१ धुनिया (वेहना)-२	०५ (३.३)	— —	०६ (४.०)	११ (७.३)
२.	**व्यापार** (यादव-३, स्वर्णकार-३	०६ (४.०)	—	०४ (२.७)	१० (६.७)	२.	**व्यापार** (यादव-५, कबड़िया-२)	०७ (४.७)	—	०६ (४.०)	१३ (८.७)
३.	**धार्मिक व्यवसाय** (ब्राह्मण-१, गोसाँई-१	०२ (१.३)	—	—	०२ (१.३)	३.	**धार्मिक व्यवसाय**	—	—	—	—
४.	**जजमानी सेवक** (कहाँर-१, नाई-३)	०४ (२.७)	—	११ (७.३)	१५ (१०.०)	४.	**जजमानी सेवक**	—	—	—	—
५.	कृषक मजदूर	— (१८.०)	—	२७ (१८.०)	२७	५.	कृषक मजदूर	—	—	६१ (४०.७)	६१ (४०.७)
६.	जमीन्दारी/काश्तकारी	—	—	४९ (३२.७)	४९ (३२.७)	६.	जमीन्दारी/काश्तकारी	—	—	६५ (४३.३)	६५ (४३.३)
	योग	२६ (१७.३)		१२४ (८२.७)	१५० (१००.०)			१२ (८.०)		१३८ (९२.०)	१५० (१००.०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिसकी आय का प्रमुख स्रोत कृषि है। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकलना स्वाभाविक है कि बड़े कृषकों के पास आय का बहुत बड़ा भाग होता है जब कि मध्यम कृषकों के पास उससे कम तथा छोटे और सीमान्त कृषकों की आय निम्न होती है, जब कि सबसे कम आय भूमिहीन कृषक मजदूरों की होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बड़े कृषकों के पास आय के असीमित साधन होते हैं जब कि मध्यम कृषकों के पास अपेक्षाकृत कम साधन होते हैं। छोटे और सीमान्त कृषकों के पास आय के सबसे कम साधन होते हैं परन्तु भूमिहीन कृषक मजदूरों के पास मात्र अपना श्रम ही होता है। यद्यपि ऐसे सामान्यीकरण कभी-कभी सर्वमान्य होते हैं, लेकिन आर्थिक असमानता की सीमा या उसकी मात्रा में अथवा उससे सम्बन्धित विचारधारा में किसी परिवर्तन या उसमें उससे सम्बन्धित किसी पहलू उदाहरणार्थ गरीबी को उचित रीति से तब तक नहीं मापा जा सकता है जब तक कि उसकी वास्तविक स्थिति पर स्थूल दृष्टि से विचार न किया जाये।

आय के वितरण का एक महत्वपूर्ण पक्ष गरीबी की सीमा रेखा का मापन भी है। गरीबी का निर्धारण कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में जिनकी उपभोग और व्यय की क्षमता पौष्टिक आहार, कपड़ा और मकान की न्यूनतम वांछित आवश्यकताओं, जो जीवित रहने के लिए नितान्त आवश्यकता से कम या अधिक होने पर तुलनात्मक रूप से की जा सकती है। इन आवश्यकताओं में भौगोलिक स्थिति के अनुसार पर्याप्त अन्तर होता है, फिर भी जैविकीय और जलवायु को इसके माप का आधार मानते हुए वर्तमान समय में हमारे देश में जो समान मापदण्ड (Common Standard) अपनाया जा रहा है वह न्यूनतम वांछित पौष्टिक आहार पर निर्भर है जो कि ग्रामीण क्षेत्रों में २४०० कैलोरी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति और शहरी क्षेत्रों में २१०० कैलोरी प्रति दिन प्रति व्यक्ति आवश्यक है। यद्यपि यह निश्चित कर पाना कि ग्रामीणों की आय में वास्तव में वृद्धि हुई है अथवा यह केवल लाक्षणिक है, एक बहुत ही जटिल आर्थिक प्रक्रिया है।

यह सर्वविदित है कि अनेकों कारणों से रुपये की क्रय क्षमता बहुत ही कम हो गयी है" अस्तु किसी की आय में वृद्धि के परिणाम को ही सदैव उसकी आर्थिक समृद्धि का सूचक नहीं माना जा सकता है। गरीबी के परिमापन की समस्या इतनी अधिक दुरूह है कि केन्द्रीय सांख्यकीय संगठन ने भी इसका सही माप कर पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की है। यथा

"Leave alone measurement" concludes the C.S.O. report, "even the concept of poverty is complicated and raises several basic issues which are not easy to solve,"[12] The poverty-line approach is the simplest one which is often adopted in India but which is no less a subject of controversy among the economists. This difficulty has been taken note of by the Central Statistical Organisation (C.S.O.) which further says "Overall average for a country of India's size will hardly be the answer. This norm will have to be fixed for different regions taking into account the wide disparities in food habits, climatic situation and socio-economic conditions.., the household

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

rather than the individual should function as a unit for purpose of consumption.... the monetary terms— have to be adjusted for price change."

इस प्रकार आय के मानक द्वारा हम जिन परिवर्तनों को ज्ञात करना चाहते हैं वह इतना सरल नहीं है। फिर भी इस स्थिति में जब कि रुपये की क्रय क्षमता निरन्तर घटती जा रही है उपलब्ध आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में पहले की अपेक्षा अब गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत घटा है।

सारणी-३

कृषि से कुल मासिक आय

आय (रु० में)	विकास खण्ड देवा		विकास खण्ड वंकी	
	पिता की आय	स्वयं की आय	पिता की आय	स्वयं की आय
३०० तक	११३ (७५—३)	६० (४०—०)	१०८ (७२—०)	५४ (३६—०)
३००—६००	१८ (१२—०)	५३ (३५—३)	२० (१३—३)	४८ (३२—०)
६००—९००	१४ (९—३)	२२ (१४—७)	१५ (१०—०)	२८ (१८—७)
९००—१२००	०३ (२—०)	१० (६—७)	०४ (२—७)	१२ (८—०)
१२०० से अधिक	०२ (१—३)	०५ (३—३)	०४ (२—०)	०८ (५—३)
योग	१५० (१००—०)	१५० (१००—०)	१५० (१००—०)	१५० (१००—०)

जिन परिवारों की आय रु० ३०० प्रतिमाह तक है उन परिवारों का कोई सदस्य न तो किसी नियमित सेवा में है और न ही किसी अन्य प्रकार का कोई कार्य करता है। अन्य आय समूहों के परिवारों के सदस्य किसी न किसी अन्य रोजगार में लगे हैं परन्तु उनकी कृषि के अतिरिक्त अन्य स्रोतों की आंय को इसमें सम्मिलित नहीं किया गया है।

उत्तरदाताओं ने अपनी आय में वृद्धि हेतु कई कारकों का योगदान बताया परन्तु सबसे अधिक महत्व भूमि सुधार व्यवस्था को दिया है। कृषकों के अनुसार भूमि सुधार व्यवस्था से ही वास्तविक कृषकों तथा भूमिहीनों को भूमि प्राप्त हुई और वे जमीन्दारों के चंगुल से मुक्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सके। चकबन्दी व्यवस्था से सभी खेत एक जगह हो गए जिससे कृषि कार्य (सिंचाई जुताई आदि) में तथा उन्नत प्रौद्योगिकी को प्रयुक्त करने में सुविधा हो सकी है। अब कृषक नलकूपों, नहरों तथा रहट आदि से अपने खेतों की सिंचाई आसानी से कर सकते हैं तथा उनकी देख-रेख भी उचित प्रकार से करते हैं। शासन द्वारा उन्नतशील बीजों की व्यवस्था और आसान किश्तों पर ऋण की व्यवस्था आदि से भी उत्पादन में वृद्धि हुई है। पक्की सड़कों तथा यातायात की सुविधाओं के विकास के फलस्वरूप कृषक अब अपनी पैदावार को सरलता पूर्वक शहरों में भेज देते हैं जिससे उन्हें अपेक्षाकृत अधिक लाभ होता है। सारणी ३ से स्पष्ट है कि देवा विकास खण्ड में ४०-० प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकी मासिक आय ३०० रु० है जब कि ७५.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता की मासिक आय रु० ३००/- थी। इसी प्रकार बंकी विकास खण्ड में अब ३६-० प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिनकी मासिक आय रु० ३००/- है जब कि ७२-० प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता की मासिक आय रु० ३००/- तक थी। अधिकतम आय समूह में भी देवा विकास खण्ड में ३-३ प्रतिशत तथा बंकी विकास खण्ड में ५-३ प्रतिशत उत्तरदाता हैं जब कि दोनों विकास खण्डों में क्रमशः १-३ प्रतिशत एवं २-० प्रतिशत उत्तरदाताओं के पिता ही इस समूह में थे।

यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्येक परिवार की आय बढ़ने से उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है फिर भी उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति का अवलोकन करने तथा उनके स्वयं के एक ही समय में परस्पर विरोधी उत्तरों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अभी भी प्रश्नगत अध्ययन क्षेत्र में देवा विकास खण्ड में ४०-० प्रतिशत तथा बंकी विकास खण्ड में ३६-०० प्रतिशत परिवार गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहते हैं। दोनों विकास खण्डों में मिलाकर ३८-० प्रतिशत परिवार गरीबी की सीमा रेखा के नीचे रहते हैं। जिनकी कुल मासिक आय रु० ३००/- से अधिक नहीं है। ये सभी परिवार निम्न तथा मध्यम जातियों के हैं जिनके पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है तथा ये आधुनिक विकसित कृषि प्रौद्योगिकी का प्रयोग अपनी आर्थिक स्थिति के कारण नहीं कर पाते हैं।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि केवल निम्न जातियाँ ही गरीबी की सीमा-रेखा के नीचे जीवन यापन नहीं कर रही हैं अपितु मध्यम एवं उच्च जातियों के परिवार भी जिनके पास अपर्याप्त भूमि है, इस श्रेणी में आते हैं। बहुत से भूमिहीन परिवारों के सदस्य अपने आप को मजदूरी के अन्य कार्यों (जैसे ईंट के भट्ठों पर कार्य करना, रिक्शा चलाना, तथा आस-पास के गांवों में मजदूरी करना) में व्यस्त रहते हैं। ये लोग बड़े-बड़े औद्यौगिक नगरों में न जाकर यह प्रयास करते हैं कि इन्हें गांवों में मकान बनाने के कार्य, सड़कें बनाने का कार्य, चाहे वे ठेके पर हों अथवा मजदूरी पर प्राप्त हो जाए। ये लोग ऐसे कार्य तभी करते हैं जब उनके खेतों में कोई कार्य नही होता है। जहां तक भूमि पर्याप्त होने तथा उससे आवश्यकतानुसार उत्पादन होने का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में अधिकांश उत्तरदाताओं की यह धारणा है कि जिनके पास डेढ़ एकड़ तक जमीन है उन्हें भी कभी-कभी बाजार से अपने उपयोग हेतु अनाज क्रय करना पड़ता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च आय समूह के अधिकांश कृषक पुराने जमीन्दार हैं। दोनों ही विकास खण्डों में अभी भी कुछ ऐसे कृषक हैं जिनके पास १२ एकड़ से अधिक भूमि है। ये बड़े कृषक अपने खेतों में अधिकांशतः व्यापारिक दृष्टि से अधिक लाभ की फसलें ही उगाते हैं। यद्यपि छोटे और सीमान्त कृषक भी गन्ना, अफीम तथा सब्जी आदि व्यापारिक महत्व की फसलें उगाते हैं परन्तु ये लोग बड़े कृषकों की अपेक्षा ऐसी फसलें कम उगाते हैं क्योंकि इनके पास जमीन तथा साधन दोनों की कमी होती है।

अब गांवों में अधिकांश कृषक नवीन कृषक प्रौद्योगिकीय पद्धतियों का प्रयोग करने लगे हैं। वर्तमान समय में निजी नलकूप, ट्रैक्टर-ट्राली, थ्रेशर, डनलप बैलगाड़ी, आटा-चक्की आदि का प्रयोग इन क्षेत्रों में एक सामान्य सी बात है। इनका प्रयोग करके कृषक न केवल अपना कार्य शीघ्र निपटाता है वरन इससे वह अपने कार्य के शीघ्र निष्पादन के बाद अन्य लोगों का कार्य करके अधिकाधिक लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार भूमि सुधार प्रौद्योगिक विकास एवं आर्थिक स्तर में एक स्पष्ट सह-सम्बन्ध पाया जाता है। इन तथ्यों की पुष्टि और भी अनेकों अर्थशास्त्रियों[११] के अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्षों से होती है। इस प्रकार भूमि सुधार कानून, आधुनिक विकसित कृषि प्रोद्योगिकी तथा औद्योगिक उपलब्धियां ग्रामीण आर्थिक संरचना को परिवर्तित करने में अहम् भूमिका का निर्वाह कर रही है, क्योंकि इनके परिणाम स्वरूप कृषकों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने में पर्याप्त सहायता मिल रही है।

जीवन-यापन का स्तर

किसी की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है अथवा कमी आई है यह उस समय तक स्पष्ट नहीं हो सकता जब तक उन तथ्यों का अध्ययन न किया जाय जिन पर रहन-सहन का स्तर निर्भर करता है। यथा आय एवं उसका स्रोत, व्यय तथा उसका मद और उसके पास उपलब्ध वस्तुओं की उपयोगिता तथा उसका मूल्य आदि। यद्यपि रहन-सहन का स्तर अपने आप में स्वयं एक विवादास्पद तथ्य है फिर भी प्रस्तुत अध्ययन में साधारणतया उन आधारों पर इसका अध्ययन-अवलोकन करने का प्रयास किया गया जिन पर सामान्यतया इसे आंकलित किया जाता है यथा कम या पर्याप्त मात्रा में आवश्यकताओं की पूर्ति, भोजन, वस्त्र और मकान की स्थिति। जिन लोगों की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति उचित रूप में नहीं हो पाती उन्हें गरीबी की सीमा रेखा के नीचे माना गया है। प्रश्नगत अध्ययन क्षेत्र में सभी वर्गों के कृषको के जीवन स्तर में उनके पिता की तुलना में वृद्धि हुई है। इसकी पुष्टि कृषकों द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार वांछित वस्तुओं के अतिरिक्त विलासिता की वस्तुओं के पर्याप्त मात्रा में संग्रह को देखने से होती है।

उत्तरदाताओं की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि वे अपनी आवश्यकता पूर्ति के अतिरिक्त वस्तुओं का संचय कितनी मात्रा में करते हैं, किस तरह उनका उपभोग करते हैं तथा इनकी आपूर्ति एवं उपभोग में पहले की अपेक्षा कितना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी-४

पिता की तुलना में जीवन-यापन का स्तर

जीवन-यापन का स्तर	विकास खण्ड देवा			विकास खण्ड, बंकी		
	भोजन	वस्त्र	मकान	भोजन	वस्त्र	मकान
उच्च	१३० (८६-७)	१४० (९३-३)	१३० (८६-७)	१३५ (९०-०)	१४५ (९६-७)	१३५ (९०-०)
समकक्ष	२० (१३-३)	१० (६-७)	२० (१३-३)	१५ (१०-०)	०५ (३-३)	१५ (१०-०)
निम्न	—	—	—	—	—	—
योग	१५० (१००-०)	१५० (१००-०)	१५० (१००-०)	१५० (१००-०)	१५० (१००-)	१५० (१००-०)

अन्तर आया है। प्राप्त आंकड़े जो सारणी ४ में दर्शाए गये हैं, के अवलोकन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि उत्तरदाता के पिता और उसके स्वयं के समय में पर्याप्त अन्तर स्पष्ट परिलक्षित है। कोई भी उत्तरदाता ऐसा नहीं है जिसकी आर्थिक स्थिति भोजन, वस्त्र अथवा मकान के मामले में अपने पिता की तुलना में निम्न हुई हो। विकास खण्ड देवा में भोजन, वस्त्र तथा मकान के सम्बन्ध में क्रमशः ८६.७ प्रतिशत, ९३.३ प्रतिशत है। ८६.७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी स्थिति पिता से उच्च बताया है जब कि इन्हीं मामलों में क्रमशः १३.३ प्रतिशत, ६.७ प्रतिशत तथा १३.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी स्थिति पिता के समान ही बताया है। इसी प्रकार विकास खण्ड, बंकी में मकान के मामले में ९०.० प्रतिशत, वस्त्र में ९६.७ प्रतिशत तथा भोजन में ९०.० प्रतिशत, उत्तरदाताओं ने अपनी स्थिति पिता की तुलना में उच्च माना है जब कि इसी विकास खण्ड में भोजन में १०.० प्रतिशत, वस्त्र में ३.३ प्रतिशत और मकान में १०.० प्रतिशत लोगों ने अपनी स्थिति पिता के समकक्ष ही माना है अर्थात उनकी स्थिति में न तो सुधार हुआ है और न ही कमी आई है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय में वृद्धि होने के साथ ही कृषकों के जीवन स्तर में सुधार हो रहा है। जिन उत्तरदाताओं ने अपनी स्थिति पिता के समकक्ष बताया है उनसे जब इस सम्बन्ध में और जानकारी प्राप्त की गयी तो ज्ञात हुआ कि इनमें से सभी लोगों की आय में तो वृद्धि हुई है परन्तु कुछ लोगों के परिवार में जमीन का बटवारा हो जाने से तथा कुछ लोगों के परिवार के सदस्यों की संख्या में अधिक वृद्धि हो जाने के कारण उनकी स्थिति में पिता की स्थिति की तुलना में कोई अन्तर नहीं आया।

इस सम्बन्ध में यह भी ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि भूतपूर्व जमीन्दारों की आर्थिक स्थिति पर जमीन्दारी उन्मूलन तथा सीलिंग कानूनों के परिणाम स्वरूप जमीन निकलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विपरीत प्रभाव क्यों नहीं पड़ा ? उत्तरदाताओं से इस सम्बन्ध में पर्याप्त छान-बीन करने पर ज्ञात हुआ कि यदि उक्त कानूनों के प्रभाव स्वरूप कुछ जमीन निकल गयी तो चकबन्दी के परिणाम स्वरूप कृषकों के बिखरे हुए खेत एक जगह मिल जाने, सिंचाई सुविधाएं बढ़ जाने और नवीन कृषि प्रौद्योगिकी यथा नवीन कृषि यन्त्र, उन्नत बीज, रसायनिक खादों आदि के परिणामस्वरूप उत्पादन में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि होने एवं याता-यात की सुविधा बढ़ने के फलस्वरूप नगरों की मण्डियों में उत्पादित माल के बिक्री होने की सुविधा उपलब्ध हो जाने के कारण उनकी आय में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हुई है। फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर इसका प्रतिकूल प्रभाव अवश्य पड़ा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में एक विलक्षणता यह देखने को मिली कि अब ग्रामीण परिवार भोजन तथा वस्त्र के मामले में नगरीय परिवारों का अनुसरण करने लगे हैं। यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि अब प्रायः सभी परिवारों में लोग सुबह-शाम चाय अवश्य पीते हैं तथा जिनकी आर्थिक स्थिति थोड़ी अच्छी है वे चाय के साथ कुछ नाश्ता भी करते हैं। अब अपने मेहमानों को भी ये लोग गुड़ अथवा शरबत के स्थान पर चाय पिलाते हैं। चाय के लिए प्रायः चीनी मिट्टी के कप-प्लेटों अथवा कांच के गिलासों का प्रयोग करते हैं। ग्रामीण अंचलों में अब मेहमानों को गुड़ खिलाकर पानी पिलाना या शरबत पिलाना निम्न आर्थिक स्थिति तथा पिछड़ेपन का प्रतीक माना जाने लगा है जब कि चाय पिलाना प्रगतिशीलता और उच्च आर्थिक स्थिति का प्रतीक माना जाता है। वस्त्र के मामले में ग्रामीण अंचलों में अब पहले की अपेक्षा अत्यधिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। सूती वस्त्रों के स्थान पर टेरीकाट का प्रयोग अधिक होने लगा है। अब प्रायः सभी नवयुवक टेरीकाट की पैन्ट और बुशर्ट रखते हैं जिनका प्रयोग कहीं बाहर आने जाने के समय करते हैं तथा जिनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है वे टेरीकाट का कुर्ता धोती कहीं बाहर जाने के समय पहनते हैं। घर पर प्रायः नवयुवक लोग बनियाइन और लुंगी तथा बुजुर्ग लोग धोती एवं बनयाइन पहनते हैं। स्त्रियां भी प्रायः नायलान अथवा टेरीकाट की धोती और ब्लाउज पहनती हैं। अब अधिकांश नवयुवतियां शहरी औरतों की भांति धोती पहनती तथा आंचल रखती हैं। केवल आर्थिक स्थिति से कमजोर परिवारों की स्त्रियां ही सस्ते तथा सूती वस्त्रों का प्रयोग करती हैं। जिन परिवारों की आर्थिक स्थिति अच्छी है उनकी स्त्रियां आधुनिक सौंदर्य प्रसाधनों यथा क्रीम, पाउडर, लाली (लिपिस्टिक), नाखूनी (नेलपालिश) तथा इत्र (सेन्ट) आदि का प्रयोग करती हैं।

मकान के क्षेत्र में भी ग्रामीण अंचलों में परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। पहले लोग गांवों में मिट्टी की दीवालें उठाते थे और छप्पर से छाते थे तथा जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती थी वे लोग बाहर से दीवार के किनारे-किनारे ईटों की जुड़ाई मिट्टी के गारे से करा लेते थे और खपड़ैल के मकान बनाते थे तथा जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी होती थी वे खपड़ैल के दो दर के मकान बनाते थे जिसमें एक दर लकड़ी के पटरे आदि रखकर उसके ऊपर मिट्टी की पटाई करके उसकी लिपाई–पुताई कर देते थे और उसके ऊपर खपड़ैल बनाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे परन्तु अब सभी वर्गों के लोग नगरों की भांति पक्की ईंट, सीमेन्ट तथा सरिया का प्रयोग करके पक्के मकान बनाते हैं यहां तक कि निम्न आय समूह और निम्न जातियों के लोग भी पक्के मकान बनाने लगे हैं जिसका एक कारण यह भी है कि पहले भूमिहीनों के पास अपनी कोई जमीन नहीं थी तथा जमीन्दार जब चाहते थे उन्हें अपनी जमीन से हटा देते थे। परन्तु अब विभिन्न भूमि सुधार कानूनों के परिणामस्वरूप भूमिहीनों तथा निम्न जातियों को मकान बनाने हेतु भूमि आवंटित कर दी गयी है। यही नहीं अपितु जिन लोगों ने जहां कहीं भी जिस जमीन पर मकान बना लिया था वह भूमि उसी को आवंटित हो जाने से अब कोई उन्हें वहाँ से हटा नहीं सकता।

भोजन के क्षेत्र में निश्चित रूप से सुधार देखने को मिला है। पहले लोग गांवों में अपने खाने हेतु लौकी, कद्दू तथा आलू जैसी सब्जियां ही उगाते थे तथा सब्जी का प्रयोग अपेक्षाकृत कम करते थे। परन्तु अब सब्जी उनके भोजन का एक अभिन्न अंग बन गया है तथा लोग विभिन्न प्रकार की शाक-सब्जियां उगाने लगे हैं। यहां तक कि जो लोग स्वयं नहीं उगा पाते हैं वे बाजार से क्रय क़रते हैं। पहले मध्यम तथा निम्न जातियों के लोग प्रायः माँसाहारी थे परन्तु अब उनमें अधिकतर लोग विशुद्ध शाकाहारी हो गये हैं। माँसाहारी से शाकाहारी बनने का एक प्रमुख कारण यह है कि ग्रामीण अंचलों में शाकाहारी लोगों को लोग सामाजिक दृष्टि से उच्च स्थान देते हैं। अब लोग गांवों में भी नगरों की ही भांति स्वच्छ, ताजा एवं पौष्टिक भोजन करने लगे हैं।

भौतिक वस्तुओं का संग्रह

किसी भी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के निर्धारण में उसके व्यय के मदों, पद्धतियों तथा उसके पास उपलब्ध भौतिक वस्धुओं का विशेष महत्व होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए व्यय के मदों तथा भौतिक वस्तुओं के संग्रह की स्थिति, जिनका ग्रामीण समाज में आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान है, का अध्ययन करने का प्रयास किया गया। इसके लिए अवलोकन विधि का भी आश्रय लिया गया क्योंकि बहुत से लोग अपनी वास्तविक आर्थिक स्थिति कुछ कारणों से नहीं बताते हैं। अतः उनके मकान, रहन-सहन की स्थिति, मासिक आय, उपलब्ध भौतिक सामग्री आदि के आधार पर बिभिन्न प्रश्नों के माध्यम से वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया और प्राप्त आंकड़ों तथा निष्कर्षों को सारणी ५ में दर्शाया गया है। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे-२ व्यक्ति की आय में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे वह भौतिक सुख-सुविधाओं की वस्तुओं का संग्रह करने लगता है। सारणी-५ से स्पष्ट है कि स्कूटर (मोटर साइकिल, नलकूप, पम्पिग सेट, थ्रेशर, आटा चक्की, ट्रैक्टर, ट्रक, गोबर गैस, मिनीबस (टैक्सी) टेम्पों, जीप/कार सोफा-सेट/स्टील आलमारी, टेलीविजन और बिजली के पंखे आदि केवल उच्च आयवर्ग के पास हैं, जब कि कृषि कार्यों हेतु वांछित कुछ उपकरण और वस्तुएं लगभग सभी वर्गों के कृषकों के पास उपलब्ध हैं उदाहरणार्थ बैल, हल तथा कृषि सम्बन्धी अन्य उपकरण, क्योंकि कृषि कार्यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारणी—५

उपलब्ध भौतिक सम्पत्ति

क्र०	भौतिक सम्पत्ति	विकास खण्ड देवा						विकास खण्ड बंकी					
		३०० तक सं०-६०	३००-६०० सं०-५३	६००-९०० सं०-२२	९००-१२०० सं०-१०	१२०० से अधिक सं-०५	योग सं०१५०	३०० तक सं०-५४	३००-६०० सं०-४८	६००-९०० सं०-२८	९००-१२०० सं०-१२	१२०० से अधिक सं०-८	योग सं०-१५०
१.	घरेलू जानवर (बैल, गाय, भैंस)	६० (४०.०)	५३ (३५.३)	२२ (१४.७)	१० (६.७)	५ (३.३)	१५० (१००.०)	५४ (३६०.०)	४८ (३२.०)	२८ (१८.०)	१२ (८.०)	८ (५.३)	१५० (१००.०)
२.	डनलप बैलगाड़ी	—	—	२ (१.३)	६ (४.०)	५ (३.३)	१३ (८.७)	—	१ (०.७)	४ (२.७)	५ (३.३)	७ (४.७)	१७ (११.३)
३.	घोड़ा	—	—	—	—	—	—	३ (२.०)	२ (१.३)	१ (०.७)	—	—	६ (४.०)
४.	मोटर साइकिल/स्कूटर	—	—	—	१ (०.७)	१ (०.७)	२ (१.३)	—	—	—	२ (१.३)	३ (२.०)	५ (३.३)
५.	नलकूप/पंपिंग सेट	—	—	२ (१.३)	१० (६.७)	५ (३.३)	१७ (११.३)	—	—	२ (१.३)	१२ (८.०)	८ (५.३)	२२ (१४.७)
६.	थ्रेशर	—	—	१ (०.७)	४ (२.७)	५ (३.३)	१० (६.७)	—	—	२ (१.३)	९ (६.०)	७ (४.७)	१८ (१२.०)
७.	आटा चक्की	—	—	—	—	२ (१.३)	२ (१.३)	—	—	१ (०.७)	२ (१.३)	३ (२.०)	६ (४.०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. ट्रैक्टर	—	—	—	—	४ (२.७)	४ (२.७)	—	—	—	७ (४.७)	८ (५.३)	१५ (१०.०)
९. ट्रक	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	७ (४.७)	७ (४.७)
१०. गोबर गैस	—	—	—	—	—	१ (०.७)	—	—	—	२ (१.३)	५ (३.३)	७ (४.७)
११. मिनीबस/टैक्सी/टैम्पो	—	—	—	—	१ (०.७)	१ (०.७)	—	—	—	—	३ (२.०)	३ (२.०)
१२. जीप/कार	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१ (०.७)	१ (०.७)
१३. रेडियो ट्रांजिस्टर	४८ (३२.०)	५० (३३.३)	२२ (१४.७)	१० (६.७)	५ (३.३)	१३५ (९०.०)	५० (३३.३)	४६ (३०.७)	२८ (१८.७)	१२ (८.०)	८ (५.३)	१४४ (९६.०)
१४. लाउडस्पीकर	— —	१ (०.७)	१ (०.७)	—	—	२ (१.३)	१ (०.७)	२ (१.३)	—	—	—	३ (२.०)
१५. टेलीविजन	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२ (१.३)	४ (२.७)	६ (४.०)
१६. बिजली का पंखा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२ (१.३)	५ (३.३)	७ (४.०)
१७. सोफासेट/स्टील	—	—	—	—	—	—	—	—	—	२ (१.३)	५ (३.५)	७ (४.७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सम्पादन इनके अभाव में सम्भव नहीं है। इस विषय में इतना अवश्य है कि कृषकों की आर्थिक स्थिति के अनुसार इनकी श्रेणी में अन्तर है। उच्च आय वाले कृषक अच्छी नस्ल के पशु और उपकरण रखते हैं जबकि निम्न आर्थिक स्थिति वाले निम्न श्रेणी के पशु और उपकरण रखते हैं। प्रायः यह देखा गया कि उच्च आय वर्ग के कृषकों के पास अच्छी नस्ल के बैल, भैंसें, गाएं तथा डनलप बैलगाड़ियाँ थीं जब कि मध्यम वर्गीय कृषकों के पास अपेक्षाकृत कम अच्छे नस्ल की। लघु और सीमान्त कृषकों में से अधिकांश के पास गाएं और भैंसें तथा डनलप बैलगाड़ियाँ नहीं पाई गयीं, परन्तु इनमें से जिनके पास गाय या भैंसें पाई गई वे देशी नस्ल की और दुर्बल अवस्था में पाई गयी।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विचारोपरान्त यह पाया गया कि विभिन्न आर्थिक स्थिति वाले कृषकों के पास पशुओं के असमान श्रेणी और असमान रूप सें पाये जाने का एकमात्र कारण असमान आय का होना है तथा असमान आय का मूल कारण कृषकों के पास असमान मात्रा में भूमि का उपलब्ध होना है। ग्रामीण अंचलों में आज भी भूमि का इतना अधिक महत्व है कि व्यक्ति की आय चाहे जितनी अधिक हो परन्तु यदि उसके पास अपनी भूमि न हो तो उसकी सामाजिक प्रस्थिति ग्रामीणों की दृष्टि में निम्न ही रहेगी तथा यदि किसी के पास अधिक मात्रा में भूमि उपलब्ध है तो चाहे वह निम्न जाति का ही क्यों न हो उसकी सामाजिक प्रस्थिति अपेक्षाकृत अच्छी मानी जाती है। भौतिक उपकरण यथा नलकूप, आटा-चक्की, डनलप बैलगाड़ी थ्रेशर, जीप/कार, ट्रक, ट्रैक्टर, टैक्सी, टैम्पो, बस, मिनी बस और स्कूटर/मोटर साइकिल आदि अपनी उपयोगितावादी महत्व के अतिरिक्त उच्च आर्थिक और सामाजिक प्रस्थिति के भी प्रतीक हैं जो कि प्रायः बड़े कृषकों के पास उपलब्ध हैं। बड़े कृषक अपने कृषि कार्यों के अतिरिक्त इन उपकरणों का प्रयोग अधिक आय प्राप्त करने हेतु भी करते हैं जैसे ट्रक, ट्रैक्टर ट्राली एवं जीप आदि का प्रयोग अनाधिकृत रूप से सवारी ढोने के लिए करते हैं। नलकूप, थ्रेशर, आटा-चक्की, ट्रैक्टर तथा ट्रक आदि का प्रयोग दूसरे के कृषि कार्यों हेतु किराये पर करते हैं। इस प्रकार प्रौद्योगिकी भी ग्रामीण समाज में आर्थिक असमानता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज में व्यय के मदों एवं पद्धतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्षों पूर्व आटा-चक्की, नलकूप पम्पिग सेट, ट्रैक्टर-ट्राली, ट्रक, थ्रेशर आदि का प्रयोग बहुत ही कम होता था। कृषक लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति शारीरिक श्रम द्वारा ही करते थे। परन्तु अब इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में होने लगा है। भौतिक एवं प्रौद्योगिक विकास और औद्योगीकरण के फलस्वरूप अब लोग गांवों बड़े-२ औद्योगिक नगरों में रोजी-रोटी की तलाश में जाने लगे हैं। परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में कृषक मजदूरों की कमी को पूरा करने हेतु आधुनिक उपकरणों का प्रयोग अधिकाधिक होने लगा है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भी प्रौद्योगिक उपलब्धियों के विकास और प्रयोग पर विशेषकर विद्युत एवं डीजल इंजन चालित यंत्रों पर प्रकाश डाला है जिनमें ख़ुशरों[१४], खान[१५] और जोशी[१६] मुख्य हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृषि सम्बन्धी आधुनिक उपकरणों, उपलब्ध भौतिक सम्पत्ति तथा महत्वपूर्ण उपभोक्ता वस्तुओं के सम्बन्ध में सब मिलाकर उपर्युक्त विश्लेषण का यह तात्पर्य नहीं है कि ये सब एक दूसरे के पर्याय अथवा एक हैं। अपितु वर्तमान समय में गांवों की जो वास्तविक स्थिति है, उसमें ये सभी वस्तुएं जिनकी स्थिति परिवर्तनशील है, एक दूसरे से जटिलतम रूप से सम्बन्धित है। इन्हें एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इनको अलग-अलग करके ग्रामीण सामाजिक संरचना के सम्बन्ध में इनके महत्व और उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त कर पाना एक दुष्कर कार्य है। अस्तु इन सभी पर संयुक्त रूप से विचार किया गया और यह पाया गया कि जहां तक आधुनिक विकसित कृषि से सम्बन्धित उपकरणों और मशीनों आदि का प्रश्न है, उनका महत्व दोनों क्षेत्रों में है अर्थात वे मुख्य रूप से कृषक समाज में आय एवं उत्पादन बढ़ाने में प्रयुक्त होते हैं और साथ ही उच्च आर्थिक प्रस्थिति के भी द्योतक हैं। प्रौद्योगिक विकास के उपरान्त ग्रामीण समाज में उपर्युक्त वर्णित वस्तुओं और उनमें भी मुख्य रूप से कृषि सम्बन्धी यंत्रों के प्रचलन में वृद्धि एक संयोग मात्र नहीं है वरन् सभी वर्गों के कृषकों द्वारा इनको प्रयोग में लाने के कारण हुआ है। इस विकसित प्रौद्योगिकी के प्रचुर मात्रा में प्रयोग के परिणामस्वरूप ही प्रति एकड़ उत्पादन में इतनी अधिक वृद्धि हुई है कि देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है।[17] अध्ययन क्षेत्र में सामान्य अवलोकन एवं उत्तरदाताओं से वार्ता करने पर यह स्पष्ट रूप से देखा गया कि प्रौद्योगिक विकास और भूमि सुधार व्यवस्था के परिणाम स्वरूप कृषकों ने अपने कृषि कार्यों में पर्याप्त रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है। परिणाम स्वरूप देश के कृषकों की आय बढ़ी है, उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है साथ ही प्रति व्यक्ति औसत आय में भी बृद्धि हुई है।

उपर्युक्त विवेचन एवं विश्लेषण से ग्रामीण संरचना एवं आर्थिक विकास में स्पष्ट सह सम्बन्ध स्थापित होता है। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि उच्च स्तरीय आर्थिक विकास अन्ततः ठोस एवं न्यायपूर्ण कृषक संरचना का ही परिणाम है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि किसी भी देश का आर्थिक विकास उचित ढंग से तभी हो सकता है जब वहां की कृषक सामाजिक व्यवस्था स्वस्थ एवं न्यायपूर्ण होगी। यह भी स्पष्ट है कि प्रौद्योगिक अन्वेषण ग्रामीण सामाजिक एवं आर्थिक संरचना को परिवर्तित करने में अर्थात् ग्रामीण आर्थिक एवं सामाजिक संरचना को उन्नत बनाने के कार्यक्रम के एक पक्ष के रूप में ही सफल हो सकता है।

निष्कर्ष

भूमि सुधार कानूनों, विकसित कृषि प्रौद्योगिकी एवं औद्योगीकरण का सबसे अधिक प्रभाव ग्रामीण आर्थिक संरचना पर पड़ा है जिससे परम्परागत भारतीय ग्रामीण समाज विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं भूमि सुधार कानूनो के परिणामस्वरूप भारतीय ग्रामीण समाज की आर्थिक संरचना के विभिन्न पक्ष यथा व्यवसाय, भूमि के आधिपत्य का स्वरूप, आय, रहन-सहन का स्तर, भौतिक उपकरणों एवं सम्पत्तियों की उपलब्धि आदि किस प्रकार और किस सीमा तक प्रभावित हुए हैं तथा प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् हैं :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—यद्यपि परम्परागत भारतीय गांवों में आर्थिक संरचना कुछ सीमा तक शिल्पकला, कुटीर उद्योगों और जजमानी प्रथा पर निर्भर थी, परन्तु वर्तमान समय में कृषि सभी ग्रामवासियों का मुख्य व्यवसाय हो गया है। औद्योगीकरण और भूमि सुधार कानूनों के लागू होने के पूर्व जो लोग कुटीर उद्योगों तथा जजमानी में संलग्न थे, जैसे बढ़ई, लोहार, कुम्भकार, जुलाहा, घरिकार, धुनिया, नाई, धोबी, कहाँर आदि, अब उन्होंने कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपना लिया है। इन लोगों ने या तो अपने परम्परागत व्यवसाय को पूर्णरूपेण छोड़ दिया है अथवा उसे अंशकालिक रूप में ही करते हैं। इस प्रकार अब ग्रामीण अंचलों में मध्यम एवं निम्न वर्गों में गतिशीलता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी है।

२—जहां तक कृषक समाज में आर्थिक प्रस्थिति का प्रश्न है उसके निर्धारण में भूमि की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिसके पास जितनी अधिक भूमि है उसकी आर्थिक प्रस्थिति उतनी ही उच्च मानी जाती है। वर्तमान समय में निम्न एवं मध्यम सभी जातियों के पास कुछ न कुछ भूमि अवश्य है। यह भूमि उन्हें शासकीय व्यवस्था, यथा अतिरिक्त भूमि के आवंटन, जमीन्दारी उन्मूलन अथवा क्रय द्वारा प्राप्त हुई है। प्रौद्योगिक विकास एवं औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण अंचलों से निम्न और मध्यम जातियों के गरीब, उच्च जातियों के भूमिहीन और व्यावसायिक जातियों के लोग बड़े-बड़े नगरों में वृत्ति हेतु जाने लगे हैं और वहां पर कम समय में ही अधिक धन कमाने लगे हैं तथा उससे उन्होंने अपने गांवों में कृषि हेतु जमीन क्रय कर लिया है, फलस्वरूप उनकी आर्थिक प्रस्थिति पहले से अच्छी हो गयी है।

३—प्रौद्योगिक विकास तथा नवीन कृषि प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप सभी वर्गों के कृषकों की आय में वृद्धि हुई है जिसका परिणाम यह हुआ है कि अधिकांश परिवार जो पहले गरीबी की सीमा रेखा के नीचे जीवन निर्वाह करते थे, उनमें से अधिकांश परिवार इस सीमा रेखा से ऊपर आ गए हैं। अधिकांश ग्रामीणों का जीवन स्तर उनके पिता की तुलना में उच्च हुआ है, क्योंकि यातायात और सिंचाई के साधनों तथा उन्नत बीजों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ा है। अब अधिकांश कृषक व्यापारिक महत्व की फसलें उगाने लगे हैं।

४—कृषक समाज में नवीन प्रौद्योगिकी के आविष्कार और प्रयोग के बढ़ने के साथ ही छोटे और बड़े कृषकों की आपसी दूरी में वृद्धि हुई है तथा पूँजीवादी किसानों के एक नए वर्ग का उदय हो रहा है। इसका कारण यह है कि आधुनिक प्रौद्योगिक एवं कृषि उपकरणों के महंगे होने के कारण बड़े कृषक ही उसे सरलता तथा शीघ्रता से प्राप्त कर पाते हैं, साथ ही अधिक भूमि होने के कारण इसके माध्यम से अधिकाधिक उत्पादन कर उसका लाभ उठाते हैं। इसके विपरीत लघु एवं सीमान्त कृषकों के पास पूँजी तथा भूमि दोनों का ही अभाव होता है, जिसके कारण वे आधुनिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रौद्योगिकी और कृषि उपकरणों को शीघ्र प्राप्त करने में असफल रहते हैं परन्तु यदि किसी तरह शासकीय ऋण से वे इन्हें प्राप्त भी कर लेते हैं तो उनके लिए इस ऋण (व्याज और मूलधन) का भुगतान असम्भव सा हो जाता है और कभी-कभी उनकी सम्पत्ति की नीलामी शासकीय ऋण की वसूली हेतु कर ली जाती है। इस प्रकार प्रौद्योगिकी के आविष्कार और प्रसार के परिणामस्वरूप आज के प्रगतिशील युग में नगरों की ही भांति ग्रामीण अंचलों में भी आर्थिक असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है।

५—प्रौद्योगिकी के विकास के परिणामस्वरूप औद्योगीकरण तथा नगरीकरण का शीघ्रता से विकास हुआ है जिसका सीधा और महत्वपूर्ण प्रभाव कृषक समाज पर यह पड़ा है कि ग्रामीण अंचलों में कृषि कार्य करने वाले श्रमिक अब नगरों में रोजगार और मजदूरी हेतु अधिकतर जाने लगे हैं, जिसके कारण ग्रामीण अंचलों में खेतिहर मजदूरों की कमी की जटिल समस्या उत्पन्न हो गयी है। परिणामस्वरूप जो कृषक प्रौद्योगिक साधनों को भी क्रय करने की स्थिति में नहीं होते वे अपनी भूमि बटाई पर दे देते हैं जिससे उनकी आर्थिक स्थिति तो प्रभावित होती ही है परन्तु साथ ही इसका कृषि उत्पादन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

६—ग्रामीण सामाजिक जीवन में कृषकों द्वारा भौतिक सुख-सुविधाओं हेतु भौतिक उपलब्धियों का संग्रह उनके आर्थिक स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिस परिवार के पास जितनी अधिक भौतिक सामग्री एवं साधन उपलब्ध हों, उसकी आर्थिक प्रस्थिति उतनी ही अधिक उच्च समझी जाती है। समंक संकलन के समय यह देखा गया कि प्रायः भूतपूर्व जमीन्दारों के पास मूल्यवान प्रौद्योगिकी जैसे, नलकूप, थ्रेशर, आटा चक्की, ट्रैक्टर-ट्राली, डनलप बैलगाड़ी, जीप/कार, टेलीविजन, स्कूटर/मोटर साइकिल तथा उन्नत नस्ल के पशु उपलब्ध हैं जबकि लघु और सीमान्त कृषकों के पास इन साधनों का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार भौतिक उपलब्धियां भी ग्रामीण समाज में असमानता के महत्वपूर्ण आयाम हैं।

७—बड़े कृषक अपने उपलब्ध कृषि प्रौद्योगिकी जैसे, ट्यूबवेल, आटा चक्की, ट्रक, ट्रैक्टर-ट्राली, थ्रेशर, पम्पिग-सेट, आदि का प्रयोग अपनी आय में वृद्धि हेतु व्यापारिक उद्देश्य से करते हैं।

८—वस्तु विनमय के स्थान पर अब ग्रामीण अंचलों में पूर्णरूपेण मुद्रा विनिमय का प्रचलन हो गया है। यहां तक कि अब जजमानी करने वाली सेवक जातियां भी अपनी सेवाओं के बदले में वस्तुओं के स्थान पर नगद रुपये लेना ही श्रेयस्कर समझती हैं।

९—अभी भी दोनों विकास खण्डों में मिलाकर ३८.० प्रतिशत परिवार गरीबी की सीमा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं जिसकी कुल आय रु० ३००/- प्रतिमाह से अधिक नहीं है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि इसमें केवल निम्न जातियों के ही परिवार नहीं हैं अपितु उच्च और मध्यम जातियों के परिवार भी सम्मिलित हैं।

संदर्भ–सूची

बैबलर १९६४ इनसाइक्लोपीडिया आफ इकोनामी (सं० ५) बीजपेट्री,

बोरोनिएक, ए० १९६१ बिजनेस आर्गनाइजेशन एण्ड ट्रान्सफर आफ टेक्नोलोजी इक्सपीरियंस आफ यू० एस० एस० आर० एण्ड प्लानिंग फार एडवांस स्किल्स टेक्नोलोजी, यूनीडा

मार्क्स, कार्ल १९५४ कैपिटल (भाग प्रथम) : मास्को : फारेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस

लौत्फ, ए० १९३५ ए हिस्ट्री आफ साइंस टेक्नोलोजी एण्ड फिलासफी इन एट्टीन्थ सेन्चुरी : लन्दन : जार्ज ऐलन एण्ड अनविन लि०

पाठक, एस० एन० १९८१ "लैण्ड रिफार्म्स एण्ड चेन्ज इन रूरल सोसाइटी" अप्रकाशित पी– एच० डी० थीसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

नील, डब्लू० सी० १९६२ इकोनामिक चेन्ज इन रूरल इण्डिया (लैण्ड टेन्योर एण्ड रिफार्म्स इन उत्तर प्रदेश : १८००–१९५५) लन्दन एण्ड न्यू हर्वल : येल यूनीवर्सिटी प्रेस; एस० सी० जैन, इकोनामिक इन्स्टीट्यूट आफ रूरल अपलिफ्ट : बम्बई : पापुलर प्रकाशन, १९६६, एन० भाटिया, इण्डियाज डीपनिंग इकोनामिक क्राइसिस, दिल्ली, बी० चन्द एण्ड कं० १९७४।

बिते, आन्द्रे १९७२ इनइक्वलिटी एण्ड सोशल चेन्ज, दिल्ली : आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ २०-२१

हीरामनी. ए० बी० १९७७ सोशल चेन्ज इन रूरल इण्डिया, दिल्ली, बी० आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन, पृष्ठ १७४।

पाठक, एस० एन० "लैण्ड रिफार्मस एण्ड चेन्ज इन रूरल सोसाइटी", पूर्व उल्लिखित पृष्ठ ८९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश १९८३ सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, उत्तर प्रदेश शासन प्रकाशन पृष्ठ १३३-१३४।

1981 Thapan has after a tedious calculation established that on the basis of the consumer price index in 1947 and taking average for the first few months of 1980, the rupee to day is worth only 19 paise (N. Thapan, 'Crushing Burden of Inflation' in The Pioneer, Lucknow City. Edition, Jan. 30, P. 7)

1981 A Survey Report published in The Pioneer, Lucknow City Edition, January 19, P. 7

वारनिर, डी० १९५५ लैण्ड रिफार्म्स एण्ड इकोनामिक डेवलपमेन्ट केरियो: नेशनल बैंक आफ इजिप्ट; जी० डी० अग्रवाल, एग्रेरिएन रिफार्म्स एण्ड एग्रीकल्चरल रीकान्सट्रक्शन, इंडियन जरनल आफ एग्रीकलचरल इकोनामिक्स, भाग-४, नं०-२, १९४९; एम० बान्दोध्योपाध्याय एण्ड एम० जी० घोष, रोल आफ एग्रेरिएन रिफार्म इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेन्ट इन मैक्सिको, ताइवान एण्ड इण्डिया-ए कम्परेटिव स्टडी, इण्डियन जरनल आफ एग्रीकल्चरल इकोनामिक्स भाग-२२ नं० ४, १९६७।

खुशरो, ए० एम० १९६९ एग्रीकल्चरल ट्रान्सफारमेशन इन इण्डिया, बम्बई : इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक इन्टरप्राइज,

खान, ए० आर० १९६८ साइन्टफिक फार्मिग इन इण्डिया, दिल्ली : ओरियन्ट लागमैन्स

जोशी, पी० सी० १९६९ एग्रेरियन स्ट्रक्चर एण्ड एग्रीकल्चर, दी सिटीजन, भाग-प्रथम, नं० ५

इस विषय पर विस्तृत सैद्धान्तिक विवेचन निम्न अध्ययनों में देखा जा सकता है :—

रोजर्स ई० एम०, डिफ्यूजन आफ इनोवेशन, ग्लैनको, दी फ्री प्रेस : १९४६; एस० पी० बोस, पीजेन्ट वैलूज एण्ड इनोवेशन इन इण्डिया, अमेरिकन जरनल आफ सोशियोलोजी, ६७ : १९६२ आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी स्तंभ

शिक्षा-नवराष्ट्र-एवं नयी शिक्षा नीति

उमाशंकर मिश्र एवं
राजकुमारी बाजपेई

'शिक्षा' की अवधारणा एक अत्यंत जटिल अवधारणा है। शिक्षा की परिभाषायें सामयिक संदर्भ से जुड़ी होती हैं एवं विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों में इनकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न स्वरूपों में होती है। यदि किसी एक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में समय-समय पर बदलती हुयी शिक्षा की परिभाषाओं का क्रमानुसार अनुसरण किया जाये तो उस समाज में सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया के संबन्ध में हमारी जानकारी एवं समझ में एक नया आयाम जुड़ता हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में शिक्षा की अवधारणा सामाजिक-संदर्भों से इतनी घनिष्ट रूप से संबद्ध है कि सामाजिक परिवर्तनों का प्रवाह इसे समय-समय पर नई दिशायें देता रहता है। सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन इसे नये अर्थों में प्रस्तुत करते हैं।

स्मेलसर (१९५९) ने शिक्षा के चार प्रमुख प्रकार्यात्मक पक्षों की चर्चा की है। उनके अनुसार, लक्ष्य पूर्ति, समायोजन, समाकलन तथा परम्पराओं की रक्षा शिक्षा के चार प्रमुख प्रकार्यात्मक पक्ष माने जा सकते हैं। पार्सन्स (१९५४) ने भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुये कहा है कि किसी देश की शिक्षा व्यवस्था का क्रमिक विकास उसके सामाजिक परिवर्तनों का लेखा जोखा प्रस्तुत करता है। सामान्यतया, 'शिक्षा-व्यवस्था' शब्द के प्रयोग में कई बातों का समावेश हो जाता है। व्यवस्था की बात हम औपचारिक शिक्षा के संबन्ध में ही करते हैं। जैसे, किसी शिक्षा व्यवस्था में स्कूलों-कालेजों का प्रबन्ध व्यक्तियों, ट्रस्टों अथवा विशिष्ट संघों-संगठनों के नियंत्रण में है अथवा राजकीय-शासकीय नियंत्रण में। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि व्यवस्था शब्द का प्रयोग समाज में शिक्षा के दिशा निर्देशन एवं नियंत्रण के उत्तरदायित्व के

उमाशंकर मिश्र, प्रवक्ता, मानव विज्ञान, विद्यांत कॉलेज, लखनऊ।
राजकुमारी बाजपेई, शोधछात्रा, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थों में किया जाता है। चूंकि यह प्रश्न वृहद् सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ है अतः सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन आवश्यक हो जाते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति में समाज में विज्ञ एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों के निर्देशन में शिक्षा व्यवस्था के उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलते हैं। परम ज्ञानी ऋषियों एवं त्यागी मुनियों के आश्रमों में गुरू-शिष्य परंपरा में शिक्षण हमारे देश की अत्यंत प्राचीन परम्परा रही है। संभवतः प्राचीन यूनान में भी अरस्तू, प्लेटो तथा सुकरात जैसे प्रतिष्ठित विज्ञ व्यक्तियों की छत्र-छाया में शिष्यों का जमाव होता था।

एक प्रकार की गुरू-शिष्य परम्परा वहाँ भी प्रचलित थी। ये विज्ञ जन अपने चिंतन एवं अनुभवों के द्वारा अर्जित ज्ञान को शिष्यों के माध्यम से प्रसारित करते थे। इन ऋषियों एवं ज्ञानी व्यक्तियों के विचारों ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को व्यापक रूप से प्रभावित किया। मनु के द्वारा निर्धारित व्यवस्था ने तत्कालीन हिन्दू समाज को मौलिक स्वरूप प्रदान किया। किंतु कालांतर में काफी समय तक राजाओं रजवाड़ों की दान वृत्ति की छाया में उनकी दया के सहारे शिक्षा व्यवस्था चलती रही। ब्रिटिश शासन काल के सामंती युग में जमीन्दारों एवम् ताल्लुकदारों का एक नया प्रतिष्ठित वर्ग समाज में उत्पन्न हुआ जिसे तत्कालीन शासकों का प्रश्रय प्राप्त था।

अपनी प्रभुता के प्रदर्शन एवं सम्पन्नता को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से स्कूलों, कॉलेजों एवं पाठशालाओं आदि की स्थापना करके प्रत्यक्ष रूप में ये सामंती चाटुकार अपनी उदारता, दान वृत्ति एवं सत्कार्य की भावना का प्रदर्शन करते थे किंतु परोक्ष रूप से अपने वैभव एवं प्रभुता को प्रतिष्ठित करना ही इनका उद्देश्य होता था। शिक्षा की गुणवत्ता अथवा उद्देश्यों आदि की ओर से ये सर्वथा विमुख होते थे। किंतु ब्रिटिश शासन काल में सर्वप्रथम राजकीय स्तर पर शिक्षा के स्वरूप के संबन्ध में नीति निर्धारित करने के उद्देश्य से राजकीय शिक्षा विभाग की स्थापना हुयी।

ब्रिटिश शासकों ने इस बात का जायजा लिया कि उन्हें अपने शासन की नींव को सुदृढ़ रखने एवं अपने प्रशासन के संचालन के लिये किस प्रकार की जानकारी वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है। तदनुसार उन्होंने अपने शिक्षा विभागों के माध्यम से स्कूलों–कॉलेजों में शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित किया। इन विभागों के द्वारा नियंत्रित विद्यालयों में शासन द्वारा अनुमोदित पाठ्यक्रमों को लागू किया गया। दूसरी ओर मंदिरों-मठों एवं मस्जिदों के द्वारा संचालित धार्मिक शिक्षा वाली पाठशालाओं एवं मकतबों में चलाये जा रहे पाठ्यक्रमों आदि को अपने नियंत्रण से स्वतंत्र रखते हुये धार्मिक मामलों में शासन के हस्तक्षेप न करने की उदारता का परिचय दिया। इस प्रकार से एक दोहरी शिक्षा नीति की स्थापना हुयी। धार्मिक शिक्षा के नाम पर केवल उर्दू-अरबी-फारसी एवं संस्कृत भाषा की शिक्षा देने वाले विद्यालयों एवं पाठशालाओं का एक वर्ग तथा शासन के शिक्षा विभागों द्वारा नियंत्रित अंग्रेजी भाषा की वरीयता के आधार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालित पाठ्यक्रमों को चलाने वाले विद्यालयों एवं पाठशालाओं का दूसरा वर्ग। जहाँ एक ओर धार्मिक शिक्षा का आधार परंपरागत मूल्य थे वहीं अंग्रेजी भाषा की वरीयता पर आधारित शिक्षा का आधार विशुद्ध उपयोगितावादी एवं नवीन राजनैतिक सामाजिक आवश्यकतायें थीं। कालांतर में शासकीय प्रश्रय में पालित-पोषित विद्यालयों को शासकीय अनुदानों के बंधनों से जकड़ कर वांछित उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम बनाया गया। किंतु इस व्यवस्था के संचालन के लिये जमीन्दारों, ताल्लुकेदारों तथा राजे रजवाड़ों का तंत्र ही अधिक सुयोग्य एवं श्रेयस्कार साबित हुआ क्योंकि यह शासन द्वारा सृजित एक ऐसा तंत्र था जिसके माध्यम से मुट्ठी भर ब्रिटिश लोग करोड़ों देशवासियों पर अपना प्रभुत्व कायम किये हुये थे। ये सत्ता के दलाल ब्रिटिश शासकों की नीतियों के कार्यान्वयन के प्रमुख माध्यम थे। शासन की इच्छाओं की पूर्ति करना तथा जन साधारण पर अपनी प्रभुता बनाये रखना इनका प्रमुख उद्देश्य था। इसी क्रम में जन साधारण का आर्थिक शोषण कर अपने वैभव में वृद्धि करते रहना इनकी कार्य प्रणाली थी। स्पष्ट है, इन सामंती सत्ता के दलालों की प्रबंध व्यवस्था में 'शिक्षा' की उपेक्षा होती रही।

देश को स्वतन्त्र हुये चालीस वर्षों का समय गुजर चुका है—दो पीढ़ियों का समय। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरांत एक संविधान के तहत प्रशासन को चलाने की व्यवस्था की गयी जिसकी रचना जन आकांक्षाओं एवं राज्य के कल्याणकारी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये की गयी। कल्याणकारी राज्य की स्थापना का विचार ही एक प्रकार से देश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक स्थितियों में आमूल परिवर्तन का केन्द्र बिन्दु था। आवश्यकता इस बात की थी कि इसी केन्द्रीय विचार तत्व के आधीन अन्य सुनियोजित परिवर्तनों की श्रृंखला में शिक्षा व्यवस्था, शिक्षण प्रणाली एवं शिक्षा तत्व आदि में भी तदनुरूप परिवर्तनों को प्रभावी रूप से लाने का कार्यक्रम निर्धारित किया जाता। संविधान में अज्ञानता के अंधकार से लोगों को मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से सभी के लिये अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था राज्य का प्रमुख कर्तव्य माना गया। निरक्षरता को अभिशाप की संज्ञा दी गयी और इसे दूर करने के कारगर उपाय खोजे गये—प्रौढ़ शिक्षा का उपाय उनमें से एक है। किन्तु बाकी सभी कुछ लगभग पहले जैसा ही चलता रहा। ब्रिटिश शासन काल की भाँति। हां, एक परिवर्तन अवश्य दिखलाई देता है। अब राजा, महाराजाओं, जमींदारों तथा तालुकेदारों का युग नहीं रहा और न ही दान-वृत्ति एवं शिक्षा के समान सत्कार्य अथवा पुण्य आदि के मूल्य ही रह गये हैं। ऐसे में सरस्वती के इन मंदिरों का भार किस पर जाये—अथवा यह उत्तरदायित्व अब किसका हो, इस सम्बन्ध में किसी स्तर पर कोई सुनियोजित विचार नहीं किया जा सका। किन्तु प्रकृति को रिक्तता बर्दाश्त नहीं होती तथा जैसे जंगलों में वृक्षों एवं झाड़ियों का स्वतन्त्रता से विकास थोड़े ही समय में रिक्तता को भर देता है उसी प्रकार के राजनैतिक सामाजिक उथल-पुथल के बीच निहित स्वार्थों की उन्मुक्त झाड़ियों ने शिक्षा जगत की इस रिक्तता को भरना शुरू कर दिया। कल्याणकारी राज्य की स्थापना के कर्णधारों के पास रोजी-रोटी, खेती-बाड़ी, कल-कारखानों आदि से सम्बन्धित प्राथमिक स्तर की वरीयता वाली इतनी अधिक समस्यायें थीं कि इस ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी को चिन्ता करने का अवकाश ही न मिल सका। चूंकि देश की स्वतन्त्रता के उपरांत अर्थनीति-राजनीति की अनुगामिनी बन गयी, अतः जन-जीवन के सभी पक्षों में राजनीति की महत्ता एवं कार्य के सभी क्षेत्रों में राजनीति की प्रेरणा का झलकना अवश्यंभावी था। फलतः ब्रिटिश कालीन सामंती सत्ता के दलालों का स्थान प्रजातांत्रिक प्रणाली में सत्ता के निकट रहने वाले तथा राजनैतिक प्रभुत्व वाली पार्टियों के महंतों ने ग्रहण करना शुरू किया। राजनीति के सहारे प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों ने शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्ध पर अपनी पकड़ मजबूत की। यह शैक्षणिक इजारेदारी उनके निहित राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति का सशक्त माध्यम है। वोट की राजनीति इस इजारेदारी का मेरुदण्ड है। तथा कल्याणकारी राज्य के द्वारा शिक्षा के कल्याणार्थ आवंटित धनराशि इस इजारेदारी की धमनियों में नवीन रक्त संचार करती रहती है। कौन इसकी चिन्ता करे कि 'शिक्षा' का क्या हो रहा है ? जिनके लिये इतनी बड़ी व्यवस्था चलायी जा रही है आखिर वे क्या पा रहे हैं ? राजनैतिक महत्वाकांक्षा एवं आर्थिक लिप्सा से ओत-प्रोत शिकंजे में जकड़ी हुयी शिक्षा व्यवस्था में केवल व्यवस्था मात्र ही देखने को मिलती है—शिक्षा का अभाव होता जा रहा है। यहीं पर शिक्षा की पहचान स्थापित करने की आवश्यकता महसूस होती है। एक बार फिर यह प्रश्न उभर कर सामने आता है कि आखिर शिक्षा है क्या ? कहीं ऐसा तो नहीं कि इन तेजी से बदलते संदर्भों में हम 'शिक्षा' की कोई घिसी-पिटी पुरानी पड़ गई पहचान लिये बैठे हैं और जो वास्तविक स्वरूप उभर रहा है—शिक्षा के उस स्वरूप को हम पहचान ही न पा रहे हों ? आज एक ओर तो वर्तमान पीढ़ी के किसी आयु विशेष के शिशु की जानकारी का क्षेत्र दो तीन पीढ़ियों पूर्व के उसी आयु वर्ग के शिशुओं की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है। दूसरी ओर हम शिक्षा के तेजी से गिरते हुए स्तर की बात भी करते हैं। साथ ही राष्ट्रीय चरित्र के क्षेत्र में हम जिस अधोगति को प्राप्त कर चुके हैं उसे हम राष्ट्रीयता के अभाव की स्थिति से जोड़ते हैं। एक व्यापक स्तर पर शिक्षा व्यवस्था के चलने तथा अब पहले की अपेक्षा काफी अधिक परिमाण में अर्थ-शक्ति प्रदान किये जाने के बावजूद भी ऐसी स्थिति क्यों है ? निश्चय ही हमारे 'शिक्षा' बोध में कहीं कुछ विसंगतियां हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि परिवर्तित संदर्भों में हम शिक्षा की अपनी पहचान की पुनर्स्थापना करें।

संविधान में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा एवं साक्षरता को एक राष्ट्रीय कर्तव्य के रूप में प्रतिष्ठित करने के पीछे संभवतः यह विचार ही प्रबल रहा है कि साक्षरता ही शिक्षा का मूल आधार है। इस संदर्भ में अनाक्षर समाजों-संस्कृतियों की ओर ध्यान देकर हम अपने 'शिक्षा' बोध को संभवतः अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। अनाक्षर समाजों में मौखिक परम्पराओं के माध्यम से नयी पीढ़ी को अपनी संस्कृति से परिचित कराने की एक स्वस्थ परम्परा प्रचलित है। नयी पीढ़ी के समाजीकरण का कार्य अनौपचारिक रूप से संपादित होता है। किन्तु साक्षर समाजों में ऐसा संभव नहीं हो पाता। इसीलिये शिक्षण संस्थाओं का समावेश आवश्यक हो जाता है। किसी भी शिक्षा व्यवस्था में नई पीढ़ी के समुचित समाजीकरण एवं समाज में प्रचलित मानदण्डों एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप व्यक्तित्व का निर्माण व्यवस्था का प्राथमिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तरदायित्व होना चाहिये। समाज एवं संस्कृति के क्षेत्र में परिवर्तन की सतत् प्रक्रिया के चलते रहने के कारण प्रत्येक नई पीढ़ी का आगमन किंचित परिवर्तित परिवेश में ही होता है। यह शिक्षा व्यवस्था का ही उत्तरदायित्व होना चाहिये कि वह नई पीढ़ी को परिवर्तित स्थितियों के अनुरूप ढाल सके।

संभवतः साक्षरता के अभ्युदय के उपरांत ही राजनैतिक व्यवस्था के क्षेत्र में प्रजातन्त्र प्रतिष्ठित हो पाया। प्रारम्भ से ही प्रजातन्त्र साक्षर समाजों से संबद्ध रहा है। साक्षरता के अभ्युदय के साथ ही प्रत्येक समाज में साक्षरों एवं निरक्षरों की द्वैधता की स्थिति ने जन्म लिया। अनाक्षर समाजों में ऐसी स्थिति न होने के कारण सभी व्यक्तियों की सम्पूर्ण संस्कृति में एक समान भागीदारी होती है जबकि साक्षर समाजों मे निरक्षरों की तुलना में साक्षरों की पहुंच एवं पकड़ तथा व्यक्तित्व के विकास के अवसर कहीं अधिक हो जाते हैं। अतः सम्पूर्ण साक्षरता की स्थिति न आने तक यह सामाजिक विषमता की स्थिति किसी न किसी सीमा तक बनी रहती है। वस्तुतः सभ्य साक्षर समाजों में भी व्यक्ति के समाजीकरण-संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में मौखिक परम्पराओं का महत्व होता है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था में औपचारिक शिक्षा पूर्ण रूप से अनौपचारिक-मौखिक परम्पराओं का विकल्प नहीं हो सकती। मार्गरेट मीड (१९४३) ने इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य उद्घाटित किया। जनजातीय अनाक्षर एवं सभ्य साक्षर समाजों–संस्कृतियों की बात करते हुए उन्होंने कहा कि जनजातियों में अनौपचारिक शिक्षा के एकाधिकार की स्थिति में शिक्षण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शिशुओं एवं उनके माता पिता के मध्य भावनात्मक तादात्म्य बना रहता है जब कि सभ्य साक्षर समाजों में इनके मध्य भावनात्मक एवं वैचारिक स्तर पर विग्रह उत्पन्न होते देखे जाते हैं। अतः अनौपचारिक शिक्षण माध्यमों की स्थिति के साक्षर समाजों में गौण होते हुए भी इस बात के लिए सतर्क रहने की आवश्यकता होती है कि अनौपचारिक शिक्षण माध्यमों की इतनी अवहेलना न हो जाये जिससे सामाजिक विघटन एवं सांस्कृतिक मूल्यों की अवमानना की स्थिति जन्म ले। ऐसा तभी संभव है जब कि शिक्षा को केवल भारत सरकार—अथवा प्रांतीय सरकार अथवा दोनों सरकारों के शिक्षा विभागों का ही उत्तरदायित्व न मानते हुए एक ऐसी सामाजिक संस्था के रूप में चलने वाली प्रक्रिया माना जाये जो कि सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन अन्य सभी महत्व-पूर्ण पक्षों—यथा परिवार, सामाजिक संस्तरण व्यवस्था, आर्थिक संगठन एवं धर्म से सम्बद्ध प्रक्रिया हो। शिक्षा एक सामुदायिक दायित्व के रूप में स्वीकार की जाये। ब्रिटिश काल में विदेशी शासकों द्वारा औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने स्वार्थों के अनुरूप जो भी प्रयोग किये गये तथा औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को जो भी स्वरूप प्रदान किया गया उससे देश को लाभ भले ही न हुआ हो मगर इतनी हानि भी नहीं हो सकी कि देश रसातल में चला जाता। इसी ब्रिटिश शासन काल में निरंतर एक के बाद एक ऐसे सपूतों ने जन्म लिया जिनकी कीर्तियां भारतीय इतिहास में अपनी अभिन्न छाप छोड़ गयी हैं। इसी शासन काल में राष्ट्रीयता की भावना का जो उदात्त स्वरूप देखने को मिला उसे भुलाया नहीं जा सकता। विदेशी फार्मूले से गढ़ी गयी औपचारिक शिक्षा के अवसर कितने लोगों को मिल पाते थे इसका एहसास इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथ्य से हो जाता है कि देश के स्वतन्त्र होने के समय कुल पन्द्रह प्रतिशत साक्षरता थी। फिर भी सामान्य नागरिक अपने कर्तव्यों के प्रति कहीं अधिक जागरूक था। अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत से कहीं अधिक घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। परिवार-पड़ोस-ग्राम-समुदाय के संदर्भों से जुड़ा व्यक्ति अपने सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों की अवमानना करते हुए हिचकता था। लोगों के धार्मिक-विश्वासों के संदर्भ उनमें नैतिकता-अनैतिकता के बोध को बनाये रखते थे। पारिवारिक संदर्भ व्यक्तित्व निर्माण की महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए सामाजिक नियंत्रण के सशक्त माध्यम थे। वास्तव में इन्हीं सामाजिक संस्थाओं की अवहेलना का दुष्प्रभाव आज हमारे सामने है। अपने शिशुओं को मंहगी से मंहगी शिक्षा संस्थाओं में प्रवेशित करके तथा उनके लिये सभी प्रकार की भौतिक सुख सुविधाओं को जुटाकर हम अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं। अपने स्वयं के व्यवहारों को परिमार्जित न करते हुये शिशुओं से उन आदर्शों की अपेक्षा नहीं की जा सकती जो हम स्वयं न प्रस्तुत कर सकें। इन आदर्शों की स्थापना पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से नहीं हो सकती। आज नैतिक अवमूल्यन की बात उठते ही शिक्षाविदों के सुझाव आने लगते हैं कि नैतिक शिक्षा को पाठ्य क्रमों में सम्मिलित करना चाहिये। राष्ट्रीय एकता की भावना की बात करते ही पाठ्यक्रमों में त्रिभाषा फार्मूले की चर्चा होने लगती है। देश प्रेम जागृत करने के लिये भी शायद किसी पाठ्यक्रम की तैयारी की जा रही हो। वास्तविकता यह है कि प्रत्येक परिवार-प्रत्येक व्यक्ति का जो एक अलिखित उत्तरदायित्व था, जो अनौपचारिक शिक्षा का प्रमुख माध्यम था, उसकी अवहेलना इस सीमा तक हो चुकी है कि प्रत्येक स्थिति में पाठ्यक्रमों को और अधिक बोझिल बनाने और इस प्रकार से औपचारिक शिक्षा की सार्थकता को नष्ट करने की ओर ही हमारा ध्यान निरंतर आकर्षित होता जा रहा है। फलतः स्वतन्त्रता के चालीस वर्षों में भी हम ऐसे नागरिकों का निर्माण नहीं कर पा रहे हैं जिन्हें आदर्श नागरिक कहा जा सके। किसी भी प्रजातांत्रिक प्रणाली के आदर्श रूप में कार्य करने के लिए यह आवश्यक दशा है।

सन् १९४५ में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद के विश्व का इतिहास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। जहां एक ओर योरोपीय देशों एवं अमेरिका के मध्य नये शक्ति समीकरणों का अभ्युदय हुआ वहीं दूसरी ओर अनेक एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में स्वराज्य की स्थिति का आगमन भी हुआ। स्वयंभू राष्ट्रों के रूप में उनका नवीन अनुभव ही उन्हें नव-राष्ट्रों की श्रेणी में लाता है। ये सभी राष्ट्र किसी न किसी योरोपीय देश के उपनिवेशों के रूप में थे तथा अपने पाश्चात्य शासकों से लम्बे समय तक संघर्ष के परिणामस्वरूप उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता हासिल की थी। सभी नव राष्ट्रों का यह समान अनुभव उनकी समस्याओं में भी समानता के लिए उत्तरदायी है। आंचलिक विभिन्नताओं और भाषा-संस्कृति एवं प्रजातीय अंतरों के बावजूद उनके औपनिवेशिक अतीत एवं संघर्ष के द्वारा अर्जित स्वतन्त्रता की पृष्ठभूमि व्यापक स्तर पर अध्ययन की दृष्टि से उन्हें एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में देखने के लिये प्रेरित करती है।

किसी न किसी सीमा तक, सभी नवोदित राष्ट्रों के राष्ट्रनायकों ने गत तीन चार दशकों के दौरान अपने अपने देशों में स्थायी सरकार की स्थापना की समस्या महसूस की है तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही देश में प्रशिक्षित लोगों के द्वारा प्रशासनिक योग्यता के विकास के प्रयास किये हैं। सभी राष्ट्र एक ऐसे सामाजिक परिवर्तन की दिशा में प्रयत्नशील हैं जो राष्ट्र निर्माणकारी प्रक्रियाओं को गति प्रदान कर सके तथा लोगों की आर्थिक स्थिति एवं जीवन स्तर को बेहतर बनाने में सहायक हो। इन परिवर्तनों को राजनैतिक संस्थाओं के द्वारा प्रतिष्ठित करने की चेष्टा के परिणाम स्वरूप राजनीति एवं राजनैतिक गतिविधियाँ सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया पर हावी होती गयी हैं। आज जब हम शिक्षा जगत में राजनीति एवं राजनैतिक विषय से विषाक्त शिक्षण संस्थाओं की चर्चा करते हैं तो यह केवल मात्र सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की पानी में तैरती हुई हिम-शिला का दृश्य अंशमात्र ही है। सभी नव राष्ट्रों में प्रजातंत्र की स्थापना एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के आरोपण ने एक विशिष्ट स्थिति को जन्म दिया है। इन सभी राष्ट्रों में शिक्षा व्यवस्था को इस संदर्भ से स्वतन्त्र रूप में नहीं देखा जा सकता। नव राष्ट्रों में शिक्षा अथवा शैक्षणिक प्रक्रिया सम्बन्धी विचार को प्रजातंत्र की समस्या से विलगित नहीं किया जा सकता। प्रजातंत्र की स्थापना की प्रक्रिया ने नव राष्ट्रों में समस्याओं को जन्म दिया है। वे शक्तियां जो प्रजातंत्र की स्थापना में बाधक सिद्ध हो रही हैं अथवा जो प्रजातंत्रीय प्रणाली को सशक्त कर सकती हैं, ये दोनों प्रकार की शक्तियाँ इन राष्ट्रों में शिक्षा व्यवस्था एवं शैक्षणिक प्रक्रिया को प्रभावित कर रही हैं। अतः शिक्षा व्यवस्था सम्बन्धी नीति निर्धारण में प्रजातांत्रिक प्रणाली को प्रभावित करने वाले इन तथ्यों की और ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। सभी नव राष्ट्रों में प्रजातंत्र की स्थापना राष्ट्रीय लक्ष्य है। शिक्षा व्यवस्था इस लक्ष्य पूर्ति का सशक्त माध्यम बन सके—शिक्षानीति का यह उद्देश्य होना चाहिए।

सभी नव राष्ट्रों में शिक्षा के माध्यम का प्रश्न समस्या के रूप में उभर कर सामने आया है। इन सभी राष्ट्रों में आधुनिक शिक्षा का माध्यम उनके औपनिवेशिक शासकों की भाषा बनी। आधुनिक सभ्यता से उनके संपर्क सूत्र भी पूर्व शासकों की भाषा से जुड़े हुये हैं। स्वदेशी भाषाओं के आंचलिक प्रभाव क्षेत्र बने हुए हैं। सारे देश में वे भाषायें न तो बोली ही जाती हैं और न समझी जाती हैं। फिर भी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए सभी नव राष्ट्रों में स्वदेशी भाषाओं में से ही किसी एक भाषा को राष्ट्रीय भाषा का स्थान देना आवश्यक समझा गया। ऐसी ही स्थितियों में इन विभिन्न राष्ट्रों में भाषायी विवाद भी प्रारम्भ हुए। इन आंचलिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की भावनात्मक कट्टरता तथा आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में विदेशी भाषाओं के प्रभुत्व की स्थिति शिक्षा के स्तर को प्रभावित करती है। स्वदेशी भाषाओं के साथ परम्परागत सांस्कृतिक संदर्भ जुड़े होने के कारण उन्हें आधुनिकीकरण का माध्यम बनाने में कठिनाइयां आती हैं। भाषाई विविधताओं में वृद्धि के साथ इन कठिनाइयों में भी वृद्धि होती है। एक प्रजातांत्रिक प्रणाली में इन कठिनाइयों एवं समस्याओं के सरल समाधान संभव नहीं हैं और न ही सरलता से विदेशी भाषाओं के प्रभुत्व को ही समाप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में भारतवर्ष में किसी नयी शिक्षा पर विचार करते हुए इन संदर्भों की अवहेलना नहीं की जा सकती थी।

शिक्षा का भाषा से सीधा सम्बन्ध है। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया भाषा के माध्यम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही होती है। भारतवर्ष में आंचलिक भाषाओं की विविधता के साथ साथ भाषा से जुड़ी लोगों की भावनायें इतनी जटिल हैं कि भाषा लोगों के लिए संस्कृति का प्रतीक ही नहीं बल्कि संस्कृति का पर्यायवाची बन गयी है। इसी भावनात्मक अतिशय ने भाषाई वैमनस्यता एवं विद्वेषों को जन्म दिया है। प्रत्येक भाषायी समूह अपने सीमित क्षेत्र में लक्ष्मण रेखायें खींचने का कार्य कर रहा है। राष्ट्रीय स्तर की गति विधियों में इन क्षेत्रों की भाषायी कट्टरता एवं द्वेष के कारण समान रूप से लोगों की भागीदारी नहीं हो पाती। प्रजातांत्रिक प्रणाली के सफल कार्यान्वयन एवं राष्ट्रीय स्तर पर भावनात्मक एकीकरण की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर की गतिविधियों में देश के सभी लोगों की समान भागीदारी आवश्यक है। इस दिशा में शिक्षा व्यवस्था की सार्थक भूमिका है।

देश में नयी शिक्षा नीति निर्धारित की जा चुकी है। अब उसके कार्यान्वयन की दिशा में प्रयोग किए जा रहे हैं। जिस प्रकार से नयी शिक्षा नीति का निर्धारण किया गया है उसमें उपर्युक्त दृष्टि से अधिक कुछ नहीं किया गया हैं। शिक्षा के अर्थकारी पक्ष पर विचार ही अधिक प्रभावशाली देखा जा सकता है। वास्तव में शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा प्रणाली, शैक्षणिक प्रक्रिया के दो अलग अलग पक्ष हैं। शिक्षा व्यवस्था में भी औपचारिक-कक्षा केन्द्रित-शिक्षा एवं उससे भी अधिक व्यापक अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र हैं। नीति निर्धारण में अनौपचारिक शिक्षा के व्यापक क्षेत्र पर कोई ठोस निर्णय नहीं लिए गए हैं। शिक्षा व्यवस्था का दूसरा प्रमुख पक्ष है शैक्षणिक संस्थाओं के संचालन का उत्तरदायित्व। इस पक्ष की ओर भी (संभवतः जान बूझकर) कोई नीतिगत निर्णय नहीं लिए गए हैं। दोहरी नीति हमारे देश का राजनैतिक स्वभाव बनती जा रही है। देश के अर्थतंत्र में जैसे सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों की द्वैधता हमारी आर्थिक नीति का स्वरूप है वैसे ही शिक्षा के क्षेत्र में भी इसी द्वैधता की स्थिति को मान्यता दी गई है।

व्यक्तिगत प्रबन्ध में संचालित शिक्षण संस्थाओं के शासकीय नियंत्रण का हास्यास्पद स्वरूप प्रतिदिन देखने को मिलता है। वास्तव में नयी शिक्षा नीति से सम्बन्धित जो भी निर्णय लिए गए हैं वे शिक्षा प्रणाली के स्तर तक ही सीमित हैं। फिर भी इस ओर शासन का ध्यान गया है और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम एक सार्थक शिक्षा नीति की आवश्यकता की गंभीरता को स्वीकृति प्रदान की गई है—यह अपने में कम महत्वपूर्ण नहीं है। बदलते समय के मापदण्डों एवं दुनिया के अन्य देशों में शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति को भी ध्यान में रखते हुए हमें बार-बार देश की शिक्षा व्यवस्था की ओर ध्यान देना होगा तथा आवश्यकतानुरूप नीतिगत निर्णय लेने होंगे। अन्य सभी नव राष्ट्रों की भांति आर्थिक प्रगति, गरीबी से मुक्ति एवं आधुनिकीकरण भारतवर्ष के लिए भी प्राथमिक स्तर की समस्यायें हैं। इन समस्याओं के समाधान में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। जब तक देश में सभी वर्गों को समान रूप से एक समान शिक्षा के अवसर प्राप्त नहीं हो पाते तब तक देश के मानव संसाधनों का समुचित प्रयोग हो पाना संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ

पार्सन्स, टालकाट — एसेज इन सोशियोलाजिकल थ्योरी (फ्लेंकों, १९५४) पी० पी० १४३-५।

स्मेलसर, एन० जे० — सोशल चेन्ज इन इंडस्ट्रीयल रिवोल्यूशन (लंडन, १९५९)

मीड मार्गरेट — अवर एजूकेशनल एमफैसीज इन प्रिमिटिव पर्सपेक्टिव, अमेरिकन जर्नल आफ सोशियॉलोजी, वाल्यूम ४८(१९४३) पी—६३७

गीट्ज, क्लिफर्ड — इंटीग्रेटिव रिवोल्यूशन इन 'ओल्ड सोसायटीज एण्ड न्यू स्टेट्स' एडिटेड (१९६३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अदिवासी स्तंभ

पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय संदर्भ–ऐतिहासिक परिवेश में मिसिंग जनजाति पर अधारित एक अध्ययन

भिक्षु कौण्डिन्य

पौराणिक जनश्रुति और आदि स्रोत

ऐसे तो असम के अन्य लोग मिसिंग लोगों को 'मिरि' कहते हैं। 'मिरि' तिब्बती भाषा का शब्द है : 'मि'–मनुष्य, 'रि'–पहाड़; अर्थात पहाड़ी लोग और 'मि–रिक्' 'मि'–मनुष्य; 'रिक्'–वंश; यानी मनुष्य के वंश। ये लोग अपने को 'आब-तानि' (आब/आब्ब-पितृ; तानि-मनुष्य) की सन्तान कहते हैं। मिरि नाम से ये लोग चिढ़ते हैं। ये लोग अपना परिचय 'मिसिंग' या 'मिसिंग-आमि' अथवा 'तानि-आमि' नाम से देते हैं। 'मिसिङ्-आमि' का अर्थ है 'मिसिङ्' जाति के लोग और 'तानि-आमि' का अर्थ है 'मनुष्य-जाति'। मिसिंग का शाब्दिक अर्थ है : 'मि'–मनुष्य, 'सिंग'/'सिङ्' या 'आन्सिङ्'-शान्त या ठण्डा। 'मि'-मनुष्य; 'आसि'-पानी; अर्थात् पानी (नदी) तट पर निवास करने वाले शान्त प्रकृति के लोग। अतः मिसिंग लोग शान्त प्रकृति के होते हैं। ये लोग झगड़े, दंगा-फिसाद आदि से दूर रहकर अपना कृषि कर्म कर जीवन-यापन करते हैं। आहोम लोग मिसिंगों को 'खा-काङ्-लाई' (मध्यस्थता करने वाले नौकर) और 'पाङ् डिन्' भी कहते हैं और खाम्ति लोग इन्हें 'हाङ् खात्' (लंगोट खोया हुआ) कहते हैं।

मिसिंग लोग आदि लोगों से कब अलग हुए ? इस पर बहुत मतभेद है। ये लोग पहाड़ छोड़ कर कब और क्यों आए ? उसे ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता क्योंकि इनका लिखित वृत्तान्त नहीं है। मिसिंग समाज में जनश्रुति है कि मिसिंग लोगों का 'मृग-चर्म' पर लिखित वृत्तान्त था, किन्तु रास्ते में भयंकर पहाड़ी दर्रे के पास अटक कर, संकट में पड़ने के कारण

डॉ० भिक्षु कौण्डिन्य, एसोशिएट-फेलो, सेन्टर फॉर दी स्टाडी ऑफ सोशियल सिस्टम्स, जवाहरलाल नहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राण रक्षा के लिए उस मृग-चर्म पर लिखित वृत्तान्त को आग में भून कर खा गए। इनके अक्षर क्या और कैसे थे कोई नहीं जानता है।

सम्भव है कि रोजी-रोटी की खोज में, उपजाऊ स्थान की खोज करते हुए मिगिं लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका से आए होंगे। ऐसा भी माना जाता है कि मूल स्थान के लोगों से मनोमालिन्य तथा उनके उपद्रव से ही इन्हें मूल-स्थान त्यागना पड़ा होगा। मिसिंग समाज में प्रचलित जन-श्रुति है कि—जब 'मिसिंग' लोग 'किलिङ् कांगे' नामक ऊंचे पहाड़ की चोटी से समतल भूमि (ब्रह्मपुत्र उपत्यका) पर आ रहे थे, तब रास्ते में एक भयंकर 'जिलि' (पहाड़ी दर्रा) का सामना करना पड़ा। आने वाले गिरोह को बहुत दिन तक वहीं रुकना पड़ा था। किसी भी प्रकार उस संकट से मुक्ति नहीं पा रहे थे। साथ में आए हुए 'मिसिंगों' ने 'मिबू' (पुरोहित) के द्वारा नाना प्रकार पूजा विधि कर भगवान से स्तुति-प्रार्थना की। अन्त में सिद्धान्त निकाला कि मिसिंग जाति के 'मिलि' और 'कार्दङ्' वंश के दो व्यक्ति ही ये भयानक पहाड़ी 'जिलि' लांघने की व्यवस्था कर सकते हैं। उक्त दो व्यक्ति 'जिलि' (दर्रा) के तट के 'मायिङ्' और 'माङ्कङ्' नामक दो विशाल वृक्षों को सात दिन और सात रात्रि में काट कर एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर गिराने में समर्थ होते हैं। कहा जाता है कि यही दो वृक्ष पुल के काम आते हैं। इसी के सहारे मिसिंग लोग उस संकटपूर्ण जिलि को पार कर ब्रह्मपुत्र उपत्यका आए थे। इन वृक्षों को वे लोग सोने और चाँदी की सीढ़ी मानते हैं। संभवतः ये वृक्ष पीले एवं सफेद रंग के रहे होंगे। आज भी मिसिंग लोग पूजा, उत्सव, धार्मिक पर्व आदि के समय उन वृक्षों का भी स्मरण करते हैं और वृक्षों के नाम पर चढ़ावा भी देते हैं।

मिसिंग लोग मूलतः सीमान्त प्रदेश अरुणाचल के सियांग अंचल के आदि लोगों की एक शाखा हैं। किंवदन्ती के अनुसार तिब्बत से ये लोग आदियों से भी पहले आए थे। फिर बाद में आदि लोग आए और 'कारक्-सिमङ्' नामक स्थान में आदि और मिसिंग एकत्र हुए। बाद में इनके बीच मनोमालिन्य हुआ; संघर्ष हाने के फलस्वरूप मिसिंगों ने ब्रह्मपुत्र उपत्यका की ओर प्रव्रजन कर नदी तटों पर निवास करने लगे। किंवदन्तियों से जाना जाता है कि—मिलि, कुम्बाङ्, पातिर इत्यादि जाति के लोग रेगाम' पहाड़ से दाम्र, आदि, पासी, मेब नामक रास्ते से उतर आए। तायुङ्, ताये, ताइद लोग बापि पहाड़ से पांगिन पासिघाट के रास्ते से उतर आए। पाईत, पाव, पायुम् लोग तरने और जुगिङ्—केबाङ्, येसिङ्, लेदुम के पुराने रास्ते से आए थे। आदियों की किंवदन्तियों में पेगु और दले जाति के लोग किस रास्ते से आए इसका विवरण प्राप्त नहीं होता है। पेगु लोग तिब्बत से आने के बाद 'कारक' अंचल में रहते थे। इसका प्रमाण वर्तमान 'पेगु-सियेङ्' नामक सरोवर से ही प्राप्त होता है। वह 'पेगु-सियेङ्' नाम 'पेगु' जाति के लोगों के निवास करने से ही पड़ा है। पेगु और दले जाति के लोगों ने अपनी इच्छा से 'कारक' छोड़ा और ब्रह्मपुत्र उपत्यका में निवास करने लगे। बरि, रेगन, सार इत्यादि जाति के मिसिंग लोग सब से बाद में पहाड़ छोड़कर समतल भूमि में उतर आए हैं। ये लोग मूलतः आदियों के ही वंशधर हैं।[1] पहाड़ छोड़ने की कथाएं इनके बीच इस प्रकार प्रचलित हैं :

१. मियङ् जाति की एक विधवा के 'याक्वङ्' और कब्बे नाम के दो लड़के थे। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों सभी प्रकार के शिल्प-विद्या में पारंगत थे। ये नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बनाना जानते थे। दूसरे लोगों को उनके शिल्प-विद्या पर द्वेष हुआ, सभी लोगों ने मिलकर 'याक्वङ्' और 'कब्वे' को जान से मार डालने का निर्णय किया और एक दिन अचानक ही उनके घर पर आक्रमण किया। विधवा थी विवेकशील; उसने मिर्च की धूल/गुड़ा एक पात्र में पानी के साथ घोल कर घर के मूल दरवाजे के कोने में छुप गई। कुछ देर बाद दाम्र जाति के लोग एक-एक कर सीढ़ी से घर के मचान पर चढ़ने लगे। बुढ़िया ने दरवाजे के कोने से सभी की आंखों में मिर्च मिश्रित पानी छिड़क दिया, ज्वलन के मारे सभी शत्रु आंखें धोने के लिए नदी की ओर दौड़े। इस प्रकार बुढ़ियाने याक्वङ् और कब्वे की जान बचाई। बाद में बुढ़िया के लड़कों ने जंगल में शरण ली।

बुढ़िया और उसके लड़के इतने से निरापद नहीं थे। विरोधी दाम्र लोगों को पराजय पर बहुत लज्जा हुई। मिर्च की ज्वलन ठीक होने के बाद दाम्र लोगों ने पुनः बुढ़िया के घर को चारों ओर से घेर लिया। बुढ़िया ने फिर एक उपाय निकाला; उसने एक 'पन्सा' (भाला) लेकर घर के भीतर ही यत्र-तत्र खोंचते हुए कहने लगी–'इना-इना याक्वङ्; इना इना कब्विया' (ये रहा याववङ्, ये रहा कब्वे)। इस प्रकार अपने दो लड़कों के अलावा वह 'पाङ् काङ्, कुर्मादि' इधर आओ; जंकि और जमाद तुम सभी इधर आओ शत्रुओं ने घर घेर लिया है, उन्हें सभी मिलकर खदेड़ दो!' यह सुनकर दाम्र लोगों के छक्के छूट गए, वे एक दूसरे की ओर देखने लगे। वे सोचने लगे, पहले एक ही बुढ़िया ने हमें परेशान कर दिया था; उसके इतने सारे लड़के हैं, वे हमें यों नहीं छोड़ेंगे!'

यह सोचकर सभी शत्रु भाग खड़े हुए। बुढ़िया ने सोचा कि 'इनके बीच हम जीवित नहीं रह पाएंगे! पहाड़ छोड़कर अन्यत्र जाना ही अच्छा रहेगा!' वह अपने पुत्र याक्वङ् और कब्वे को साथ लेकर समतल-भूमि में चली आई। दाम्र लोगों ने फिर उनका पीछा किया। याक्वङ् और कब्वे 'तराअनि' जंगल के रास्ते मां को साथ लेकर आए। 'तराअनि' के पौधे काटने के कुछ देर बाद उसमें अंकुर आ जाते हैं। ये लोग 'तराअनि' काटकर आए थे। तराअनि में अंकुर आने के कारण दाम्र लोगों को पता नहीं चला कि ये लोग कब गये? तब पीछा करने वाले लोग अपने-अपने घर लौट गए। अपनी विधवा मां को साथ लेकर याक्वङ् और कब्वे ब्रह्मपुत्र उपत्यका पहुंचकर निरापद से रहने लगे। आज यहां जो मिसिंग लोग हैं, वे अपने को इन्हीं के वंशधर मानते हैं।

२. दूसरी कथा इस प्रकार कहते हैं:

पहाड़ के किसी एक दाम्र गांव में एक सुन्दर तुरी नाम की नव-युवती थी। तुरी के पिता ने उसे एक मल्ल-योद्धा युवक को देने की घोषणा की। तुरी को पाने के लिए मियङ् गांव का मयिङ् नामक युवक दाम्र गांव में गया। मयिङ् था शक्तिशाली मल्ल युद्ध में पारंगत युवक ने एक-एक कर दाम्र गांव के सभी युवकों को परास्त कर, तुरी को लेकर वह अपने उस गांव चला आया। पराजय से दाम्र गांव के युवकों को बहुत ग्लानि हुई, तो उन लोगों ने मयिङ्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बदला लेने का निर्णय किया। विवाह के कुछ दिन बाद मयिङ् तुरी को साथ लेकर ससुराल गया। बदला लेने हेतु दाम्र गांव के युवकों ने किसी भोज में तुरी और मयिङ् को बुलाकर मयिङ् की हत्या कर दी और उसे नदी में फेंक दिया। तुरी ने भी उसी के साथ आत्महत्या कर ली।

यह दुखद समाचार मयिङ् के गांव पहुंचा। मयिङ् के गांव वालों ने भी प्रतिशोध लेने का निर्णय किया। कुछ महीने के बाद मयिङ् के गांव वालों ने भोज का आयोजन किया और भोज में दाम्र गांव के लोगों को निमन्त्रण भेजा। वयोवृद्ध सभी लोग भोज में शामिल हुए, किन्तु युवक लोग भोज के लिए शामिल नहीं हुए। उन्हें भय था कि मयिङ् के गांव वाले प्रतिशोध लेंगे! गांव वालों ने पहले तो आदर से अतिथि सत्कार किया। आपङ् (मद्य) पीने से जब वे लोग नशे में चुर हुए, तब मियङ् गांव के लोगों ने दोनों ओर से घर का दरवाजा बन्द कर उन्हें काटना शुरू किया। सभी की हत्या कर दी गयी, मगर एक दाम्र बुड्ढा बच निकला; उसने जाकर गांव वालों को सूचना दी।

दाम्र लोग संख्या में अधिक थे; दाम्र लोगों ने मिलकर मियङ् गांव में आक्रमण कर दिया। मियङ् लोग गांव छोड़कर भागने के लिए बाध्य हुए। मियङ् लोग 'दीनेमिरेम'[२] से अनुमति प्राप्त कर जाने लगे। फिर दाम्र लोगों ने उनका पीछा किया। दीनेमिरेम ने उन्हें रोका तो वे लोग रुक गए। मियङ् गांव के लोग समतल-भूमि पर पहुंचे और वे लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका में ही रहने लगे। वही लोग आज मिसिंग नाम से जाने जाते हैं।

मिसिंग समाज में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार मानस सरोवर के दक्षिण-पूर्व दिशा में 'कजे-पाताङ्' नामक सरोवर है। यह 'दुग्लिन-आदि' और 'तासिग्-पेत्ताङ्' नामक दो पहाड़ों के बीच अवस्थित है। इसी 'कजे-पाताङ्' सरोवर के आस-पास मिसिंगो के पूर्वज निवास करते थे। यह स्थान बहुत ही ठंडा है, ठंडक से बचने के लिए ये लोग कपास की खेती कर कपड़े बुनते थे, वही कातने बुनने की परम्परा आज भी इनमें अक्षुण्ण है। जन संख्या में वृद्धि होने के कारण, स्थान अभाव हुआ तो कुछ लोग 'कजे-पाताङ्' से प्रव्रजन कर ब्रह्मपुत्र उपत्यका की उपजाऊ भूमि में निवास करने लगे।[३] तिब्बत की राजधानी 'ल्हासा'/को 'ला-सा' उच्चारण करने पर मिसिंग में अर्थ होता है—ऊपर उठाना या ऊँचा स्थान। मिसिंग भाषा में तिब्बती भाषा का पर्याप्त प्रभाव देखा जाता है :

तिब्बती	**मिसिंग**	**हिन्दी**
मि	आमि्	मनुष्य, आदमी
लाक्	आलाक्	हाथ
मिक	आमिक्	आंख
छि/सि	आपि	पानी
लाम्	लम्बे/लाम्ते	रास्ता

मिसिंगों को 'मिरि' भी कहा जाता है। यह मूलतः तिब्बती भाषा का ही शब्द है। इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेख किया जा चुका है। तिब्बत से प्राप्त मिसिंगों के 'दबने' नामक पत्थर अतिमूल्यवान वस्तु हैं, धार्मिक अस्त्र 'यक्सा' भी तिब्बत में निर्मित 'दाउ' है। आदि लोग 'दांकि' नामक कांस का पात्र भी तिब्बत से ही प्राप्त करते रहे हैं।

'मिब्रु'/'मिरि' (पुरोहित) के 'आबाङ्' गीतों में मिसिंगों के मूल स्थान का वर्णन मिलता है। 'मिबु' को दैविकशक्ति जन्मगत प्राप्त होती है और 'मिरि' कर्मागत होता है। 'आबाङ्' गीतों में मनुष्यों के भूत-भविष्यत् की बातें होती हैं और सृष्टि सम्बन्धी विवरण रहता है। इन 'आबाङ्' गीतों को सर्वसाधारण लोग समझ नहीं सकते हैं। आजकल 'मिब्रु' और 'मिरि' का महत्व क्षीण होता जा रहा है, फिर भी मिसिंगों की मूल उत्पत्ति की बातें जानने के लिए 'आबाङ्' ही मूल स्रोत हैं। जब 'मिबु' कांपते हुए नाचकर 'आबाङ्' गाता है :

'सिकि नाने सिकि बाबा, दल्निक पमाने लुमाने बकाये !'·· इत्यादि। (हे, सिकि के पितृ-पितामह, इसे दैविक शक्ति दें, जिससे कि मैं मनुष्यों के भूत-भविष्यत कह सकूं !)

'मिब्रु' और वयोवृद्ध मिसिंग लोगों को 'रेगि-रेगाम्' नामक स्थान से आने की बाते कहते हैं। 'रेगि-बापि' नामक पहाड़ में है और 'रेगाम' है 'लेल' नामक पहाड़ में। 'रेगि-रेगाम्' में अनवरत हवा चलती रहती है। 'रेगि' अरुणाचल प्रदेश का 'रिगा' स्थान ही हो सकता है; यह स्थान पासिघाट से १५० की० मी० उत्तर दिशा में है। 'रिगा' में आदि लोग निवास करते हैं।

बरि, बकार

ये दो स्थान सियाङ् की उप नदी सिग्रुम नदी के क्षेत्र में हैं। यह स्थान पासिघाट से लगभग २०० की० मी० पहाड़ के ऊपर है। यहां आदि शाखा की बरि जनजातियों के २६ गांव हैं। मिसिंगों के 'बरि' और आदियों के 'बरि' लोग एक ही कुल के हैं।

पेगु

'पेगु' मिसिंगों की एक प्रमुख उपाधि है; पेगु जाति के लोग अपने को 'कन्दार' गोत्रीय कहकर परिचय देते हैं। अरुणाचल प्रदेश के सियाङ् और सियम नदी के संगम-स्थल के कुछ ऊपर 'पेगु-सियाङ्' नमक स्थान है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि 'पेगु' लोग भी पहाड़ से ही आए हैं।

पेकि मदि

याम्ने नदी और सियाङ् नदी के संगम स्थल को 'पेकि-मदि' कहा जाता है। यहां का जल नमकीन है। 'मदि' जाति के मिसिंग लोग पहले यहीं निवास करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रासाङ्

लाईमेकुरी रेल स्टेशन से ३० कि० मी० उत्तर में 'नारि' पहाड़ के ऊपर 'राङ्-साङ्' नामक स्थान है। अभी इस स्थान में 'तायुङ्' जाति के मिसिंग लोग निवास करते थे। 'तायुङ्' लोगों के आम और कटहल के पेड़ आज भी वहां मौजूद हैं।

आदि तक

लाईमेकुरी रेल-स्टेशन से पांच कि० मी० उत्तर की ओर 'आदि-ताक' नामक गालंग गांव है। मिसिगों के 'ताकु' उपाधि के लोग यहीं के निवासी माने जाते हैं।

सियाङ् और सिकाङ्

'सियाङ्' और 'सिकाङ्' को असम के लोग 'डिहांग', 'डिबंग' कहते हैं। पहले सियाङ्, सिकाङ्, याम्ने और सियम नदी को केन्द्र कर इस अंचल में मिसिंगों के नाना जाति के लोग निवास करते थे। 'मिबु' अपते 'आबाङ्' गीत में गाता है :

'तासिगः सिगः एम्मायाय, सिग सिगि एम्मायाय;
पेसिने पेत्ताङे एम्मायाय, सियाङे वेर्क एम्मायाय ! तासिग सिग ··!'

इस 'आबाङ्' में चिड़िया और मेढक की भांति किस प्रकार प्रबल धारा में सियाङ् नदी पार हुए उसी का विवरण किया है। मिसिंग ऐनितम् में इसकी उपमा है :

'नक्के दलुङ् केकनदे, ङक्के दलुङ् केकनसे;
सियाङ् आसि दुंकम्ना, कालि दाग्गम् कापामाने !'

(तुम्हारा घर सियाङ् नदी के उस पार है और मेरा घर इस पार है; हे प्रिये ! तुम्हें देखना चाहें भी देख नहीं सकती हूं) !

दासिङ्

अरुणाचल प्रदेश का 'दासिङ्' मिसिंगों का अन्तिम निवास स्थान माना जाता है। यह सियाङ् नदी के तट पर है और पासिघाट से लगभग एक सौ कि० मी० दूर पहाड़ के ऊपर है। इसी स्थान से मिसिंग लोग आदि लोगों से अलग होकर आए हैं। दासिङ् के मिसिंगों की वंशावली निम्न प्रकार है :

सदि का पुत्र देलुङ्
↓
लिलुङ्
↓
तुये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

↓
येपे
↓
पेदङ्
↓
दासिङ्
↓
मिसिंग

इससे स्पष्ट होता है कि मिसिंग नामाकरण पहाड़ में ही होता है। दासिङ् के पुत्र को ही मिसिंग कहा जाता है जिन्हें वर्तमान आदि कहा जाता है। पहले इन्हें 'आबर' या 'बर-आबर' कहा जाता था। आदि का अर्थ है पहाड़ या 'गिरिजन'। आदि में कई एक शाखा उपशाखाएं हैं: मियङ्, पादाम, पासि, गालंग, पांगी, बरि, बकार, सिमङ्, आसिङ् पाइलिब, तांगम, कार्क, मिलाङ्/इराङ् इत्यादि। इनमें बहुत सारी उपजातियां भी हैं। प्राचीन काल से ही मिसिंग और आदि लोग एक ही शाखा के मानते हैं। इनकी उपाधियों में आज भी समानता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिये तालिका निम्न प्रकार है:

मिसिंग	आदि	मिसिंग	आदि
पेर्तिन	पेर्तिन	पेरमे	पेरमे
पामे	पामे	पायाङ्	पाद्ना
पायेङ्	पायेङ्	पासार	पासार
पासुङ्	पासि	बरि	बरि
पेगु	मेगु/पेगु	मयिङ्	मयङ्
मिराङ्	मिलाङ्	मराङ्	दाराङ्/मराङ्
लेतुम्	लितुम्/लुदुम्	तायिङ्	तायिङ्
तायुङ्	मिजे/तायुङ्	मोदी	मोदी
ङाते	ङाते	दाम्बुक	दाम्बुक
सिराम	सिराम	ताक/ताकः	दाकः
मिलि	मिलि	जिमे	जिमे
बसार	बासार	काग्युङ्	कयु
कमान	कमान···इत्यादि।		

सीमान्त प्रदेश अरुणाचल के रायाङ्, रुक्सिङ्, देपि, देबिङ् गांव के मियङ् और गालंग लोग पायाङ् ताकः, पासार, बरि, तायुङ्, जिमे कहकर अपना परिचय देते हैं। असम में ढकुवाखना के पास पादाम लोगों का कप्सान नामक गाँव है। इस गांव के सभी लोग आजकल 'दले' जाति कहकर अपना परिचय देते हैं। इतना होते हुए भी आदि लोग मिसिंग लोगों पर विश्वास नहीं करते हैं; कारण—एक बार लड़ाई के समय, आदि लोगों ने मिसिंगों को नाव चलाने के कार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में नियुक्त किया था। सुबह योद्धाओं को नाव/बेड़े में लेकर शत्रु के गांव की ओर जाने लगे; सुबह नदी में कुहासा छाया हुआ था। नाव चलाने वाले रास्ता भूलने के कारण जिस स्थान से पहले चले थे, उसी स्थान में जा पहुंचे। आदि योद्धाओं ने अपने गांव में परिवार के लोगों की हत्या कर दी। बाद में परिवार के सदस्यों की हत्या की है। इस पर आदि लोग मिसिंग लोगों पर नाराज हुए। इस प्रकार मनोमालिन्य होने के कारण मिसिंग लोगों ने पहाड़ छोड़ना ही ठीक समझा और वे लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका में आकर रहने लगे।

ब्रह्मपुत्र उपत्यका के मैदानी क्षेत्र के मिसिंग लोग आदियों के ही वंशज हैं। आदि लोग मिसिंगों को उनके पलायन किये हुए दास भी कहते हैं।[४] किन्तु सभी मिसिंगों के लिए यह बात लागू नहीं होती। सदियों से मिसिंग लोग ब्रह्मपुत्र उपत्यका में रह रहे हैं। ये लोग असम धरती के पुत्र हैं। ये एक ही स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहे। जहां, जिस प्रकार की सुविधा रही, वहीं ये लोग अस्थायी गांव बसा कर रहते रहे। आज भी ये लोग घूमन्तु प्रवृत्ति के हैं। ब्रह्मपुत्र उपत्यका के जिस स्थान में खेत के लिए उपजाऊ भूमि मिलती है, वहीं गांव बसाकर रहते हैं। शुरू में सुतिया जाति के मिरि लोग दिहंग उपत्यका में रहते थे। संभवतः आदियों की शक्ति का सामना न कर पाने के कारण तिसिंग लोग मैदानी क्षेत्रों में आने के लिए बाध्य हुए।[५] अरुणाचल प्रदेश के सियांग तथा लोहित जिलों में आदि समुवां और अयिगिया जाति के मिसिंग/मिरि निवास करते हैं जो आदियों की संस्कृति के समीप हैं।

आहोम राजाओं के समय में मिसिंग लोग आदियों के साथ दुभाषिये तथा व्यापार किया करते थे। इस प्रकार बहुत लम्बे समय तक आदियों तथा मिसिंगों के बीच परम्परागत आदान प्रदान चलता रहा।[६]

क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक समीक्षा

इनईक्यूलिटी एण्ड पावर्टी—ए केस स्टडी आफ कर्नाटक। लेखक—जी० थिम्मईया। बम्बई : हिमालय पब्लिशिंग हाउस। १९८३, पृष्ठ XIV+१०६। मूल्य ४५-०० रुपये।

समीक्षक : **दीपक त्यागी, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, देहरादून।**

असमता पर अनेक लेख लिखे गये, अनेक विचार-गोष्ठियाँ हुई और अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुये इस पर शोध कार्य किया। फिर भी असमता जैसे गम्भीर तथा महत्वपूर्ण विषय पर और अध्ययनों (लेखों, पुस्तकों) की आवश्यकता प्रतीत होती है। सम्भवतः इसी को ध्यान में रखते हुये थिम्मइया ने प्रस्तुत पुस्तक में कर्नाटक के संदर्भ में असमता तथा निर्बलता को उनके सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुये, प्रस्तुत किया है। लेखकानुसार उसने केवल कर्नाटक में पाई गई असमता तथा नितान्त निर्धनता के आर्थिक तथा सामाजिक पहलुओं को समझने की चेष्टा की है।

पुस्तक के उद्देश्यों को प्रथम अध्याय—'इंट्रोडक्शन' में दिया गया है। पाँच उद्देश्यों में प्रथम उद्देश्य कर्नाटक में असमता तथा निर्धनता को अनुमानित करने की चेष्टा की गई है और यह स्वतन्त्र रूप से किये गये एक राज्य-स्तर-सर्वेक्षण तथा राज्य-स्तर पर उपलब्ध सहायक आंकड़ों पर आधारित है। जनपद स्तर पर भी असमता और नितान्त निर्धनता की विवेचना की गई है। तृतीय उद्देश्य सामाजिक-आर्थिक पहलू जैसे-धर्म, जाति, शिक्षा एवं व्यवसाय के साथ असमता और नितान्त निर्धनता के मध्य अन्योंन्य क्रिया को देखने की चेष्टा की गई है। चतुर्थ, इसमें वर्ग तथा जाति के अन्तः सम्बन्ध को देखने की चेष्टा की गई है और अन्त में राज्य में असमता तथा निर्धनता के विस्तार एवं प्रकृति के कुछ सम्भव स्पष्टीकरणों को दिया गया है और नीति निर्देशन भी बताये गये हैं। अध्ययन सामग्री एकत्रित करने की विधि दी गई है और अन्त में असमता और नितान्त निर्धनता के बीच सम्बन्धों को समझने की चेष्टा की गई है।

द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में क्रमशः कर्नाटक में आय की असमता, निर्धनता एवं असमता और निर्धनता के मूल कारणों को दिया गया है। पंचम अध्याय में असमता तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धनता के सामाजिक और आर्थिक स्पष्टीकरण दिए गये हैं। अन्तिम अध्याय में नीति सम्बन्धी विवेचना की गई है और क्या नीति-परिणाम होने चाहिए, दिये गये हैं।

यह अध्ययन मुख्य रूप से आर्थिक है तथा इसमें निर्धनता एवं नितान्त निर्धनता के अन्तर पर ध्यान नहीं दिया गया है और दोनों को पर्याय रूप में प्रयोग किया गया लगता है। इस १०६ पृष्ठों की पुस्तिका में ५५ तालिकायें भी सम्मिलित हैं। सामाजिक पहलुओं को भी दर्शाने की चेष्टा को गई है परन्तु विशेष रूप से यह एक आर्थिक अध्ययन प्रतीत होता है। पुस्तक सामाजिकशास्त्रों के विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। अधिक अच्छा होता यदि इसको पेपर बैंक में प्रकाशित किया जाता जिससे इसके मूल्य में कमी होती और प्रत्येक शोधकर्ता खरीद सकता। अत्युत्तम होता यदि शीर्षक के साथ एक उपशीर्षक–'एक आर्थिक अध्ययन' दे दिया जाता।

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमती अणिमा शुक्ल

अणिमाजी से मेरा परिचय वर्ष १९७१में तब हुआ जब वे विवाह करके अपना घर बसा चुकीं थी। मैंने उनको एक स्नेहिल भाभी के रूप में पाया जो अपने परिवार में अनुरक्त रहते हुये भी किसी भी आगन्तुक के समुचित सत्कार में कोई कमी नहीं रखतीं थीं। उनका अन्नपूर्णा का भण्डार हर एक का स्वागत करने के लिए सदा भरा रहता था।

उनका जन्म लखनऊ के एक सम्भ्रान्त बंगाली परिवार में ११ अक्तूबर, १९३८ को हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी लखनऊ में ही हुई थी। १९६२ में समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर और १९६४ में स्नातकोत्तर (विशेष) की उपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय से लेकर उन्होंने प्रसिद्ध विद्वान प्रो० जोसेफ एल्डर के निर्देशन में एक शोध परियोजना में कार्य किया। इस कार्य ने जहां उनको समाजशास्त्रीय अध्ययन में अतिरिक्त दृष्टि प्रदान की वहीं पर वे अपने मानवीय पक्ष को भी सरल ग्रामीणों के सम्पर्क में आकर विकसित कर सकीं। पुनः वे एक वर्ष तक सिटी माण्टेसरी स्कूल के प्रशिक्षण विभाग में 'समाज एवं सामाजिक कार्य' का प्रशिक्षण प्रदान करती रहीं और १९६७ में उन्होंने शशि भूषण कन्या महाविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में प्रवक्ता पद का भार सम्भाला, जिस पर वे जीवन के अन्त तक कार्य करतीं रहीं। उनकी अभिरुचि अध्यापन में तो थी ही परन्तु वे निरन्तर अपनी जानकारी और ज्ञान के विकास के लिए पढ़ती रहती थीं और लेखन कार्य भी किया करती थीं। एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसायटी की आजीवन सदस्या के साथ-साथ वे उस संस्था की विभिन्न गतिविधियों में क्रियात्मक सहयोग देती रहीं। उनके प्रकाशित लेख और गोष्ठियों में प्रगट किये गये विचार उनकी विद्वत्ता के प्रमाण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ वे संगीत के क्षेत्र में भी विशिष्ट स्थान रखती थीं। उन्होंने प्रयाग संगीत समिति की वरिष्ठ डिप्लोमा परीक्षा मौखिक गायन में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर उत्तीर्ण की थी। उनका बोलना ही उनके संगीतज्ञ होने का प्रमाण था।

महाविद्यालय में वे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की वरिष्ठ अधिकारी थीं तथा अनेक सांस्कृतिक गतिविधियों से अपने को सम्बद्ध रखती थीं।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सदैव जीवंत रहने वाली यह गौरवशालिनी महिला कब असाध्य बीमारियों से घिर गईं ये लोग सहज ही न जान सके किन्तु अपनी बीमारी की गंभीरता से परिचित होने के बाद भी वे मृत्यु के प्रति निर्विकार रहीं। उनको अस्वस्थ देख कर जब कोई सांत्वना देने का प्रयत्न करता था तो वे इस पर कोई ध्यान न दे कर केवल अपने कर्त्तव्य का ही ध्यान रखती थीं। आगन्तुकों के स्वागत की चिन्ता उनमें बनी रहती थीं।

२७ अगस्त, १९८६ को संध्या वेला में मात्र ४८ वर्ष की आयु में उन्होंने इस शरीर से मुक्ति पाई। परन्तु इस थोड़े से जीवन में भी वे अपनी सरलता, उदारता, विद्वत्ता और स्नेहिलता से हम सबको आप्यायित कर गईं। उनके परिवार में उनके पति डा० बी० आर० के० शुक्ल तथा दो पुत्रियाँ अन्य सम्बन्धियों तथा मित्रों के साथ उन्हें सदैव याद रखेंगे।

ईश्वर उनकी आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे।

प्रभात कुमार तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थशास्त्र एवं आर्थिक मानवशास्त्र – एक विवेचनात्मक अध्ययन

उमाशंकर मिश्र

आदिम अर्थव्यवस्था (Primitive Economy)

मानव समाज प्राद्योगिकी के द्वारा जीवन के लिये उपयोगी साधनों की सृष्टि करते हैं। इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सभी समाज प्राद्योगिकी के साधनों एवं अपने उत्पादों को अपने सदस्यों में वितरित करने की व्यवस्था भी करते हैं। वास्तव में समाज में उत्पादन व्यवस्था के साथ-साथ एक सुदृढ़ वितरण व्यवस्था का होना भी महत्वपूर्ण है। विभिन्न समाजों में सांस्कृतिक अनुकूलन प्रक्रिया स्वभावतः किसी न किसी प्रकार के श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण को जन्म देती है जिसके परिणामस्वरूप किसी न किसी प्रकार की विनिमय व्यवस्था भी आवश्यक हो जाती है। समाज की जटिलता के साथ-साथ वितरण सम्बन्धों पर उसकी निर्भरता में वृद्धि होती जाती है। जटिल सामाजिक व्यवस्थाओं में उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ लोगों की आकांक्षाओं में भी असाधारण वृद्धि होती है।

किसी समुदाय की अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी अध्ययन ही चर्चा का प्रमुख विषय होते हैं। दूसरे शब्दों में किसी भी समाज के उत्पादन एवं वितरण सम्बन्धी प्रक्रियाओं एवं प्रणालियों के अध्ययन ही आर्थिक अध्ययन कहलाते हैं। जब हम आदिम समाजों के सन्दर्भ में इस प्रकार के अध्ययन प्रस्तुत करते हैं तो उन्हें हम आदिम अर्थव्यवस्था अर्थात Primitive Economy शब्द से सम्बोधित करते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों के प्रारम्भिक अध्ययन मूलतः आदिवासी समुदायों तक ही सीमित रहे हैं। केवल इस शताब्दी के गत कुछ दशकों में ही उन्होंने अपने अध्ययनों का विस्तार सभ्य समाजों में भी किया है जिनमें आदिवासियों से भिन्न अर्थ व्यवस्था के स्वरूप पाये जाते हैं तथा जिनके अध्ययन परम्परागत रूप से अर्थशास्त्रियों द्वारा किये जाते रहे हैं। आदिवासी समाजों के सन्दर्भ में मानवशास्त्र के परम्परागत अध्ययनों में प्राद्योगिकी, परिस्थितिकी, मनुष्य प्रकृति सम्बन्ध एवं

उमाशंकर मिश्र, अध्यक्ष मानव विज्ञान विभाग, विद्यांत डिग्री कालेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पादार्थिक संस्कृति के विवरण प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। इन्हीं परम्परागत अध्ययनों को ही आदिम अर्थशास्त्र (Primitive Economics) अथवा आदिम अर्थ-व्यवस्था (Primitive-Economy) शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। वास्तव में "आदिम" अथवा Primitive शब्द का प्रयोग ही अब तर्कसंगत नहीं माना जाता किन्तु मानवशास्त्रीय साहित्य में एक विशेष सन्दर्भ से यह शब्द इतना घनिष्ठ रूप से जुड़ चुका है कि इसका परित्याग कर पाना कठिन है। इस शब्द का तात्पर्य प्राचीनता अथवा पुरातनता से न होकर पिछड़ेपन से अधिक है और यद्यपि इस पिछड़ेपन को वृहद् सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर परिभाषित करने की चेष्टायें की जाती रहीं हैं किन्तु वास्तव में यह पिछड़ापन प्राद्योगिकी एवं अर्थव्यवस्था के दायरों में ही सीमित रहा है। अतः एक विशेष प्रकार की निम्नस्तरीय प्राद्योगिकी पर आधारित अर्थ-व्यवस्था जो गुणात्मक आधार पर सभ्य समाजों की औद्योगिक अर्थव्यवस्था से भिन्न होती है तथा प्रमुख रूप से जनजातीय (Tribal) समाजों में पायी जाती है, इसी को आदिम अर्थ व्यवस्था कहा गया है।

गत कुछ दशकों में वास्तविक तथ्यात्मक विवरणों के स्थान पर सैद्धान्तिक विश्लेषणों तथा तथ्यों की विवेचना की ओर ध्यान दिया जाने लगा है। कुछ मानवशास्त्रियों ने सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र की मान्यताओं को लोकव्यापी रूप में स्वीकार करते हुये परंपरागत मानवशास्त्रीय आर्थिक अध्ययनों के क्षेत्र में उन मान्यताओं एवं सिद्धान्तों के प्रयोग को वरीयता प्रदान की है। ब्रिटेन में रेमंड फर्थ तथा अमेरिका में हर्सकोविट्स के विचारों ने सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्र में 'आर्थिक मानव शास्त्र' (Economic Anthropology) के एक विशिष्ट उप विभाग को जन्म दिया। अन्य ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों में इवांस प्रिचर्ड, फोर्ड, ग्लक मैन, स्टैनर एवं रिचर्डस आदि उन वरिष्ठ मानवशास्त्रियों में से हैं जिन्होंने इस नवजात उप विभाग के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। मानव स्वभाव एवं उसके मौलिक व्यवहार स्वरूपों की लोक व्यापकता को वरीयता प्रदान करते हुये इन मानव शास्त्रियों ने अर्थशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रयोग आदिम समाजों से उपलब्ध तथ्यों पर करते हुए पूर्व प्रचलित विवरण प्रधान अध्ययनों के स्थान पर सैद्धान्तिक विश्लेषणात्मक अध्ययनों को वरीयता प्रदान की। वर्तमान आर्थिक मानवशास्त्र (Economic Anthropology) का विकास इन्हीं सैद्धान्तिक आधारों पर हुआ है जब कि अर्थशास्त्र प्रमुख रूप से विचार-प्रधान है। मानवशास्त्र में विकसित इथनोग्राफिक प्रणाली के द्वारा अत्यन्त वस्तुनिष्ठ रूप से संकलित तथ्य एवं इनके व्यापक सामाजिक सांस्कृतिक सन्दर्भ आर्थिक मानवशास्त्र के प्रमुख आधार हैं।

आदिम एवं कृषक समाजों (Primitive and Peasant Societies) के अध्ययनों में अर्थशास्त्र के विशुद्ध सैद्धान्तिक विश्लेषणों का प्रयोग उचित है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्र में एक दूसरे से भिन्न दो प्रकार के मतों में यह तर्क दिया जाता है कि अर्थशास्त्र की आधारभूत मान्यतायें एवं सिद्धान्त लोकव्यापी हैं—अर्थात सभी प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं के आर्थिक विश्लेषणों में उनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे प्रकार का मत यह रहा है कि आधुनिक सैद्धान्तिक अर्थशास्त्र का जन्म ही आधुनिक औद्योगिक समाजों की अर्थव्यवस्था के विश्लेषण के लिये हुआ था जहां मुद्रा, मुद्रा पर आधारित विनिमय तथा व्यवस्थित बाजार से नियंत्रित अर्थव्यवस्था पायी जाती है। विशेष रूप से पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में ही आधुनिक अर्थशास्त्र का उद्भव एवं विकास हुआ है। अतः इस विषय की आधारभूत मान्यताओं एवं इसमें विकसित सिद्धान्तों का प्रयोग अनौद्योगिक मुद्राविहीन विनिमय व्यवस्थाओं एवं सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियों द्वारा नियंत्रित विनिमय प्रणालियों पर आधारित आदिम एवं कृषक समाजों की अर्थ व्यवस्थाओं के विशलेषण में सर्वथा अनुचित है। दूसरे शब्दों में अर्थशास्त्र में विकसित आधारभूत मान्यताओं एवं सिद्धान्तों की सर्वव्यापी सार्थकता के पोषकों ने इस विचार को अधिक मान्यता दी है कि सभी समाजों में मानव स्वभाव एवं स्वभावजनित व्यवहारों में एकरूपता एवं समानता पायी जाती है। अतः सामाजिक संरचनाओं में कुछ भिन्नताओं के बावजूद भी मानव स्वभाव एवं व्यवहारों की एकरूपता अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की लोकव्यापी सार्थकता एवं उपयुक्तता का पुष्ट आधार है। किन्तु इसके विपरीत अभिमत वाले अध्येयताओं ने मानव समाजों के आधारभूत संरचनात्मक विभेदों को अत्यधिक महत्व देते हुए तथा अर्थशास्त्र में विकसित सिद्धान्तों की लोकव्यापी सार्थकता पर संशय व्यक्त करते हुए आदिम समाजों की अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषणों में इन सिद्धान्तों की उपयोगिता एवं औचित्य को स्वीकार नहीं किया है।

प्रथम अभिमत के पक्ष में प्रमुख रूप से हर्सकोविट्स एवं रेमंड फर्थ के विचार महत्वपूर्ण हैं। इस अभिमत के पक्षधर अध्येताओं का तर्क यह है कि पाश्चात्य अर्थ व्यवस्थाओं का सफल विश्लेषण करने वाले अर्थशास्त्र की मान्यतायें एवं सिद्धान्त आदिम अर्थव्यवस्थाओं का भी विश्लेषण सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

हर्सकोविट्स के अनुसार अर्थशास्त्र में आधुनिक औद्योगिक समाजों के विश्लेषण में मुख्यतः जिन तथ्यों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है वे सामान्यतः आदिम अर्थव्यवस्थाओं में उसी रूप में नहीं पाये जाते। अतः आदिम अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिये अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रयोग करने वाले मानवशास्त्रियों में इस सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हुये हैं। हर्सकोविट्स का स्पष्ट संकेत आधुनिक औद्योगिक समाजों में अर्थव्यवस्था के तीन प्रमुख निर्णायक तथ्यों, यथा मुद्रा—मूल्य तथा बाजार की ओर है। एक ओर आदिम अर्थ व्यवस्थाओं में इन तीनों तथ्यों की उपस्थिति एवं प्रभाविकता संदिग्ध होती है तथा दूसरी ओर अर्थशास्त्र का मूल आधार ही इन तीनों तथ्यों का विश्लेषण होता है। इस भ्रामक स्थिति की चर्चा करते हुए भी हर्सकोविट्स आदिम समाजों की अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययनों में अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के प्रयोग के पोषक रहे हैं।

रेमंड फर्थ के विचारों के अनुसार आर्थिक मानवशास्त्र के अन्तर्गत पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्थाओं से भिन्न एवं अपेक्षाकृत सरल प्राद्योगिकी वाले समाजों में लोगों के आर्थिक व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है तथा उनकी अर्थव्यवस्थाओं के अर्न्तानिहित सिद्धान्तों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्लेषण अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों एवं मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। फर्थ की मान्यता के अनुसार सभी समाजों में सभी लोगों की आर्थिक समस्याओं में कोई अन्तर नहीं होता। अल्प परिमाण (Scarce) में उपलब्ध आर्थिक स्रोतों को विभिन्न विकल्पों के लिये (यह मानते हुये कि उनके कुछ प्रयोग अन्य की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं) किस प्रकार सुनिश्चित किया जाये यह समस्या सभी समाजों में एक प्रमुख आर्थिक समस्या होती है। अतः फर्थ के अनुसार आर्थिक मानवशास्त्र का प्रमुख उद्देश्य यही है कि आदिम समाज व्यवस्थाओं में, भौतिक पर्यावरण, संस्कृति, प्राद्योगिकी, सामाजिक संरचना एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों आदि के द्वारा निर्धारित सीमाओं में लोग अपने सीमित आर्थिक स्रोतों के वितरण से सम्बन्धित गतिविधियों को कैसे संगठित करते हैं। फर्थ ने इस धारणा का विरोध किया है कि आदिम समाज में व्यक्ति की समस्त आर्थिक गतिविधियों का निर्धारण पर्यावरण एवं सामाजिक संगठन के द्वारा होता है और इस सम्बन्ध में उनकी स्वयं की कोई निर्णायक स्थिति नहीं होती। उन्होंने अपने अध्ययनों में यह भी अनुभव किया कि आधुनिक औद्योगिक एवं जटिल समाजों के लोगों की भाँति वे लोग भी अपनी आर्थिक गतिविधियों में अपने बहुमूल्य आर्थिक स्रोतों एवं साधनों की मितव्ययता एवं अधिक लाभ की उपलब्धि की दिशा में प्रयत्नशील होते हैं। सभी आर्थिक गतिविधियों में उनकी स्वयं की निर्णायक स्थिति होती है। उनकी आर्थिक गतिविधियों को इसी पक्ष के विश्लेषण के लिये हम अर्थशास्त्र की मान्यताओं, सिद्धान्तों एवं अध्ययन प्रणालियों का उपयोग कर सकते हैं। फर्थ ने यह भी स्वीकार किया है कि आदिम एवं कृषक समाजों में जटिल औद्योगिक समाजों की भांति मशीनी उद्योग, बैंक, मुद्रा, संगठित बाजार आदि आर्थिक संस्थायें नहीं होतीं किन्तु यह मानना नितान्त भूल है कि अर्थशास्त्र के अध्ययनों एवं विश्लेषणों में केवल इन्हीं का विवेचन किया जाता है (१९५१, पीपी १२२—१५५)

मानवशास्त्रियों में प्रचलित दूसरे प्रकार के अभिमत के अनुसार आदिम एवं कृषक समाज व्यवस्थाओं के आर्थिक अध्ययनों में परम्परागत अर्थशास्त्र की विश्लेषणात्मक श्रेणियों का प्रयोग सर्वथा अनुपयुक्त है, क्योंकि परम्परागत अर्थशास्त्र में विकसित मान्यताओं, सिद्धान्तों एवं विश्लेषणात्मक श्रेणियों का उद्‌भव एवं विकास आधुनिक औद्योगिक एवं जटिल समाजों की आर्थिक गतिविधियों के सन्दर्भ में हुआ जहां उनके समस्त आर्थिक व्यवहारों का निर्धारण एवं नियंत्रण मुद्रा, मूल्य एवं संगठित बाजार के द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में, इन मानवशास्त्रियों के अनुसार मानव समाजों में परस्पर मौलिक गुणात्मक अन्तर पाये जाते हैं जबकि अर्थशास्त्र के प्रयोग के पोषकों की मान्यता में सभी मानव समाजों में मानव व्यवहारों के स्वरूपों की समानता एवं सामान्य विशेषताओं को अधिक मान्यता देते हुये सभी प्रकार के समाजों की आर्थिक गतिविधियों के विश्लेषण में परंपरागत अर्थशास्त्र की उपयोगिता को स्वीकृत किया है। इस अभिमत के सम्बन्ध में मैलिनोस्की, पोलानी, डाल्टन, सैलिसबरी एवं बोहानन आदि के विचार महत्वपूर्ण हैं।

मैलिनोस्की (१९२२, पीपी १६७—७६) के अनुसार अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता कि सभी समाजों में लोगों में अपने लाभों एवं स्वार्थों में बृद्धि एवं साधनों एवं स्रोतों के मितव्ययी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग की प्रवृत्ति लोकव्यापी है और इसीलिये सभी मानव समाजों में समानतायें पायी जाती हैं, सर्वथा निराधार है और इसीलिये इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उपर्युक्त प्रवृत्ति केवल पाश्चात्य औद्योगिक समाजों में ही पायी जाती है। ट्राब्रियाँड द्वीप निवासियों के अपने अध्ययनों का प्रमाण प्रस्तुत करते हुये उन्होंने यह बताया है कि इस आदिम सामाजिक व्यवस्था में अपनी सामान्य आर्थिक गतिविधियों एवं व्यवहारों में लोग व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा अपने नैतिक कर्तव्यों की ओर ही अधिक ध्यान देते है। इस द्वीप के निवासी अपने पदार्थों के विनिमय एवं वितरण में तीन प्रकार के आर्थिक व्यवहार करते हैं जिन्हें वे क्रमश: 'उरीगुबू' (स्त्रियों एवं बच्चों को औपचारिक रूप से दिये जाने वाले पदार्थ आदि) 'कूला' एवं 'गिमवाली' कहते हैं। इन तीनों प्रकार के विनिमयों में केवल 'गिमवाली जो कि उनकी आर्थिक गतिविधियों का अत्यन्त सीमित पक्ष है, को ही लाभ की प्रेरणा से प्रेरित व्यवहार की श्रेणी में रखा जा सकता है। अन्य दोनों प्रकार के विनिमयों में पारस्परिकता, नैतिक कर्तव्यबोध एवं सहयोगिता ही आर्थिक व्यवहारों के प्रमुख प्रेरणा स्रोत होते हैं। मैलिनोस्की ने इन व्यवहारों की विषय विवेचना प्रस्तुत करते हुये यह बताया कि सांस्कृतिक सामाजिक मूल्य, कर्तव्यबोध एवं सहयोग की भावना ही इन समाजों में आर्थिक व्यवहारों के प्रमुख आधार बनाती हैं। अत: आदिम समाजों में लोगों के आर्थिक व्यवहारों का नियंत्रण एवं संचालन लोगों की व्यक्तिगत अभिलाषाओं अथवा स्वार्थों तथा मानवीय स्वाभाविक प्रवृत्तियों से न होकर संस्कृति के द्वारा होता है। इन्हीं अध्ययनों एवं विवेचनाओं के आधार पर मैलिनोस्की ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रसारित किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि आदिम समाजों में लोगों के जीवन के आर्थिक पक्ष को उनके सामाजिक व्यवहारों से अलग करके देख पाना कठिन होता है जबकि आधुनिक औद्योगिक समाजों में आर्थिक व्यवहारों का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। उन्होंने ट्राब्रियाँड द्वीप के निवासियों का विशद् विवरण प्रस्तुत करते हुये यह दर्शाया कि इस समाज में किसी प्रकार का विनिमय उपयोगिता एवं लाभ की दृष्टि से नहीं किया जाता। सभी प्रकार के विनिमय परम्परा, सामाजिक औचित्य एवं पारस्परिकता की भावना से प्रेरित होते हैं। अत: विशुद्ध आर्थिक उद्देश्यों का सर्वथा अभाव होता है और यही स्थिति विश्व-व्यापी स्तर पर सभी आदिम समाजों में पायी जाती है। सामजिक दायित्व का बोध एवं सामाजिक संगठन को सशक्त करने का अन्तर्निहित उद्देश्य उनके आर्थिक व्यवहारों के प्रेरणा स्रोत होते हैं और इस आधार पर आदिवासी सामाजिक व्यवस्थायें आधुनिक औद्योगिक सामाजिक व्यवस्थाओं से गुणात्मक रूप से भिन्न हो जाती हैं। इनमें व्यक्तिगत लाभ एवं मितव्ययता जैसे प्रेरक तत्वों का अभाव उनकी आर्थिक गतिविधियों एवं सांस्कृतिक-सामाजिक व्यवस्था को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। आर्थिक व्यवहार सांस्कृतिक मूल्यों एवं समाज के संगठनात्मक पहलुओं से जटिल रूप से संबद्ध होते हैं। ऐसी अर्थ-व्यवस्था को मैलिनोस्की एवं इस विचार के पोषक अन्य मानवशास्त्रियों ने मूलत: 'पोषक अर्थव्यवस्था' (Substantive economy) शब्द से सम्बोधित किया है।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त दोनों प्रकार के मतों में मुख्य प्रश्न यह है कि क्या सभी प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक व्यवस्थाओं को एक समान माना जा सकता है जिससे उनके आर्थिक व्यवहारों में लोकव्यापी समानता उत्पन्न होती है, अथवा विभिन्न प्रकार के समाजों यथा आदिम समाज, कृषक समाज, तथा पाश्चात्य आधुनिक औद्योगिक समाजों के गुणात्मक अन्तर उनमें विशिष्ट अर्थव्यवस्थाओं एवं आर्थिक व्यवहारों को जन्म देते हैं जिससे परम्परागत अर्थशास्त्र की मान्यताओं, सिद्धान्तों एवं अध्ययन विधियों के द्वारा इन सभी के अध्ययन नहीं किये जा सकते। दूसरे शब्दों में आधुनिक पाश्चात्य समाजों एवं आदिम समाजों की अर्थव्यवस्थाओं के अन्तर महत्वपूर्ण हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में डाल्टन, पोलानी, बोहानन एवं सैलिसबरी आदि अध्येताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पोलानी (१९५७) ने क्लासिकी प्राचीन सभ्य समाजों के अध्ययन के आधार पर यह दर्शाया कि यद्यपि इन सभ्य समाजों में बहुत सी ऐसी विशेषतायें थीं जिन्हें बाजार पर आधारित अर्थव्यवस्थाओं के समान माना जा सकता है किन्तु पूर्णरूप से संगठित बाजार व्यवस्था एवं बाजार के आधारभूत सिद्धान्तों का अभाव उन्हें एक भिन्न श्रेणी की अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप प्रदान करता है। अतः पोलानी के अनुसार पाश्चात्य सभ्य समाजों एवं आदिम समाजों में संगठित बाजार का पाया जाना अथवा न होना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि अर्थव्यवस्था का पूर्ण रूप से बाजार मूलक सिद्धान्तों से नियंत्रित होना अथवा न होना अधिक महत्वपूर्ण तथ्य है जो कि विभिन्न समाजों की अर्थव्यवस्थाओं को गुणात्मक आधार पर एक दूसरे से भिन्न करता है। पोलानी के इस महत्वपूर्ण विचार की डाल्टन ने अधिक व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की है।

डाल्टन (१९६१ : पीपी १-२५) के अनुसार आदिम एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में गुणात्मक आधार पर अंतर पाये जाते हैं। आदिम अर्थव्यवस्थाओं में मशीनी प्राद्योगिकी का अभाव, सर्वव्यापी संगठित बाजार एवं सर्वउद्देशीय मुद्रा के प्रचलन का अभाव उन्हें गुणात्मक आधार पर पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं से भिन्न कर देते हैं जिनमें तीनों स्थितियां उनकी अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार होती हैं। आदिम अर्थव्यवस्थाओं मे उपर्युक्त तीनों स्थितियों के अभाव के कारण उनके आर्थिक विनिमयों को सामाजिक दायित्व की भावना से अलग करके नहीं समझा जा सकता। इन तीनों स्थितियों के अभाव तथा बन्धुत्व सम्बन्ध एवं अन्य सामाजिक सांस्कृतिक पक्षों से प्रभावित होने के कारण आदिम अर्थव्यवस्थायें एक ऐसे अभेद्य विश्व के समान हो जाती हैं जिसमें मुद्रा-मूल्य एवं बाजार के त्रिगुणात्मक सैद्धान्तिक पक्षों के विश्लेषणों के लिये विकसित परम्परागत अर्थशास्त्र की प्रणालियों का प्रयोग सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता। मानवशास्त्रियों ने विभिन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययनों से इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि संसार में बाजार संगठन शक्तियों पर आधारित एवं मुद्रा-मूल्य-बाजार तंत्र से संचालित अर्थव्यवस्थाओं की संख्या अभी भी मुद्राविहीन तथा बाजार तंत्र से मुक्त अर्थव्यवस्थाओं से कम है। इन समाजों एवं संस्कृतियों की अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण के लिए पाठ्य-पुस्तकों में संयोजित तथा यांत्रिकी सिद्धान्तों एवं गणितीय प्रारूपों पर विकसित अर्थशास्त्र की पद्धतियों की अपेक्षा मानव शास्त्रियों द्वारा विकसित एथनोग्राफिक विश्लेषणात्मक पद्धति ही अधिक श्रेयस्कर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाल्टन ने अपने विचार व्यक्त करते हुये यह प्रदर्शित किया है कि पाश्चात्य अर्थव्यस्थाओं में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर सर्वव्यापी संगठित बाजार के नियंत्रण एवं प्रभाव के कारण इन समाजों के सभी व्यक्तियों को इस विशिष्ट नियम के अनुरूप अपनी आर्थिक गतिविधियों को संरूपित करना पड़ता है कि प्रत्येक व्यक्ति की जीविका बाजार में क्रय-विक्रय प्रक्रिया के द्वारा ही होती है। यहाँ 'बाजार' शब्द के प्रयोग का अर्थ किसी स्थान विशेष की हाट से न होकर सर्वव्यापी अदृश्य बाजार तंत्र है जिसके आधारभूत यंत्र मुद्रा-मूल्य तथा मांग-पूर्ति के समीकरण होते हैं। किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा के माध्यम से निर्धारित मूल्यों में क्रय-विक्रय को संगठित करने वाली प्रक्रियाओं को ही बाजार का विनिमय (Market Exchange) कहते हैं। पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में यह सभी विनिमय साधारणतया हाटों एवं दुकानों से परे एक अदृश्य बाजार में होते हैं जिसके प्रभाव चुम्बकीय क्षेत्र की भांति सभी आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित एवं परिवर्तित करते रहते हैं। सभी विनिमयों का आधार मुद्रा में निर्धारित मूल्य होते हैं। परिणामस्वरूप बाजारों पर आधारित एवं बाजार सिद्धान्तों पर संगठित अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषता यह होती है कि इनमें व्यक्तियों का जीवन निर्वाह क्रय-विक्रय की प्रक्रिया द्वारा ही होता है तथा उत्पादन के सभी प्रमुख तत्वों, यथा, प्राकृतिक स्रोत, श्रम, भूमि, वित्त, परिवहन तथा तैयार माल एवं सेवायें, सभी का विनिमय एक समान बाजार प्रक्रिया के द्वारा होता है। इस प्रक्रिया को एक नियमित स्वरूप प्रदान करते हुये अर्थशास्त्री यह मानकर चलते हैं कि बाजार में निर्धारित मूल्य श्रम एवं साधनों के प्रयोगों को पुनर्व्यवस्थित करते हैं। अर्थात, यही मूल्य आर्थिक साधनों स्रोतों के वैकल्पिक प्रयोगों तथा वेतन, लाभ, किराया एवं ब्याज के रूप में लाभों को निर्धारित करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में 'माल्थस' एवं 'रेकार्डो' से लेकर 'मार्शल' तक बाजार के संगठन एवं मूल्य निर्धारण शक्तियों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं के विश्लेषण अर्थशास्त्र के प्रमुख चिंतनीय विषय रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन एवं लाभांश के निर्धारण में मूल्यों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। बाजार व्यवस्था स्वनियंत्रित रूप से कार्य करती है। अर्थात अर्थव्यवस्था के सभी तत्व बाजार मूल्यों में परिवर्तनों के साथ-साथ गतिशील होते हैं। मूल्यों में परिवर्तन क्रेताओं एवं विक्रेताओं दोनों को वस्तुओं की लागत में कमी तथा अधिक मुद्रा लाभ की दिशा में प्रयास करने के लिये विवश कर देते हैं। साथ ही उत्पादन की प्रक्रियायें, लक्ष्य एवं उत्पादों के विकल्प के निर्णय भी बाजार मूल्यों से नियंत्रित एवं निरूपित होते हैं। अधिक लाभ की कामना एवं कम से कम लागत की दिशा में सक्रियता बनी रहती है। पोलानी (१९५७) के अनुसार बाजार पर आधारित तथा बाजार पर आश्रित अर्थव्यवस्था बाजार शक्तियों द्वारा नियंत्रित समाजों में ही हो सकती है। ऐसी ही अर्थव्यवस्था में उद्योग से सम्बन्धित तीनों पक्षों यथा श्रम, भूमि एवं मुद्रा का समावेश होता है।

बाजार पर आश्रित एवं बाजार द्वारा नियंत्रित औद्योगिक अर्थव्यवस्थायें अत्यन्त विकेन्द्रित भी होती हैं। इनमें व्यक्तिगत लाभ की आकांक्षा से व्यक्तिगत स्तर पर किये जाने वाले विनिमय होते हैं जो कि परोक्ष रूप से एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। व्यवसायिक प्रतिष्ठान इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्थाओं की इकाइयां होते हैं। अत: ऐसा प्रत्येक मसाज केवल आत्म तुष्टि में संलग्न व्यक्तियों का एक संग्रह मात्र होता है। इसीलिये पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्थायें गुणात्मक आधार पर उन समाजों की अर्थ व्यवस्थाओं से भिन्न हो जाती हैं जिनका नियंत्रण संगठित बाजार के द्वारा नहीं होता। इन समाजों की अर्थ व्यवस्थाओं में संगठित बाजार का अभाव, तटस्थ मूल्य एक समान आपूर्ति तथा अपरिवर्तनशील मांग, वस्तुओं की निश्चित दरें, मुद्रा का अभाव अथवा एक से अधिक प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन एवं उनकी विशिष्ट उपयोगिता एवं परम्परागत समांक, बन्धुत्व सम्बन्धों, जादू आदि का आर्थिक व्यवहारों पर प्रभाव एवं उपहारों के रूप में विनिमय आदि ऐसी विशेषतायें हैं जो आधुनिक औद्योगिक अर्थ व्यवस्थाओं से इन्हें गुणात्मक आधार पर भिन्न कर देती हैं। सभी आदिवासी समाजों में उपर्युक्त विशेषतायें विभिन्न अंशों में पायी जाती हैं। संगठित बाजारों एवं सर्व उद्देशीय मुद्रा का अभाव ही इन समाजों की आर्थिक गतिविधियों को मुद्रा—मूल्य एवं बाजार के यांत्रिक नियंत्रण से मुक्त कर सामाजिक सांस्कृतिक प्रभावों से सम्बद्ध कर देते हैं। प्रत्येक समाज में आवश्यक पादार्थिक वस्तुओं की आपूर्ति के लिये किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था का होना आवश्यक है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रत्येक समाज में बाजार द्वारा नियंत्रित विशिष्ट संस्थायें भी हों जिनके विश्लेषण के लिए अर्थशास्त्र के औपचारिक आर्थिक सिद्धान्तों को गढ़ा गया था। वास्तव में तथ्यों के आधार पर दिन प्रतिदिन ऐसे प्रमाणों में वृद्धि होती जा रही है जिनके अनुसार बाजार के आधार पर गठित अर्थ व्यवस्थायें ऐतिहासिक एवं मानवशास्त्रीय दृष्टि से विरल होती जा रही हैं।

कार्ल पोलानी (१९५७) ने अविकसित एवं अल्प विकसित समाजों में दो ऐसे आर्थिक संगठनात्मक स्थितियों की चर्चा की है जिनका विश्लेषण परम्परागत अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों के द्वारा संभव नहीं है। इन समाजों में उत्पादन एवं वितरण बाजार विनिमय से भिन्न, विशेष प्रकार के आदान–प्रदान के स्वरूपों से संगठित होते हैं। उत्पादन एवं वितरण व्यवस्था में लाभ की कामना का कोई स्थान न होकर पारस्परिक सहयोग एवं सामाजिक दायित्व की भावनायें तथा परंपरागत मानदण्ड ही प्रेरक तत्व होते हैं। Reciprocity अर्थात उपहार एवं प्रति उपहार का आदान–प्रदान तथा पुनर्वितरण Re distribution अर्थात विभिन्न उत्पादों एवं सेवाओं का समाज के उच्च स्तर तक पहुंचना जो कि पुन: प्राप्त द्रव्य एवं सेवाओं को जन सामान्य में वितरित कर देते हैं। राजा, धार्मिक क्रियाओं से संबद्ध व्यक्ति अथवा जनजाति का मुखिया आदि ही इन समाजों में उच्चतम स्थिति में होते हैं जो कि प्राप्त सेवाओं एवं पदार्थों को परंपरा एवं सामाजिक नियमों के द्वारा निर्धारित केन्द्रों तक उनका वितरण कर देते हैं जहां से उनका पुनर्वितरण जन-सामान्य तक होता है। यह दोनों ही वितरण प्रणालियां बाजार–मूल्य मुद्रा तंत्र से मुक्त पारस्परिक सहयोग एवं सामाजिक संगठनात्मक उद्देश्यों से युक्त होती हैं लाभ अथवा मितव्यता का इनमें कोई स्थान नहीं होता और न ही अर्थशास्त्र में विकसित प्रणालियां एवं मान्यतायें तथा सिद्धान्त इनका विश्लेषण कर सकते हैं। पोलानी के विचारों का ही अनुसरण करते हुये डाल्टन ने स्पष्ट रूप से यह तर्क उपस्थित किया कि अर्थशास्त्र का उद्भव उद्देश्य मूलक था उसका विकास संगठित बाजार पर आधारित अर्थ-व्यवस्थाओं के विश्लेषण एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन के लिये ही हुआ था। मूल्यों एवं मुद्रा का प्रचलन इस विषय के प्रमुख विश्लेषणात्मक तत्व हैं। (डाल्टन १९६०, बोहानन एवं डाल्टन १९६२)

पोलानी की भांति डाल्टन ने भी यह स्वीकार किया है कि कुछ आर्थिक तत्व ऐसे हैं जो समान रूप से सभी मानव समाजों की अर्थव्यवस्थाओं में पाये जाते हैं। सभी समाजों में 'पोषण' एक महत्वपूर्ण जैवकीय आवश्यकता है तथा साथ ही कुछ सामान्य सामाजिक आवश्यतायें भी होती हैं। इनकी पूर्ति से सम्बन्धित प्रयासों के संगठन में किसी न किसी प्रकार की प्रक्रिया का पाया जाना भी सभी समाजों की अर्थव्यवस्थाओं की विशेषता है। इनकी पूर्ति से सम्बन्धित प्रयासों एवं व्यवस्थाओं के स्वरूपों को ही हम पोषक अर्थव्यवस्था (Substantive Economy) कहते हैं और इसी दृष्टिकोण से हम यह कह पाते हैं कि सभी मानव समाजों में आर्थिक व्यवस्थायें होती हैं। वस्तुतः इन्हीं आर्थिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण ही आर्थिक मानवशास्त्र का अध्ययन विषय है तथा इन अध्ययनों में मानवशास्त्र में विकसित एथनोग्राफिक विश्लेषण प्रणालियों का ही अनुशीलन करना आवश्यक है क्योंकि इन समाजों के आर्थिक व्यवहार अधिकांशतः लोगों के बंधुत्व व्यवहारों एवं बंधुत्व व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होते हैं जो कि औद्योगिक समाजों के पूंजीवादी उत्पादन एवं बाजार-मुद्रा विनिमय से भिन्न होते हैं।

साहिलिन्स (१९४०) ने अफ्रीका की जनजातियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुये यह बताया कि अधिकांश अफ्रीकी समाज एक ऐसी अर्थव्यवस्था में जीवन यापन कर रहे हैं जो कि पाश्चात्य अर्थ व्यवस्था से निम्नलिखित स्थितियों में सर्वथा भिन्न हैं।

(अ) यह सभी अर्थ व्यवस्थायें प्रमुख रूप से 'पोषकी' अर्थ व्यवस्थायें हैं जिनमें उत्पादन में लगे श्रम में अति सामान्य अन्तरों के अतिरिक्त परस्पर अन्य कोई मौलिक अन्तर नहीं पाया जाता और न ही पूंजी के केन्द्रीयकरण के उपादान के रूप में किसी प्रकार का मशीनीकरण ही पाया जाता है जिसे हम किसी रूप में व्यावसायिक तथा औद्योगिक पूंजी कह सकें।

(ब) दैनिक व्यावहारिक उपभोक्ता वस्तुयें ही धन (Wealth) के रूप में पायी जाती हैं जिनका प्रयोग अतिरिक्त उपभोक्ताओं अथवा निर्भरता के लिये किया जाता है।

(स) किसी भी रूप में धन वर्ग-व्यवस्था को जन्म नहीं देता। समाज में पद, प्रतिष्ठा, तथा कार्य से सम्बन्धित अंतर धन से किसी भी रूप में जुड़े हुये नहीं होते।

(द) पोषकी पदार्थों का उत्पादन एवं इस उत्पादन प्रक्रिया से सम्बन्धित उपकरणों आदि का उत्पादन एवं जीवन रक्षा से सम्बन्धित आर्थिक क्रियायें ही इन अर्थव्यवस्थाओं में व्यक्तियों के आर्थिक व्यवहारों के प्रमुख स्वरूप होते हैं।

इन अर्थ व्यवस्थाओं के अध्ययन के परिणामस्वरूप साहलिन्स (१९६५) ने कुछ सामान्य विचारों की ओर भी संकेत किया है। उनके अनुसार ऐसी अर्थव्यवस्थायें जिनमें समस्त उत्पादन लोगों के प्रयोग एवं उपभोग के लिये हो अर्थात विनिमय के लिये उत्पादन न किया जाता हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें उत्पादन के साधनों एवं स्रोतों पर नियंत्रण का विकेन्द्रीकरण होता है। यह नियंत्रण अधिकांशत: स्थानीय एवं पारिवारिक होता है। इसके अतिरिक्त विनिमय के अभाव में, उपभोक्ता सामग्रियां अत्यन्त सीमित होती हैं। वस्तुत: संपूर्ण अर्थव्यवस्था बन्धुत्व सम्बन्धों से आरोपित एवं जकड़ी हुयी होती है। आर्थिक आदान-प्रदान के क्षेत्र में अन्योन्यता एवं पुनर्वितरण के लिये एकत्रीकरण ही विनिमय एवं आर्थिक आदान प्रदान के स्वरूप पाये जाते हैं। दूसरे शब्दों में, इन समाजों में वस्तुओं एवं साधनों का स्वामित्व अथवा अधिक परिमाण में उनका उपभोग प्रतिष्ठा का मूल आधार न होकर उनके वितरण का अधिकार एवं इस कार्य से सम्बन्धित सदाचार एवं सहयोग की भावना ही समुदाय प्रमुख की प्रतिष्ठा के आधार बनते हैं। अत: एक अति सामान्य परिपेक्ष में देखते हुए यह कहा जा सकता है कि संपूर्ण संस्कृति के उद्‌विकास में उत्पादकता, जनजातीय अर्थव्यवस्था तथा राजनैतिक शक्ति का विकास समानान्तर हुआ है। उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ जनजातीय अर्थ-व्यवस्था एवं राजनैतिक शक्ति विकसित हुई। जितना ही उत्पादकता में वृद्धि होती जाती है उतना ही जनजातीय अर्थव्यवस्थाओं में और अधिक विभेदीकरण होता जाता है तथा वृहद् अर्थ व्यवस्थायें विकसित होती हैं और इसके साथ ही साथ इन समाजों के नायकों के अधिकारों एवं शक्ति में भी वृद्धि होती है।

अधिकांश अर्थशास्त्री आदिम अर्थ व्यवस्थाओं को अर्थशास्त्र के अध्ययन के अनुरूप सार्थक अध्ययन विषय नहीं मानते हैं और इसीलिये पाश्चात्य अर्थशास्त्र में आदिम अर्थव्यवस्थाओं की उपेक्षा हुई है। दूसरी ओर मानवशास्त्री भी आदिम समाजों के आर्थिक पक्ष के अध्ययनों में अर्थशास्त्रीय मान्यताओं, सिद्धान्तों एवं अध्ययन प्रणालियों को निरर्थक मानते रहे हैं। प्रारंभिक मानवशास्त्रीय अध्ययनों में आदिम संस्कृतियों के वर्णनों में लोगों की जीविका के साधनों, उनकी भौतिक संस्कृति एवं प्राद्योगिकी से संबन्धित पक्षों को ही उनकी अर्थ व्यवस्था का प्रमुख आधार माना जाता रहा है। मानवशास्त्रियों ने इस तथ्य को भी अधिक महत्व प्रदान किया कि आदिम संस्कृतियों में लोगों के सामान्य दैनिक जीवन का अधिकांश समय आर्थिक गतिविधियों में ही व्यतीत होता है। यहाँ तक कि उनके सामान्य जीवन के अन्य पक्ष भी प्राय: आर्थिक गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होते हैं। अत: आदिम संस्कृतियों के अध्ययनों में अर्थव्यवस्था, आर्थिक संगठन, भौतिक सांस्कृतिक तत्वों एवं प्राद्योगिकी आदि के विवरणों को वरीयता प्रदान की जाती रही है। सामान्य रूप से आर्थिक शब्द का मानवशास्त्रीय बोध प्रमुख रूप से पोषण एवं पोषकी व्यवस्था के अर्थ में ही रहा है। अर्थात, ऐसे संसाधनों एवं पदार्थों की आपूर्ति जिससे लोगों की जैवकीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। आदिम समाजों में खाद्य पदार्थों की उपयोगिता केवल भोज्य पदार्थों तक शारिरिक आवश्यकताओं के लिये ही सीमित न होकर, लोगों के सामाजिक, धार्मिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति से भी सम्बन्धित होती है। अत: खाद्य पदार्थों, निवास, परिधान आदि के लिये आवश्यक पदार्थों की उपलब्धि के संदर्भ में प्राद्योगिकी एवं प्रास्थितिकी ही अध्ययन का प्रमुख विषय बने रहे। इसीलिये, आदिम अर्थव्यवस्थाओं की चर्चा में परंपरागत रूप से मानवशास्त्री मत्स्यायन, आखेट, बागबानी एवं कृषि आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से संबंधित प्राविधिक प्रक्रियाओं, मुद्रा विहीन अथवा एक या एक से अधिक प्रकार की मुद्राओं के माध्यम से विनिमय व्यवस्थाओं, हाटों आदि का अभाव अथवा उनकी विद्यमानता तथा अंतर्सामुदायिक विनिमय, श्रम एवं सेवाओं का संगठन तथा भूमि का उपयोग आदि विषयों को वन्धुत्व समूहों, धर्म, राजनैतिक सत्ता तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं के परिप्रेक्ष में चर्चा का विषय मानते रहे हैं। इन विषयों की चर्चा में काफी समय तक मानवशास्त्रियों ने पाश्चात्य औपचारिक अर्थशास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता को महसूस नहीं नहीं किया। एथनोलॉजिस्ट अथवा सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्री होने के नाते संस्कृति ही उनके अध्ययन का प्रमुख लक्ष्य रहा है। उपर्युक्त आर्थिक विषयों की चर्चा एवं व्याख्या सांस्कृतिक–विविधताओं की विवेचना के संदर्भ में करते रहे हैं। विशेष रूप से द्वितीय महायुद्ध के उपरांत कुछ मानवशास्त्रियों ने आदिम अर्थ व्यवस्थाओं की व्याख्या में औपचारिक अर्थशास्त्र की मान्यताओं का प्रयोग प्रारम्भ किया। इसी प्रयोग ने परंपरागत आदिम आर्थिकी (Primitive Economics) के आर्थिक मानवशास्त्र (Economic Anthropology) में रूपाँतरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ किया।

मानवशास्त्रीय मान्यता में विविध पर्यावरणों में निवास करते हुये उत्पादन व्यवस्थाओं एवं अन्य सांस्कृतिक भेदों के बावजूद भी सभी मानव समूहों में व्यक्तियों का जैव-सामाजिक अस्तित्व विभिन्न पदार्थों की अनवरत आपूर्ति पर निर्भर करता है। अतः एक अत्यंत व्यापक दृष्टिकोण में जीविका के लिये आवश्यक पादार्थिक आपूर्ति को ही आर्थिक शब्द का अर्थ माना गया। प्रख्यात आर्थिक इतिहासकार कार्य पोलानी ने आर्थिक शब्द की इसी अवधारणा की विषद व्याख्या प्रस्तुत की है जिसे आर्थिक शब्द की 'पोषकी' अवधारणा (Substantive meaning of the term Economy) कहा जाता है। पोलानी (१९५६:२३९ २७२) के अनुसार आर्थिक शब्द एक दूसरे से भिन्न दो अर्थों का सम्मिश्रण है जो एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। इसका एक अर्थ उपर्युक्त अर्थों में पोषकी (Substantive) अर्थ है जिसमें जैवकीय एवं अन्य सामाजिक आवश्यकताओं दायित्वों के लिये पादार्थिक आयोजन एवं आपूर्ति महत्वपूर्ण हैं। इस अर्थ की संकल्पना में किसी न किसी प्रकार की आर्थिक संरचना की मान्यता परोक्षरूप से अंतर्निहित है। 'आर्थिक' शब्द के इसी भाव की और भी स्पष्ट व्याख्या अरेन्सबर्ग के लेखों में मिलती है जिसका उल्लेख आवश्यक है। अरेन्सबर्ग (१९५६:११०) के अनुसार:

> "एथनोग्राफिक विवरणों में आर्थिक समानताओं की खोज में मानव मात्र की सामान्य समस्याओं के असमान विकल्पों की खोज का ही प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। न ही यह अन्य समाजों एवं संस्कृतियों में आधुनिक पाश्चात्य आर्थिक संस्थाओं के प्रकार्यात्मक समांककों का अध्ययन है। वस्तुतः यह एक संशय का विषय है कि पोषण के अतिरिक्त मनुष्य की और भी कोई आर्थिक समस्यायें हो सकती हैं.............."
> (रूपांतरित)

पोलानी ने आर्थिक शब्द के एक दूसरे अर्थ को प्रस्तुत करते हुये बताया कि औपचारिक अर्थशास्त्र में 'आर्थिक' (Economic) शब्द का प्रयोग मितव्यता (Economical or

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

economizing) के अर्थ में होता है जिसका इस शब्द के उपरोक्त पोषकी अर्थ (Substantive meaning) से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। इसी मितव्यता से संबंधित कुछ नियम होते हैं जिनका उद्देश्य कुछ विशेष उपलब्धियों को अधिकतम की सीमा तक पहुंचाना तथा किन्हीं विशेष साधनों का न्यूनतम प्रयोग निर्धारित करना होता है। ये नियम अभाव (Scarcity) की अवधारणा पर आधारित होते हैं। वास्तव में औपचारिक अर्थशास्त्र का उद्भव ही पाश्चात्य औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के लिये ही हुआ था जिसमें सर्व-व्यापी बाजार तथा एक सामान्य-सर्व उद्देशीय मुद्रा का प्रचलन होता है। जहाँ आर्थिक शब्द का 'पोषकी' अर्थ (Substantive meaning) सार्वभौमिक रूप से व्यापक स्तर पर सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिये सार्थक मान्यता रखता है वही औपचारिक अर्थ शास्त्र में मितव्ययतावादी आर्थिक शब्द केवल योरोपीय पाश्चात्य समाजों के सीमित दायरे में ही सार्थक सिद्ध होता है।

कुछ मानवशास्त्रियों ने आदिम समाजों की अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययनों में विशेष रुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने इन अर्थव्यवस्थाओं का अधिक सुचारु रूप से विश्लेषण करने की नीयत से अर्थशास्त्रीय अध्ययन पद्धतियों सिद्धान्तों आदि को अध्ययन करके उन्हीं विश्लेषणात्मक प्रविधियों का प्रयोग आदिम अर्थव्यवस्थाओं के विश्लेषण एवं विवेचनाओं के लिये उचित माना है। इस संदर्भ में रेमंडफर्थ तथा हर्सकोविट्स को इस प्रयोग का जनक माना जा सकता है। इन मानवशास्त्रियों की यह मान्यता रही है कि अर्थशास्त्र सामान्य प्राकृतिक नियमों एवं तर्क पर आधारित एक सुगठित विज्ञान है जिसने जटिल पाश्चात्य औद्योगिक अर्थ व्यवस्था का सफलता पूर्वक अध्ययन किया है अतः आदिम समाजों की अजटिल एवं अग्रन्थिल अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन में तार्किक विश्लेषणात्मक आधारों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। हर्सकोविट्स के अनुसार :

"यह एक संयोग का ही विषय है कि अर्थशास्त्र में आधुनिक पाश्चात्य औद्योगिक अर्थ-व्यवस्थाओं के उन विशिष्ठ पक्षों की ओर ही ध्यान दिया जाता रहा है जो कि आदिम अर्थ-व्यवस्थाओं में नहीं पाये जाते। इसी लिये यह मानना कि अर्थशास्त्रीय मान्यताओं, सिद्धांतों आदि का प्रयोग आदिम अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययनों में नहीं किया जा सकता—अपने में एक बड़ी भूल है।"

वास्तव में पाश्चात्य अर्थ व्यवस्थाओं में मशीनी उद्योग, व्यवसायिक विशिष्टीकरण, लाभ केंद्रिता, बैंकिग अंतरराष्ट्रीय व्यापार आदि की विद्यमानता आदिम अर्थव्यवस्थाओं के पोषण केंद्रित, मुद्रा विहीन एवं संगठित बाजार रहित स्वरूप में उन्हें इतना भिन्न बना देती है कि अर्थशास्त्रीय अध्ययनों में पूर्णतया आदिम अर्थ व्यवस्थाओं की उपेक्षा हुयी है तथा आदिम अर्थव्यवस्थाओं का परंपरागत रूप से अध्ययन करने वाले मानवशास्त्रियों को आदिम एवं सभ्य पाश्चात्य अर्थव्यवस्थाओं में कोई समानता प्रतीत नहीं हुयी। किंतु गत पचास वर्षों के दौरान अर्थशास्त्रीय अध्ययन प्रणालियों एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग कुछ मानव शास्त्रियों ने आदिम अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययनों में करना शुरू किया। इन्हीं अध्ययनों ने आधु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक आर्थिक मानवशास्त्र (Economic anthropology) को जन्म दिया। मानवशास्त्रीय अध्ययनों में समाजों एवं संस्कृतियों में एक स्वतंत्र आर्थिक क्षेत्र की विद्यमानता को अत्यंत कठिनाई से स्वीकृति मिल सकी। 'आदिम आर्थिकी (Primitive Economics) के स्थान पर 'आर्थिक मानवशास्त्र' (economic anthropology) शब्द का प्रयोग आदिम समाजों एवं संस्कृतियों में एक स्वतंत्र आर्थिक क्षेत्र की मान्यता की अभिव्यक्ति का परिणाम था। यह परिवर्तन तथा मान्यता मानवशास्त्रियों में सैद्धांतिक प्रश्नों की ओर बढ़ती हुई रुचि को उजागर करती है। वास्तव में परंपरागत रूप से मानवशास्त्रियों ने आदिम समाजों एवं संस्कृतियों में आर्थिक गति विधियों की वृहद सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों से अलग स्वतंत्र रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। सामान्य सामाजिक सांस्कृतिक जीवन में पादार्थिक अंतः स्तर के रूप में, अन्य सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भों से जकड़ी हुयी स्थिति में मान्य अर्थ व्यवस्था जिसमें पादार्थिक वस्तुओं—उपकरणों एवं प्राकृतिक स्थितियों का ही महत्व अधिक था यही धारणा आदिम अर्थ व्यवस्थाओं की मान्य थी जिसके परिणामस्वरूप सैद्धांतिक प्रश्नों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं मानी गई। दूसरी ओर मानवशास्त्रीय अध्ययन में तुलनात्मक परिप्रेक्ष एवं स्वरूपात्मक विविधताओं को सदैव वरीयता प्रदान किये जाने के कारण भी उनके अध्ययनों एव विश्लेषणों मे आर्थिक संगठन सदैव सामाजिक संगठन का अनुगामी बना रहा। इस मानसिकता से वे अपने को मुक्त नहीं कर सके। किंतु गत दस वर्षों के दौरान पादार्थिक वस्तुओं के महत्व को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखा गया है। इस प्रकरण पर मार्शल सह लिन्स ने अपने एक लेख में (1965 : P 139) विचार व्यक्त करते हुये लिखा है कि सामाजिक संबंधों के सतत विस्तार में कुछ पादार्थिक वस्तुओं का आदान-प्रदान, विनिमय एक क्षणिक घटना मात्र होती है। सामाजिक संबंध अंततः पादार्थिक विनिमय के नियंत्रक होते हैं। सहलिन्स के विचार में पादार्थिक वस्तुओं के निर्माण एवं विनिमय तथा सामाजिक संबधों में एक प्रकार की पारस्परिकता देखी जा सकती है क्योंकि जहां कुछ विशेष सामाजिक संदर्भ किसी पादार्थिक विनिमय को अवरोधित कर सकते हैं वहीं किसी विशेष पादार्थिक विनिमय का विश्लेषण एक विशेष सामाजिक संदर्भ को व्यक्त कर सकता है।

रेमंड फ़र्थ के विचार में सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययनों में आर्थिक व्यवहार में सामाजिक संबधों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। वस्तुओं के विनिमय में सामाजिक संबंधों को निर्णायक एवं नियंत्रक माना गया है। यहाँ तक कि व्यक्तियों के आर्थिक व्यवहारों में स्वेच्छा एवं विकल्प चयन को गौण मानते हुये सामाजिक परंपराओं के दासत्व की स्थिति को मान्यता दी गई है। वस्तुओं एवं पदार्थों तथा सेवाओं के प्रयोग में सामाजिक संबंधों के नियन्त्रण को इतना अधिक महत्व प्रदान किया गया है कि 'अभाव (Scarcity) की अवधारणा एवं मान्यता की उपेक्षा हुयी है।'' आर्थिक समागम में सामाजिक संबन्धों की वरीयता तथा विशुद्ध आर्थिक पक्षों की उपेक्षा के क्रम में मानवशास्त्रियों ने व्यक्तियों के व्यवहारों को सदैव सामाजिक स्थितियों एवं कारकों के परिणामी रूप में देखने की परंपरा स्थापित कर ली। अर्थशास्त्री लीयोनार्ड ज्वाय (1967 : 30-32) ने इस स्थिति की व्याख्या प्रस्तुत करते हुये मत व्यक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है कि आदिम समाजों में अर्थ व्यवस्था के संबंध में उपर्युक्त मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण के प्रवर्तक डाल्टन, पोलानी एवं उनके सहयोगी सम विचारकों ने प्रमुख रूप से वस्तु विनिमय के क्षेत्र में वास्तविक लाभ के स्थान पर पद-प्रतिष्ठा एवं सामाजिक संबंध की स्थिति को ही प्रधानता प्रदान की है। इन समाजों में उत्पादन एवं आर्थिक स्रोतों के निर्धारण के क्षेत्र में सामाजिक तथ्यों की वरीयता के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया। केवल वस्तु विनिमय व्यवहार स्वरूपों के आधार पर निर्धारित मान्यताओं को संपूर्ण आर्थिक व्यवहार क्षेत्र पर आरोपित किया गया है।

आधुनिक आर्थिक मानवशास्त्र (Economic anthropology) की समीक्षा आधुनिक सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्र के संदर्भ में आवश्यक हो जाती है। यदि आर्थिक मानवशास्त्र के प्रणेताओं सर्वश्री रेमंड फर्थ एवं हर्सकोविट्स के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये इसकी व्याख्या की जाये तो परंपरागत आदिम समुदायों के आर्थिक विवरणों एवं आधुनिक पाश्चात्य अर्थशास्त्र के रूढ़िवादी सैद्धांतिक अध्ययनों के एक ऐसे सम्मिश्रण के रूप में हम इसे मान सकते हैं जिसमें दोनों प्रकार के अध्ययनों के समान उद्देश्य पक्षों का समावेश है। दोनों प्रकार के अध्ययनों में आर्थिक स्रोतों के विनियोजन के निर्धारक तत्वों एवं उत्पादन वितरण व्यवस्था के विश्लेषणों पर समान रूप से ध्यान दिया गया है। आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में अप्रत्याशित रूप से विस्तार हुआ है। द्वितीय महायुद्ध के उपरांत विश्व के राजनैतिक भूगोल में महान परिवर्तन हुये हैं। सारी दुनिया में फैले हुये योरोपीय उपनिवेशों का समापन और उसी के साथ साथ अफ्रीका, एशिया, लाविनी अमेरिका एवं सागरीय द्वीप समूहों की निवासी जन जातियों ने सदियों से चले आ रहे योरोपीय देशों की दासता के बंधनों मुक्ति प्राप्त कर और अपने अतीत की अभावग्रस्तता एवं प्राद्यौगिकी पिछड़ेपन के साथ अल्प विकसित एवं विकास शील देशों के तृतीय विश्व की स्थापना की। विकासोन्मुख नव राष्ट्रों के इस वर्ग में अधिकांश, विशेषरूप से अफ्रीकी, लातिनी अमेरीकी एवं सागरीय द्वीप समूहों के देश जनजातीय परंपराओं वाले लोगों के देश हैं जो तीव्र गति से अपने सीमित साधनों एवं दृढ़ निश्चय के सहाने विकास की प्रक्रिया में सक्रिय हैं। गत कुछ वर्षों के दौरान तीसरे विश्व के इन देशों में विकास की तीव्र गति एवं यातायात तथा संचार साधनों में वृद्धि के परिणामस्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों को एक साथ इन अध्यनन क्षेत्रों में एक नयी दृष्टि से किये जाने वाले अध्ययनों में परस्पर सहयोग के अवसर प्राप्त हुये हैं। विकास की प्रक्रिया आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक तथ्यों का एक ऐसा जटिल स्वरूप है जिसके अध्ययन में न तो अर्थशास्त्री सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ की अवहेलना कर सकते थे और न ही सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्री सभ्य समाजों के बढ़ते हुये आर्थिक प्रभावों की उपेक्षा कर सकते थे। आर्थिक वृद्धि एवं विकास के इस अध्ययन क्रम में दोनों विषयों के विशेषज्ञों में अनुभवों के पारस्परिक आदान प्रदान ने रेमंड फर्थ एवं हर्सकोविट्स के द्वारा प्रस्तावित रूप रेखा को स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया है।

उपर्युक्त नव राष्ट्रों में आधुनिक प्राद्योगिकी के प्रसार के साथ साथ एक नयी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अर्थ व्यवस्था का सूत्रपात हुआ है जिसका मौलिक स्वरूप पूर्ववत जनजातीय है किंतु विश्वव्यापी आधुनिक पाश्चात्य अर्थ व्यवस्था का सूत्रपात हुआ है जिसका मौलिक स्वरूप पूर्ववत जनजातीय है किंतु विश्वव्यापी आधुनिक पाश्चात्य अर्थ व्यवस्था के संसर्ग ने एक नई अर्थ व्यवस्था का आरोपण करना प्रारंभ किया है जिससे यह सभी नव राष्ट्र एक विचित्र आर्थिक स्थिति से गुज़र रहे हैं। मानवशास्त्रियों को इन अर्थव्यवस्थाओं के अध्ययन क्रम में उन अवधारणाओं एवं सिद्धांतों से परिचित होना पड़ा है जो अभी तक केवल पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों के अध्ययन विषय रहे हैं। दूसरी ओर अर्थशास्त्रियों का इन नवीन अध्ययन क्षेत्रों में ऐसी परिवर्तित हो रही व्यवस्थाओं से साक्षात्कार हुआ है जिनसे वे अभी तक परिचित नहीं थे किंतु विकास के अर्थशास्त्र के संदर्भ में उन्हें सामाजिक-सांस्कृतिक मानवशास्त्रीयों के सहयोग से इन व्यवस्थाओं की प्रक्रियाओं की जानकारी उपलब्ध करनी पड़ती है। इस नवीन भूमिका में जहाँ अर्थशास्त्रियों का ध्यान प्रमुख रूप से उत्पादन व्यवस्था एवं उत्पादन वृद्धि पर केन्द्रित रहा है वहीं सामाजिक सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने आर्थिक वृद्धि के इस क्रम में बदलते सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुये इस प्रयास में तत्पर रहे हैं कि मूल्यों के इस परिवर्तन क्रम में लोगों को न्यूनतम मानसिक क्लेश एवं भावनात्मक क्षतिग्रस्तता बर्दाश्त करनी पड़े। इस संदर्भ में दोनों प्रकार के विशेषज्ञों को मूलरूप से आदिम अर्थ व्यवस्थाओं को तनाव की स्थिति में समझने का अवसर मिला है। वास्तव में ऐसे ही सामान्य संदर्भों ने आधुनिक आर्थिक मानवशास्त्र को मूर्तरूप प्रदान किया है।

क्लासिकी अर्थशास्त्रीय अध्ययनों में आर्थिक प्रक्रिया को सामाजिक प्रक्रिया से ग्रसित तथा लगभग अधीनस्थ होने की मान्यता को स्वीकार किया गया था। इस क्रम में मार्क्स के विचारों को इस मान्यता का उत्कर्ष स्वरूप माना जा सकता है। किन्तु मार्क्स के उपरांत मार्शल तथा उसके अनुयायियों ने पाश्चात्य अर्थशास्त्र को विशुद्ध आर्थिक प्रक्रिया के अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करते हुये सामाजिक प्रक्रिया से आर्थिक प्रक्रिया को स्वतंत्र रूप से देखने के प्रयास किये। अर्थशास्त्र का यह स्वरूप विशुद्ध औपचारिक एवं सैद्धांतिक था जिसमें आर्थिक प्रक्रिया की विवेचना में आर्थिक घटकों को ही मान्यता दी गयी। भूमि, पूंजी, मुद्रा, मूल्य एवं बाजार उनके विश्लेषणों के स्तंभ बने रहे। किन्तु इस शताब्दी के तृतीय दशक में आर्थिक मंदी की स्थिति एवं कीन्स के वैचारिक प्रभावों ने एक बार फिर पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों को अपनी धारणा एवं मान्यता पर पुनर्विचार के लिये बाध्य होना पड़ा। कीन्स वादी विचार धारा ने आर्थिक तत्वों की परिशुद्धता के संरक्षण की प्रवृत्ति पर आघात किया। 'कीन्स' ने आर्थिक प्रक्रिया के विश्लेषणों में सामाजिक संरचनात्मक तथ्यों की उपेक्षा का विरोध करते हुये संपूर्ण व्यवस्था में विभिन्न वर्गों के पारस्परिक संबंधों, उनमें आय के वितरण, राज्य की भूमिका तथा अन्य अ-आर्थिक कारकों के महत्व पर बल दिया।

'कीन्स' के विचारों ने आधुनिक अर्थशास्त्र को एक महत्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया। आधुनिक अर्थशास्त्र पाठ्य पुस्तकों में निहित केवल क्लासिकी अर्थशास्त्रीय प्रतिमानों पर आधारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न रह कर अपने अध्ययनों में समाजशास्त्रियों एवं मानवशास्त्रियों का सहयोग भी ग्रहण करते हैं। मानवशास्त्रीय अध्ययन परंपरा में सामाजिक एवं आर्थिक पक्षों की अंतरनिर्भरता के दृष्टिकोण को सदैव वरीयता प्रदान की गई है। प्रारंभिक काल में प्रस्तुत किये गये आदिम अर्थ व्यवस्थाओं के विवरण सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों से विलगित नहीं होते थे। इसमें संदेह नहीं कि 'मैलिनोस्की' द्वारा प्रवर्तित फील्ड-वर्क परंपरा की स्थापना से पूर्व के अध्ययन सामान्यतया पर्यटकों एवं मिशनरियों आदि के विवरणों पर आधारित होने के कारण आर्थिक तथ्यों से भरपूर होने के बावजूद भी उन विवरणों में 'आर्थिक' शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही पाया जाता है। मैलिनोस्की के द्वारा फील्डवर्क परम्परा की स्थापना के उपरांत मानवशास्त्रीय अध्ययनों में लघु समुदायों के अध्ययन गहरायी से किये जाने लगे। इन अध्ययनों में लघु समुदायों को एक समग्रता के रूप में देखने और समझने के क्रम में संस्कृतियों के विभिन्न पक्षों के समाकलन एवं उनमें पारस्परिक प्रकार्यात्मक अंतरनिर्भरता (Functional inter dependence) के दृष्टिकोण को महत्वपूर्ण माना गया। मैलिनोस्की ने स्वयं ट्राब्रियांड द्वीप निवासियों के अध्ययन में स्पष्टरूप से यह दर्शाया कि उनके आर्थिक विनिमय में माँग और आपूर्ति के नियमों को सामाजिक संबंध किस प्रकार प्रभावित एवं परिमार्जित करते हैं। वस्तुतः मैलिनोस्की के विचारों ने ही आधुनिक आर्थिक मानवशास्त्र को क्लासिकी अर्थशास्त्रीय रूढ़िवादिता से मुक्त कराते हुये अर्थशास्त्र से स्वतंत्र उसकी पहचान स्थापित की जिसमें 'आर्थिक' शब्द की 'पोषण-व्यवस्था' के रूप में व्याख्या प्रस्तुत करते हुये एवं प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार की पोषण व्यवस्था के होने की सार्वभौमिकता पर बल देते हुये आधुनिक आर्थिक मानवशास्त्र की व्यापक स्तर पर रूपरेखा प्रस्तुत की जिसे कालान्तर में उनके अनुयायियों पोलनी, डाल्टन, बोहानन, आदि ने अपने अध्ययनों से प्रतिष्ठित किया।

वर्तमान आधुनिक सामाजिक, सांस्कृतिक मानवशास्त्र अब निर्जन स्थलों पर निवास कर रहे एवं एकाकी जीवन व्यतीत करने आदिवासियों का अध्ययन विषय नहीं रह गया है और न ही आदिवासी समुदाय ही एकांत प्रदेशों के सीमांकित दायरों में बंद व्यवस्थायें रह गयी हैं। वर्तमान संदर्भ में ये आदिम संस्कृतियाँ सभ्य व्यवस्थाओं के समक्ष उपस्थित हो उनके प्रभावों के दायरों में आती जा रही हैं। आज विश्व की सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गतिविधियों में इन समुदायों की साझेदारी स्पष्ट होने लगी है। भले ही कुछ निहित स्वार्थों ने दुनिया को विकसित एवं विकासशील देशों की दो वृहद् श्रेणियों में विभाजित करके एक नये उपनिवेशवाद की सृष्टि की हो किंतु वास्तविकता यही है कि अभाव की संस्कृति पर आधारित 'पोषकी व्यवस्थाओं' का अर्थशास्त्र मानवमात्र की अर्थव्यवस्था के विश्लेषण की क्षमता से भरपूर है जहाँ पूंजी, बाजार, मुद्रा एवं मूल्य पर आधारित अर्थशास्त्र की मान्यताओं से कहीं अधिक व्यापक मानवीय मूल्यों का वर्चस्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ

Arensberg, C. 1956 '*Anthropology as History*' in *Trade and Market in Early Empires* (ed) Polani, Arensberg and Pearson. pp. 107-110

Dalton, George 1968 *Economic Theories and Primitive Societies in Cultural and Social Anthropology* (ed) Peter B. Hammond The Macmillan Company, New York. pp. 96-114.

Dalton, George and Bohanan Paul 1962 (eds.) *Markets in Africa* Evanston: North Western University Press.

Firth, Raymond 1964 *Essays on Social Organization and Values*—London School of Economics monographs on Social Anthropology, Athlone Press, London.

Herskowits, M. J. 1940 *The Economic Life of Primitive Peoples.* New York, Alfred A. Knopf.

Joy, Leonard 1965 "One Economists View on relationship between Economics and Anthropology" in *Themes in Economic Anthropology*' ASA Mono-Graph, (ed) R. Firth, Tavistock Publication.

Malinowski, Bronislaw 1922 *Argonauts of the Western Pacific.* Duttern Paper Back, New York. pp. 167-176

Polanyi, Karl 1956 Economy and Instituted Process in '*Trade and Market in Early Empires*' (eds) Polanyi, Arensberg and Pearson. The Free Press, New York.

Sahlins, Marshal L. D. 1965 *On the Sociology of Primitive Exchange* in M. Banton edited *The Relevance of Models for Social Anthropology* pp. 139-236 ASA Monograph 1, Tavistock Publications, London.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षद्वीप की जनसंख्या, लिंग अनुपात, घनत्व एवं साक्षरता १९०१-१९८१

दीपक त्यागी एवं प्रभात कुमार तिवारी

भारत के दक्षिणी भाग में अरब सागर में बसे तमाम टापुओं को लक्षदीप के नाम से जाना जाता है। इन सुन्दर आकर्षक एवं रमणीय टापुओं की चर्चा करते हुये राहुल (१९८४) लिखते हैं कि "विविध-जलप्राणियों से भरा यह समुद्र जीवित अजायबघर लगता है, जगह-जगह मूंगे (प्रवाल) पड़े हैं जो पीले, भूरे, हरे और नीले रंगों से सुशोभित हैं। कहते हैं कि ये सब द्वीप इन मूंगों के हजारों वर्षों के विकास का ही परिणाम हैं। फूलनुमा पत्थरों के ऊपर 'पोलिप्स' के विकास-क्रम ने ही कालान्तर में इन द्वीपों का निर्माण किया।" ३२ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाला प्रदेश—लक्षद्वीप—केन्द्र शासित प्रदेश है और जिसे 'अनुसूचित जनजाति' क्षेत्र का दर्जा प्राप्त है। इसमें २७ उपद्वीप (टापू) हैं जो एक दूसरे से १० किमी० से लेकर १८३ किमी० की दूरी पर स्थित हैं। इसका तापमान औसतन २१ सेंग्रे० और ३३° सेंग्रे० के मध्य रहता है। यहां दक्षिण-पश्चिमी तथा उत्तर-पूर्वी दोनों मानसूनों का प्रभाव पड़ता है। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय है। दस उपद्वीपों पर मनुष्य निवास करता है। ये लोग सुन्नी मुसलमान हैं तथा मातृवंशीय हैं। निवास के आधार पर वे द्विस्थानीय हैं। इनके प्रमुख आर्थिक स्रोत नारियल तथा मत्स्य व्यापार हैं। नारियल के हर भाग का उपयोग किया जाता है।

विकास नियोजन के लिए क्षेत्र की जनसंख्या, लिंग अनुपात, घनत्व एवं साक्षरता दर आदि को जानना अतिआवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस प्रपत्र में १९०१ और १९८१ के मध्य लक्षद्वीप की जनसंख्या, लिंग अनुपात, घनत्व एवं साक्षरता को प्रस्तुत किया गया है। भारत में प्रत्येक दशक के आरम्भ में एक जनसंख्या सर्वेक्षण किया जाता है और उसी के आधार पर यह प्रपत्र लिखा गया है। अर्थात इसकी आधार सामग्री, भारतीय जन संख्या सर्वेक्षण के आंकड़ों पर आधारित है। आधार सामग्री का सांख्यकीय विश्लेषण तालिका

दीपक त्यागी, भारतीय मानव विज्ञान सर्वेक्षण, दक्षिणी क्षेत्र, मैसूर;
प्रभात कुमार तिवारी, अध्यक्ष, मानव विज्ञान विभाग, जयनारायण महाविद्यालय, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दिया गया है । लिंग अनुपात में महिलाओं की संख्या प्रति १००० पुरुषों पर, तथा घनत्व कुल व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

जनसंख्या

लक्षद्वीप की जनसंख्या भारत की जनसंख्या का ०.०१ प्रतिशत है । १९८१ में यहाँ की जनसंख्या ४०, २४९ थी । १९०१ से १९८१ तक की जनसंख्या के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें लगभग तिगुनी वृद्धि हुई है क्योंकि यह १३,८८२ (१९०१) से बढ़कर ४०,२४९ (१९८१) हो गई है । इस शताब्दी के दूसरे दशक के अतिरिक्त अन्य सभी दशकों में जनसंख्या में वृद्धि हुई है । शताब्दी के प्रथम दशक (१९०१—१९११) में वृद्धि ४.८५ प्रतिशत थी, दूसरे दशक में इसमें काफी कमी हुई है क्योंकि इस दशक (१९११—१९२१) में जनसंख्या १४,५५५ से घटकर १३६३७ रह गई अर्थात ६.३१ प्रतिशत की वृद्धि हुई । १९२१ की जनसंख्या (१२६३७) १९०१ की जनसंख्या (१३,८८२) से भी कम है । यह कमी सम्भवतः प्रथम महायुद्ध या प्राकृतिक विपत्तियों के कारण हो सकती है । आगामी दो दशकों (१९२१—३१ तथा १९३१—४१) में वृद्धि १७.६२ तथा १४.४३ प्रतिशत थी जो पिछले दशकों की अपेक्षा अत्यन्त अधिक थी । जनसंख्या वृद्धि में १९६१ तक कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई जबकि १९६१—७१ में वृद्धि ३१.९५ प्रतिशत पिछले दशक की तुलना में दुगुनी थी, परन्तु १९७१—१९८१ में वृद्धि केवल २६.५३ प्रतिशत थी ।

पुरुषों एवं महिलाओं के अलग-अलग दशक परिवर्तन के विश्लेषण से यह विदित होता है कि १९३१—४१ तथा १९४१—५१ को छोड़कर बाकी सभी दशकों में महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों में अधिक वृद्धि हुई है । दोनों लिंगों में प्रति दशक परिवर्तन प्रवृत्ति समग्र जनसंख्या प्रवृत्ति के लगभग समान है । पुरुषों और महिलाओं की जनसंख्या में कोई विशेष भिन्नता नहीं पाई गयी है परन्तु इसका अपवाद है १९०१ (पुरुष = ४८.४७ प्रतिशत तथा महिला = ५१.५३ प्रतिशत) तथा १९५१ (पुरुष = ४८.९४ प्रतिशत तथा महिला = ५०.०६ प्रतिशत) की जनसंख्या । यदि जनसंख्या वृद्धि का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि १९३१—४१) वृद्धि: पुरुष = १३.०६ महिला = १५.८१) तथा १९४१—१९५१) वृद्धि: पुरुष = १३.१८, महिला = १५.९९) के अतिरिक्त सभी दशकों में पुरुषों में महिलाओं की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई है । परन्तु अन्तिम दशक में वृद्धि (पुरुष = २६.७४, महिला = २६.३२) लगभग एक सी है ।

स्वतन्त्र भारत में लक्षद्वीप की जनसंख्या का आलोचनात्मक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि १९५१-६१ में लक्षद्वीप की जनसंख्या वृद्धि (१४.६१ प्रतिशत), भारत की जनसंख्या वृद्धि (२१.५२ प्रतिशत) से कम थी । पड़ोसी प्रदेश केरल की वृद्धि (२४.७५ प्रतिशत से अत्यधिक कम तथा तमिलनाडु की वृद्धि (११.८५ प्रतिशत) से कुछ अधिक है । १९६१-१९७१ में लक्षद्वीप जनसंख्या वृद्धि (३७.९५ प्रतिशत) सम्पूर्ण भारत (२४.८० प्रतिशत), केरल (२६.२९ प्रतिशत) तथा तमिलनाडु (२२.३० प्रतिशत) की वृद्धि से अधिक है । अन्तिम दशक (१९७१-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८१) की वृद्धि (२६.४९ प्रतिशत), पिछले दशक (१९६१-७१) की वृद्धि (३१.९५ प्रतिशत) से कम है। यही प्रवृत्ति केरल तथा तमिलनाडु की वृद्धि (क्रमशः १९ प्रतिशत तथा १७.२३ प्रतिशत) में पाई गई। परन्तु भारत की जनसंख्या में वृद्धि (२५.७५ प्रतिशत) ही पाई गई। पिछले ८० वर्षों में लक्षद्वीप जनसंख्या में १८९.९४ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जबकि भारत, केरल तथा तमिलनाडु में वृद्धि क्रमशः १६६.८४ प्रतिशत, २९७.१६ प्रतिशत तथा १५०.८६ प्रतिशत हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि लक्षद्वीप की जनसंख्या वृद्धि के निकट है। लक्षद्वीप में पुरुषों तथा महिलाओं की वृद्धि क्रमशः २०२.८७ प्रतिशत तथा १७७.७७ प्रतिशत अर्थात है। पुरुषों की जनसंख्या में महिलाओं की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई है।

लिंग अनुपात

१९८१ में लक्षद्वीप में ५०.६३ प्रतिशत पुरुष तथा ४९.३७ प्रतिशत महिलायें थीं। इस शताब्दी में इस क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं की जनसंख्या में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि कभी पुरुषों की जनसंख्या अधिक है तो कभी महिलाओं की जनसंख्या अधिक है। नौ जनसंख्या सर्वेक्षणों में से पांच में पुरुषों की अधिकता है जबकि चार में महिलाओं की अधिकता है। यह प्रवृत्ति उनके लिंग अनुपात से और स्पष्ट हो जाती है। १९५१ से लगातार इसमें कमी होती गई है। (१९५१ = १०४३, १९६१ = १०२०, १९६१ = ९७८, १९८१ = ९६५) अर्थात या तो महिलाओं की जनसंख्या में पुरुषों की जनसंख्या से अधिक वृद्धि हुई है या पुरुषों की जनसंख्या में महिलाओं की जनसंख्या से कमी आई है।

जनसंख्यात्मक घनत्व

लक्षद्वीप के पिछले ८० वर्षों के जनसंख्यकी घनत्व के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इन वर्षों में घनत्व लगभग ढाई गुना हो गया है। १९०१ में घनत्व ४९८ था जो १९११ में बढ़कर ५२२ हो गया। परन्तु १९२१ में घट कर ४८९ रह गया जो कि १९०१ के घनत्व से भी कम है अर्थात १९११ और १९२१ (प्रथम विश्व युद्ध) के मध्य जनसंख्यकी में महत्वपूर्ण कमी आई थी। १९२१ के पश्चात इसमें लगातार वृद्धि होती गई। स्वतन्त्रता के पश्चात जनसंख्यकी घनत्व में अधिक वृद्धि हुई है क्योंकि १९५१ में ७५५ से बढ़कर १९८१ में १२५८ हो गया। भारत (२०८), केरल (६५४), तमिलनाडु (३९१) की अपेक्षा लक्षद्वीप का घनत्व अत्यधिक है।

साक्षरता

साक्षरता के क्षेत्र में लक्षद्वीप में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। १९०१ में यह ३.५९ प्रतिशत से बढ़कर १९८१ में ५५.०७ प्रतिशत हो गई है जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। शताब्दी के आरम्भ (१९०१) में ३.५९ प्रतिशत थी उसके आगामी दशक में घट कर २.७९ प्रतिशत रह गई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु तत्पश्चात इसमें निरन्तर वृद्धि होती रही है। इस क्षेत्र में वृद्धि विशेष रूप से स्वतन्त्रता के पश्चात हुई है। १९५१ में १५.२३ प्रतिशत से १९६१ में २३.२७ प्रतिशत, १९७१ में ४३.६६प्रतिशत तथा १९८१ में ५५.०७ प्रतिशत हो गई है। अर्थात केवल स्वतन्त्रता के पश्चात इसमें लगभग तिगुनी वृद्धि हुई है। दोनों लिंगों में साक्षरता वृद्धि की प्रवृत्ति लगभग एक समान है। परन्तु पुरुषों की तुलना में महिलाओं में साक्षरता सदैव कम रही है। १९८१ में पुरुषों एवं महिलाओं में साक्षरता क्रमशः ६५.२४ तथा ४४·६५ प्रतिशत है। भारत की अपेक्षा, लक्षद्वीप में साक्षरता कहीं अधिक है।

उपरोक्त विश्लेषण से विदित होता है कि लक्षद्वीप में पुरुषों (२०,३७७) तथा महिलाओं (१९,८७२) की जनसंख्या में कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं है। पिछले ८० वर्षों में पुरुषों की जनसंख्या में, महिलाओं की तुलना में अधिक वृद्धि हुई है। लक्षद्वीप की जनसंख्या में लगभग तिगुनी वृद्धि हुई है। महिलाओं में कम वृद्धि लिंग अनुपात से और स्पष्ट हो जाती है। जनसंख्या बढ़ोत्तरी के साथ-साथ जनसंख्यात्मक घनत्व में वृद्धि हुई है। विशेष उल्लेखनीय है साक्षरता में वृद्धि, जो कि १९८१ में ५५.०७ प्रतिशत है। यद्यपि महिलायें, पुरुषों की तुलना में साक्षरता में कम हैं परन्तु उनमें भी साक्षरता अत्यधिक है जो कि महत्वपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालिका—१

लक्षद्वीप में जनसंख्या, घनत्व, लिंग अनुपात तथा साक्षरता

वर्ष/दशक	जनसंख्या: पुरुष संख्या	पुरुष प्रतिशत	महिला संख्या	महिला प्रतिशत	योग संख्या	योग प्रतिशत	घनत्व	लिंग अनुपात	साक्षरता प्रतिशत: पुरुष	महिलायें	योग
१९०१	६,७२८	४८.४७	७,१५४	५१.५३	१३,८८२	१००.००	४९८	१०६३	६.६६	०.७१	३.५९
१९११	७,३२५ (८.८७)	५०.३३	७,२३० (१.०६)	४९.६७	१४,५५५ (४.८५)	१००.००	५२२	९८७	५.५५	०.०४	२.७९
१९२१	६,७२७ (–८.१६)	४९.३३	६,९१० (–४.४३)	५०.६७	१३,६३७ (–६.३१)	१००.००	४८९	१०२७	६.७८	०.१४	३.४२
१९३१	८,०४५ (१९.५९)	५०.१६	७,९९५ (१५.७०)	४९.८४	१६,०४० (१७.६२)	१००.००	५७६	९९४	१२.४३	१.०८	६.७७
१९४१	९,०९६ (१३.०६)	४९.५६	९,२५९ (१५.८१)	५०.४४	१८,३५५ (१४.५३)	१००.००	६५९	१०१८	आंकड़े	प्राप्त	नहीं
१९५१	१०,२९५ (१३.१८)	४८.९४	१०.७४० (१५.९९)	५१.०६	२१,०३५ (१४.६०)	१००.००	७५५	१०४३	२५.५९	५.३०	१५.२३
१९६१	११,९३५ (१५.९३)	४९.५१	१२,१७३ (१३.३४)	५०.४९	२४,०३५ (१४.६१)	१००.००	८३१	१०२०	३५.८०	१०.९८	२३.२७
१९७१	१६,०७८ (३४.७१)	५०.५४	१५,७३२ (२९.२४)	४९.४६	३१,८१० (३१.९५)	१००.००	९९४	९७८	५६.४८	३०.५६	४३.६६
१९८१	२०,३७७ (२६.७४)	५०.६३	१९,८७२ (२६.३२)	४९ ३७	४०,२४९ (२६.५३)	१००.००	१२५८	९७५	६५.२४	४४.६५	५५.०७

कोष्ठक में दिये गये आंकड़े दशक प्रतिशत वृद्धि दर्शाते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ

राहुल १९८४ लक्षद्वीपः मूँगे के टापुओं पर प्रकृति का महाकाव्य।

धर्मयुग १९८४ ५ फरवरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू-स्वामित्व एवं कृषक समाज

सुरेन्द्र नाथ पाठक

भूमि से मनुष्य का सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार से है जिस प्रकार बच्चे का सम्बन्ध माँ से होता है। भूमि ही समस्त जीवों को भोजन, वस्त्र एवं अन्य सामग्री उपलब्ध कराती है। व्यक्ति चाहे आखेट की अवस्था में रहा हो या पशुपालन की अवस्था में, भूमि पर ही आश्रित रहा है। इसी पर उसने जन्म लिया, बड़ा हुआ, कृषि करना सीखा और एक स्थान पर रहना सीखा तथा आज प्रौद्योगिक एवं औद्योगिक युग में प्रवेश कर चुका है। कृषक सामाजिक संरचना और सामाजिक-आर्थिक संगठन दोनों परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं। जब भी किसी एक में परिवर्तन होगा तो दूसरे में परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

मनुष्य का सामाजिक इतिहास उस समय प्रारम्भ हुआ होगा जब घुम्मकड़ मनुष्य ने खेती की कला सीखी और एक निश्चित स्थान पर स्थायी रूप से बस गया। इस प्रकार घुमन्तू मनुष्य के पैरों में बेड़ी डालने का श्रेय उन खेतों को है जहां उसने अपने परिश्रम से बीज बोये।[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रामीण समुदाय के अस्तित्व का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब घुमन्तु मनुष्यों के समूह किन्हीं निश्चित स्थानों पर बस गये। ग्रामीण समुदाय, जिसको हम आज परिभाषित करते और समझते हैं, उस समय अस्तित्व में आया जब मनुष्य ने मानव सभ्यता विकास के प्रथम कृषि चरण में प्रवेश किया। प्रारम्भिक चरणों, जैसे खाद्य सामग्री एकत्र करने, पशुचारण और खाना-बदोश की अवस्था, में मनुष्य कृषि की कला से अनभिज्ञ था। इस प्रारंभिक अवस्थाओं में मनुष्य पशुओं की भांति भोजन और पानी की खोज में मौसम बदलने के साथ-साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमा करता था।

इन अवस्थाओं में जीवन बहुत सरल रहा होगा। घुम्मकड़ मनुष्य परम्पराओं को सुरक्षित रख सकने में असमर्थ थे। परम्पराओं के अभाव में किसी भी संस्था की कल्पना नहीं की जा सकती है। इन लोगों को एकता के महत्वपूर्ण बंधन से बाँधनें में उनकी एक दूसरे से रिश्ते-

---

डा० सुरेन्द्र नाथ पाठक, प्रवक्ता, समाज शास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाराबंकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारी सहायक थी । लोगों के ये समूह जो कि एक दूसरे से रक्त के सम्बन्धों से जुड़े हुए थे, एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमा करते थे ।

घुमन्तू जन-जातीय जीवन की अस्थिर सामाजिक संरचना से ग्रामीण समुदाय की स्थिर संस्थागत संरचना की ओर होने वाला संक्रमण एक लंबा और घटना प्रधान मार्ग था । भूमि और खेती, जो घुमक्कड़ मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण न थे, अब सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण हो गए । भूमि न केवल जीविकोपार्जन का मुख्य स्रोत हो गयी, बल्कि एक स्थान विशेष पर बसने वाले सदस्यों के बीच एकता का महत्वपूर्ण सूत्र भी बन गयी । भूमि के कारण सभी निवासी बाहरी आक्रमणों से इसकी रक्षा करने लगे जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समुदायों का उद्‌भव हुआ ।

प्राचीन ग्रामीण समुदाय

भारतीय इतिहास में ग्रामीण समुदाय के महत्व को किसी न किसी रूप में सदैव स्वीकार किया गया है । भारत में ग्रामीण समुदाय अस्तित्व में कब आया, इस पर विभिन्न विद्वानों में मतैक्य नहीं है । इस प्रकार का अनुमान करना भी व्यर्थ है । यहां तक कि भारतवर्ष में प्रारम्भ में बसने वाली बैल्लेल[२] जनजाति किसी अन्य स्थान के खेती करने वाले समुदाय से संबंधित थी । इस विश्वास का कारण यह है कि बैल्लेल जनजाति स्थाई रहन-सहन के सिद्धान्तों से भली-भांति परिचित थी जिसे उसने स्थान विशेष पर बसते ही अपनाया । यदि उनका संबंध किसी दूसरे स्थान के ग्रामीण समुदाय से न होता तो इतनी शीघ्रता से स्थाई रहन-सहन के विधि-विधानों को अपनाना संभव न होता । बैल्लाली जन-जाति के सदस्यों ने ज्यों ही घुम्मकड़ जीवन का परित्याग किया उन्होंने अपने आप को ग्रामीण समुदायों में परिवर्तित कर लिया। सामाजिक जीवन के विधि-विधानों और सामाजिक आदतों की नई परम्पराओं का सृजन करना इतना अधिक कठिन है कि स्थाई रहन-सहन के ज्ञान के बिना घुमक्कड़ मनुष्य द्वारा ग्रामीण समुदाय की स्थापना की कल्पना नहीं की जा सकती ।

भारतीय समाज के प्राचीन इतिहास पर हाल ही में की गयी खोजों के अनुसार यहां आर्यों के आगमन से बहुत पहले ही ग्रामीण समुदाय भली-भाँति स्थापित थे । वर्तमान समय में प्राप्त विभिन्न शिलालेखों एवं अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत में आर्यों से पूर्व रहने वाले लोगों द्वारा चाहे वे द्रविण रहे हों या सुमेर, कृषि पर आधारित सुव्यवस्थित और सुसंगठित ग्रामीण समुदायों की स्थापना की गई थी । वे विचारधाराएं जिनका मत था कि ग्रामीण समुदाय का जन्म आर्यों के समय में हुआ, अब गलत सिद्ध हो चुकी हैं । स्वाभाविक रूप से संगठित व स्वतः विकसित ग्रामीण समुदाय की विशेषता को मुख्य रूप से आर्यों की विशेषता नहीं कहा जा सकता ।[३] ऐतिहासिक खोजों से यह पूर्णरूपेण सिद्ध हो गया है कि ग्रामीण समुदाय उतने ही अधिक द्रविण, सुमेर और मानव प्रजाति की अन्य शाखाओं से संबंधित थे जितना कि वे आर्यों से । घुमक्कड़ आर्यों ने भारत में अपने आगमन पर सुव्यवस्थित ग्रामीण समुदाय अवश्य पाए होंगे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यों से पूर्व के समाज में जिस प्रकार की सामाजिक दशाएँ थीं, इस संबंध में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । आर्यों से पूर्व भारत के ग्रामीण समुदायों के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलते । वेदों और अन्य प्राचीन साहित्य से उस समय के सामाजिक जीवन के बारे में जो थोड़ी बहुत जानकारी हमें मिलती है वह अपर्याप्त है । ये सभी साहित्य मुख्य रूप से धार्मिक होने के कारण सामान्य जीवन, विशेषकर गैर-आर्य समाजों पर बहुत ही कम प्रकाश डालते हैं । जहां कहीं भी इन पक्षों का हवाला मिलता है वे मुख्य रूप से उस समय के राजाओं और सम्राटों तथा शक्तिशाली आर्यों और मूल निवासियों के बीच हुए युद्धों से संबंधित हैं । चूंकि इन धार्मिक ग्रन्थों के लेखक मुख्य रूप से प्रकृति पूजक थे, अतः इनके सारे पृष्ठ "माँ प्रकृति" के प्रशंसा और प्रार्थना से भरे हैं ।

इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए कि भारत में पूर्व आर्य समाज के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, केवल यही किया जा सकता है कि कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जायें जो कि पारस्परिक प्रमाणों से सिद्ध किये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ वेदों में कुछ ऐसे श्लोक हैं जो कि आर्यों से पूर्व समाज के जीवन पर कुछ प्रकाश डालते हैं । एक श्लोक में आर्य लोग अपने शक्तिशाली देवताओं की महिमा की प्रशंसा करते हैं । इन देवताओं को "पुरनडार" कहा गया है जिसका अर्थ है "नगरों का विनाशक" । यह संदर्भ इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि आर्यों के पूर्व का इतिहास अंधकार में डूबा हुआ है । कुछ इसी प्रकार के प्रमाणों के आधार पर इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत में आर्यों से पूर्व रहने वाले लोगों ने न केवल सुसंगठित ग्रामीण समुदायों की स्थापना की थी, बल्कि बड़े-बड़े नगरों का भी निर्माण किया था जिन्हें जीतने और नष्ट करने में आर्यों को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । मोहन जोदड़ों और हड़प्पा की कुछ हाल की खोजों से इस विचारधारा की पुष्टि होती है । हड़प्पा और मोहन जोदड़ों के आस-पास हुई खोजों पर टिप्पणी करते हुए पाणिक्कर ने लिखा है कि "यह कहना कठिन है कि सुव्यवस्थित ग्राम आर्य व्यवस्था का अंग है अथवा उनसे पूर्व के लोगों की व्यवस्था की निरंतरता है । स्पष्ट रूप से मोहन जोदड़ो जैसे नगरों का विकास व्यापक कृषि व्यवस्था और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर आधारित रहा होगा । यह मानना अधिक विवेकशील होगा कि आर्य लोगों ने कृषि को अनार्यों से अपनाया और ग्रामीण संगठन को उसी रूप में अपनाया जिस रूप में उन्होंने पाया ।[४]

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि आर्यों से पूर्व के समाज कृषि पर आधारित थे। सम्पूर्ण सामाजिक संरचना कृषि के इर्द-गिर्द घूमती थी । ग्रामीण समुदायों का उद्देश्य भूमि पर खेती करना था । इन खेती करने वाले परिवारों के अतिरिक्त कुछ अन्य परिवार भी रहे होंगे जो कि अनुवांशिक रूप से कृषि से संबंधित अन्य पेशों में संलग्न रहे होंगे ।

आर्यों का आगमन

हॉवेल, जिन्होंने भारत में आर्यों के शासन के विषय में लिखा है, का मत है कि भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आर्यों के आगमन से बहुत पहले ही द्रविणों और अन्य गैर-आर्यों ने ग्रामीण व्यवस्था की नींव रखी थी। जब आर्यों ने घुमन्तू जीवन छोड़कर स्थाई जीवन अपनाया, तब उन्होंने ग्रामीण समुदायों में पूर्व प्रचलित रहन-सहन के ढंगों को अपना लिया। अनार्य ग्रामीण व्यवस्था का प्रचलन आर्यों के बसने के बाद भी जारी रहा। उन्होंने आगे लिखा है कि गैर आर्य गांव मुख्य रूप से कृषि प्रधान थे और सम्पूर्ण संगठन का आधार कृषि था। जन-जातीय प्रथाओं से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए ये आदिम ग्रामीण समुदाय मातृसत्तात्मक थे। स्थाई समाज में माता का स्थान केन्द्रीय हुआ करता था। पिता और अन्य वयस्क पुरुष, जिनका मुख्य धंधा शिकार था, अधिकांश समय घर से बाहर रहते थे और खेती का सम्पूर्ण कार्य मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा किया जाता था।

डेविस[५] ने भारत में आर्यों से पूर्व के सामाजिक जीवन का विस्तृत विवेचन किया है। उनके अनुसार यह मत गलत है कि पूर्व आर्य जंगली और असभ्य थे, उनकी कोई संस्कृति न थी। इसके विपरीत पूर्व-आर्य लोगों ने सुव्यवस्थित समुदायों को बसाया जिनका सामाजिक संगठन अत्याधिक विकसित था। ग्रामीण समुदायों के आकार का निर्धारण मुख्य रूप से भूमि की उर्वरकता और जल की उपलब्धता से होता था। पूर्व-आर्य ग्रामीण समुदाय निश्चित रूप से आकार में छोटे होते थे।

हॉवेल और डेविस दोनों ने ही पूर्व आर्य युग में भूमि जोतो की प्रकृति पर प्रकाश डाला है। हॉवेल के अनुसार द्रविणों की कृषि भूमि सामुदायिक सम्पत्ति होती थी तथा भूमि के किसी विशेष टुकड़े के प्रति लगाव और भूमि के निजी स्वामित्व को हतोत्साहित करने के उद्देश्य से वे लोग बारी-बारी से खेती करते थे। खेतों को कृषि के लिए बारी-बारी से एक निश्चित समय के लिए विभिन्न समूहों को दिया जाता था और उसके बाद इनका समय-समय पर गांव की बैठकों में पुनः वितरण होता था।[६] यहां तक कि बहुत बाद में बौद्ध युग में गाँव की भूमि पर सामूहिक स्वामित्व होता था। कृषि योग्य भूमि के चारों ओर की बेकार भूमि और वनों पर गांव के सभी परिवारों का समान अधिकार होता था। केवल चल सम्पत्ति जैसे पशु धन पर निजी स्वामित्व देखने को मिलता था, लेकिन किसी के पास निजी अथवा पृथक चरागाह या भूमि नहीं होती थी।

यद्यपि प्राचीन भारतवर्ष में मानव-जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष अर्थात ग्रामीण समुदाय में रहने वाले लोगों के भूमि अधिकारों से संबंधित कोई भी विशिष्ट और स्पष्ट कानून न थे तथापि अनेक सूक्ष्म परम्पराओं और चलन विद्यमान थे जो खेती के विधि विधानों के सम्बन्ध में दिशा निर्देश देते थे। फिर भी यह एक मान्य विचार है कि परम्पराएं और रीति-रिवाज जो कि विरासत में मिले उनका मूल अनिवार्य रूप से द्रविण-आर्य लोग थे। इस प्रकार भारत में आर्यों के आगमन से न तो खेती और न ही ग्रामीण संगठन के शुभारम्भ को जोड़ा जा सकता है। इसका समर्थन हंटर[७] ने भी किया है जिनके अनुसार आर्यों ने कभी भी इतनी अधिक संख्या में भारत में प्रवेश नहीं किया कि वे ग्रामीण समाज की संरचना में कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक परिवर्तन ला सकते। इसी प्रकार के विचार पावेल ने भी व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार चूंकि आर्य घुमक्कड़ लोग थे, पशुचारण उनका मुख्य धंधा था, अतः कृषि का कोई भी अनुभव उन्हें नहीं था। इस प्रकार भारत, आर्यों के प्रति स्थाई खेती की प्रथा अथवा भू-स्वामित्व की नीतियों और सिद्धान्तों के लिए कदापि ऋणी नहीं है।[8]

आर्यों और द्रविणों के बीच एकीकरण की प्रक्रिया शताब्दियों तक जारी रही और अन्त में भारत-आर्य व्यवस्था (इंडो-आर्यन) अस्तित्व में आयी। इन दो विशिष्ट संस्कृतियों के एकीकरण से ग्रामीण समुदाय के सामाजिक संगठन में अनेक परिवर्तन हुए। इस प्रकार अस्तित्व में आई नई व्यवस्था में आर्य और द्रविण दोनों संस्कृतियों के तत्व समाहित थे। इस नई व्यवस्था की अर्थ व्यवस्था के मुख्य आधार पशुचारण, जो कि आर्यों की मुख्य विशेषता थी, और कृषि, जो द्रविणों की मुख्य विशेषता थी, थे।

सामाजिक व्यवस्था

वैदिक युग में ग्रामीण समुदायों की सामाजिक व्यवस्था के विषय में उस समय के लेखों में अपेक्षाकृत पर्याप्त जानकारी मिलती है वाल्मीकि की रामायण में दो ग्रामों घोश और गांव का वर्णन है जिसमें प्रथम गांव आकार में छोटा और द्वितीय बड़ा होता था। यह गाँव वनों के किनारे बसे होते थे और इनके निवासी गोप कहलाते थे, जिनका मुख्य व्यवसाय पशुपालन और दुग्ध उत्पादन था। प्रत्येक गांव एक स्वतंत्र आत्म निर्भर इकाई था जिसका बाहरी दुनिया से नाम मात्र को सम्पर्क था। इस ग्रामीण समुदाय की सीमाएं वृक्षों, नदियों, पहाड़ियों, जलधाराओं और तालाबों से बनती थी। भू-जोतों की प्रकृति के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलती, फिर भी ग्राम भूमि को गांव के निवासियों के विशेष अधिकारों से सुरक्षित रखा जाता था कोई भी राजा, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, गांव की भूमि पर अपना अधिकार नहीं कर सकता था। गांव भूमि पर खेती-बाड़ी, भू-राजस्व और राज्य-राजस्व की अदायगी एवं भूमि से संबंधित इसी प्रकार के अन्य कार्यों की देखरेख विभिन्न नामों से जाने जाने वाले गांव के मुखिया द्वारा की जाती थी।

बौद्ध युग में ग्रामीण सामाजिक संरचना में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुए। ग्रामीण समुदाय स्वतंत्र प्रभुता सम्पन्न इकाइयाँ बनी रहीं जिनकी निश्चित सीमाएं होती और उनकी रक्षा की जाती। डेविस के अनुसार ग्राम्य भूमि, चरागाह तथा बेकार भूमि सामान्य रूप से गांव के स्वामित्व में होती थी। भूमि और चरागाह के रूप में कोई भी निजी सम्पत्ति नहीं रख सकता था फिर भी पशु और अन्य चल सम्पत्ति के रूप में निजी सम्पत्ति को मान्यता प्राप्त थी। सभी खेतों में एक ही समय, एक साथ खेती होती थी। सिंचाई की नालियाँ समुदाय विशेष द्वारा बनायी जाती थी और जल की आपूर्ति परम्परानुसार होती थी। खेती करने का यह सामान्य चलन था कि सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि उतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बांटी जाती थी जितने कि गांव में परिवार होते थे। प्रत्येक परिवार को एक विशेष टुकड़ा दिया जाता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रत्येक परिवार उत्पादन में से अपना भाग ले लेता था लेकिन किसी भी परिवार को यह अनुमति नहीं थी कि वह भूमि के उस टुकड़े पर अपने विशेष अधिकार के रूप में कोई हिस्सा ले। समुदाय के अलावा किसी को भी समुदाय की संपत्ति में अधिकार नहीं प्राप्त था। ग्रामीण समुदाय को एक समग्र के रूप में भू-स्वामित्व की मान्यता प्राप्त थी। वाह्य शक्तियों के अतिक्रमण से इसकी रक्षा की जाती थी। ग्राम्य समुदाय के किसी भी सदस्य को यह अधिकार नहीं था कि वह गांव की भूमि में अपने हिस्से को किसी बाहरी व्यक्ति के हाथ बेच सके या बंधक रख सके। भूमि के निजी स्वामित्व का कोई अस्तित्व नहीं था, यहां तककि कोई भी व्यक्ति अपने हिस्से को न तो अपने उत्तराधिकारियों को दे सकता था और न ही उसे बांट सकता था। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, चरागाह या बेकार भूमि के किसी भी हिस्से पर, न तो विक्रय द्वारा और न विरासत से कोई विशेष अधिकार पा सकता था। यहां तक कि राजा के पास भी भूमि के रूप में कोई सम्पत्ति नही हुआ करती थी। शाही खजाने को कर इसलिए दिया जाता था क्योंकि राजा ग्रामीणों को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करता था, न कि इसलिए कि भूमि पर उसका स्वामित्व होता था। जहां तक शाही अनुदानों का प्रश्न है, राजा अनुदान में भूमि न देकर, परम्परानुसार शासन को प्राप्त वार्षिक कर का दसवां भाग दिया करता था। राजधानी में चाहे जो कुछ भी घटित हो रहा हो इससे कृषकों के हितों को कोई नुकसान नहीं पहुँचने पाता था। राजा द्वारा किसी भी किसान को उसकी भूमि से निष्कासित नहीं किया जा सकता था। वास्तव में सत्ता या राजा परिवर्तित होने से किसानों की स्थित में और सुधार होता था। पहले ही की भाँति कर देने पर उन्हें बेहतर सुरक्षा का आश्वासन दिया जाता था।

ऐसा आभास होता है कि भारत में लिखित इतिहास का प्रारम्भ ५ वीं शताब्दी में मौर्य साम्राज्य की स्थापना से हुआ।[८] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो कि मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में लिखा गया, तत्कालीन ग्रामीण समुदाय का सजीव चित्रण मिलता है। बहुधा यह कहा जाता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित तथ्य अपेक्षाकृत अत्याधिक अव्यवहारिक हैं, नकि ग्रामीण समुदाय का वास्तविक चित्रण। तथापि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रशासन तंत्र में ग्रामीण समुदाय एक बहुत ही महत्वपूर्ण इकाई थी। इसमें भी मौर्य युग की भू-स्वामित्व व्यवस्था के विषय में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। इस समय प्रत्येक ग्राम की निश्चित सीमाएं वृक्षों, नदियों और पहाड़ियों द्वारा चिन्हित होती थी। इन समुदायों का निर्धारित आकार होता था, जिसमें १०० से ५०० तक परिवार रहते थे।

शकुनीतिसार में तीन प्रकार के ग्रामों का वर्णन किया गया है :-- खुम्बा, पल्ली तथा ग्राम। खुंबा पल्ली के आकार का आधा और पल्ली ग्राम के आकार का आधा होता था। भू-स्वामित्व के विषय में वर्णित है कि गांवों की भूमि समग्र गांव के स्वामित्व में होती थी, जिसका हर फसली वर्ष में पंचायत द्वारा वितरण होता था। यह पंचायत का उत्तरदायित्व होता था कि वह भूमि पर खेती की व्यवस्था करें और राजा के देय करों को जमा करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार हम यह पाते हैं कि ये प्राचीन साहित्य ग्रामीण भूमि स्वामित्व की वास्तविक प्रकृति के सम्बन्ध में संतोषजनक जानकारी नहीं देते हैं। इस कारण भारत के प्रारम्भिक ग्रामीण समुदायों में भू-स्वामित्व का स्वरूप विवादास्पद हो गया है। विभिन्न विद्वानों द्वारा इस पर विभिन्न मत व्यक्त किये गये। भू-स्वामित्व का यह विवाद तीन महत्वपूर्ण संभावनाओं पर केंद्रित है।

१. गांव की भूमि गांव के व्यक्तिगत परिवारों के स्वामित्व में थी।
२. भूमि के रूप में निजी सम्पत्ति को मान्यता नहीं प्राप्त थी। गांव की भूमि सामान्य रूप से गांव में निहित होती थी और इसकी देख-रेख गांव समिति अथवा गांव के मुखिया के आधीन थी।
३. भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में जमींदारी संगठन था। इस जमींदारी प्रथा में सबसे नीचे कृषक उसके ऊपर जमींदार और शीर्ष पर राजा या सम्राट हुआ करता था।

निजी स्वामित्व

बडेन पावेल भारत के प्रारंभिक ग्रामों में भूमि के निजी स्वामित्व से संबंधित सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार दो प्रकार के ग्रामीण समुदाय थे—प्रथम रैय्यतवारी गांव और द्वितीय जमींदार या संयुक्त श्रेणी के ग्राम[१०]। रैय्यतवारी गांव में गांव की भूमि पर स्वामित्व का अधिकार विशेषकर व्यक्तिगत परिवारों का था जबकि संयुक्त श्रेणी गांवों में सम्पूर्ण गांवों की भूमि पर स्वामित्व का अधिकार संयुक्त रूप से कुछ विशेष परिवारों में निहित होता था। प्रारम्भ में गांव बसाते समय जो परिवार जंगल को साफ कर भूमि को खेती योग्य बनाता था उसका उस भूमि पर विशेष अधिकार होता था। इस प्रकार रैय्यतवारी गांव अस्तित्व में आये जो भारतवर्ष के मूल गांव थे। यह विश्वास इस तथ्य पर आधारित है कि इस प्रकार के गांव मुख्य रूप से विन्ध्य के दक्षिणी क्षेत्र में पाये जाते हैं जो कि गैर आर्यों का गढ़ था और जहां आज भी कुछ सीमा तक भारत के ग्रामीण समुदायों की आदिम प्रकृति विद्यमान है। संयुक्त श्रेणी के गांव उस समय अस्तित्व में आये जब आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया। आर्यों में सशक्त गोत्र संगठन था क्योंकि उन्हें अपने पूर्वजों पर गर्व था। इस विश्वास ने भूमि के संयुक्त स्वामित्व को जन्म दिया जिससे कि संयुक्त श्रेणी के गांव अस्तित्व में आये।

कृषि और इसके प्रबन्ध के विषय में प्राचीन साहित्यों से यह स्पष्ट होता है कि भूमि का प्रबन्ध गांव के मुखिया के नेतृत्व में गठित गाँव समिति द्वारा होता था। गांव के वयोवृद्ध लोगों द्वारा कृषि भूमि का वितरण सिंचाई के पानी का वितरण होता था और यही लोग राजा को देय भू-करों को भी जमा करते थे। कभी-कभी फसलों को जंगली पशुओं से बचाने के लिए खेतों के चारों ओर बाड़ खींच दी जाती थी जो कि फसल के कटने के तुरन्त बाद मिटा दी जाती थी जिससे कि कोई व्यक्ति विशेष उस पर अपना दावा न कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांव की भूमि का समस्त उत्पादन पंचों की सम्पत्ति माना जाता था और फसल कटने के बाद उसे गांव के सामान्य खलिहान में लाया जाता था उसके बाद कुल उत्पादन को गांव के सभी परिवारों में बाँट दिया जाता था। उन कारीगरों को भी उनका उचित हिस्सा दिया जाता था जो खेती में प्रत्यक्ष रूप से तो कोई योगदान नहीं करते थे लेकिन कृषकों के औजार आदि की मरम्मत कर उनकी सहायता करते थे। गांव समिति द्वारा भूमि को बारी-बारी से वितरित करने की व्यवस्था अपनायी गयी जिससे अच्छे और उपजाऊ भूमि के बेहतर वितरण को सुनिश्चित किया जा सके। इस व्यवस्था के अनुसार विभिन्न परिवारों द्वारा भूमि के टुकड़ों पर बारी-बारी से खेती की जाती थी। इस व्यवस्था को अपनाने का एक कारण यह भी था कि किसी व्यक्ति विशेष में किसी भूखण्ड विशेष के प्रति विशेष लगाव न उत्पन्न हो सके और भूमि के रूप में निजी सम्पत्ति को बढ़ावा न मिल सके। कुछ जनजातियों जैसे बंगाल के संथालों में आज भी इस व्यवस्था का प्रचलन है।

बाद में जब धन पर आधारित अर्थ-व्यवस्था प्रचलित हुई तब पंचायत द्वारा भूमि प्रबन्ध में परिवर्तन हुआ और वस्तु विनिमय व्यवस्था का प्रतिस्थापन मुद्रा की अर्थव्यवस्था से हुआ, ग्राम्य भूमि के विभिन्न टुकड़ों को पंचायत द्वारा नीलाम करने की व्यवस्था की गई। प्रत्येक भूखण्ड विशेष के लिए नीलामी में सर्वोच्च बोली बोलने वाले को वह टुकड़ा एक वर्ष के लिए दे दिया जाता जिसके उत्पादन का वह अकेला स्वामी होता ; तत्पश्चात् उस टुकड़े पर से उस व्यक्ति विशेष का अधिकार समाप्त हो जाता था। गोवा में आज भी यह व्यवस्था प्रचलित है, यहाँ भूमिधारी व्यवस्था प्रचलित है, यहाँ भूमिधारी व्यवस्था जिसे 'कमुनीदाद' कहते हैं आज भी सरकार के विधेयों से परे हैं।

हेनरी मेन ने संस्थाओं के विकास से संबंधित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक[११] में इस विचारधारा का निरूपण किया है कि अन्य स्थानों की भांति भारत में भी भूमि पर ग्रामीण समुदाय के सभी निवासियों का सामान्य अधिकार होता था। उन्होंने पश्चिम के प्रारम्भिक 'टैन्टोनिक' समाजों और भारत के ग्रामीण समुदायों के बीच कई समानताएं पाई हैं जो इतनी सशक्त हैं कि उन्हें घटना मात्र नहीं माना जा सकता। जैसा कि प्रारम्भिक टैन्टोनिक समाजों और अन्य स्थानों के आदिम समुदायों में पाया गया कि भूमि पर सामान्य रूप से समुदाय के सभी सदस्यों का अधिकार था उसी प्रकार भारत में भी आरम्भिक अवस्था में भूमि पर सभी का सामान्य अधिकार होता था। इस प्रथा के चलन का कारण यह था कि गांव के सभी लोग दूसरे को सगोत्र और सगे सम्बन्धी मानते थे। उन लोगों का विश्वास था कि उनके पूर्वज एक ही हैं। यदि कभी ऐसे अपरिचित को समुदाय में प्रवेश दिया जाता जो कि वास्तविक सम्बन्धी नहीं होता था तो उसे झूठे ढंग से सम्बन्धी बना लिया जाता था। इस प्रकार चाहे वास्तविक या झूठे ढंग से बने ग्रामीण समुदाय के सभी सदस्य अपने को एक ही पूर्वज की संतान मानते थे और इसका मुख्य कारण भूमि ही था।

भारत में भूमि के निजी स्वामित्व के विकास के सम्बन्ध में हेनरीमेन ने निम्न महत्वपूर्ण परिकल्पनाओं का निरूपण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१—आरम्भिक अवस्था में जब मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था तब उनकी शक्ति का स्रोत उनकी संख्या होती थी। ऐसे अपरिचितों के प्रवेश का स्वागत किया जाता था जिससे कि खेती करने के लिए अधिक जनशक्ति मिल सके और साथ ही समुदाय को बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखा जा सके। उन लोगों को जो कि किसी अपरिचित समूह से संबंधित होते थे, झूठे ढंग से संबंधी बनाकर समुदाय में प्रवेश अधिक संख्या में देने के कारण समुदाय के सदस्यों के बीच रक्त संबंध क्षीण हो गये। सामान्य वंश और रक्त संबंधों पर जो विश्वास और गर्व था वह पृष्ठभूमि पर चला गया। समुदाय अपने आप को रक्त संबंधियों का समूह न समझ कर सह ग्रामीणों का एक संगठन मानने लगा। सामाजिक संबंधों में होने वाले इस परिवर्तन का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ कि प्रत्येक परिवार में भूमि के उस विशेष टुकड़े पर दृढ़ता से कब्जा कर लिया जो उसे खेती के लिए मिला था। भूमि पर संयुक्त खेती, उपज का समान वितरण, कृषि हेतु भूमि का बंटवारा सभी दुर्लभ होते गये तथा परम्पराओं और रीति-रिवाजों में परिवर्तन हो गये और उनके पालन पर नाम मात्र को ध्यान दिया जाने लगा, परिणामस्वरूप भूमि पर निजी स्वमित्व का उदय हुआ।

२—भूमि के निजी स्वामित्व के उद्‌भव का दूसरा कारण छोटे समाजों के बीच बढ़ते हुए झगड़े और जनजातीय युद्ध थे। इन युद्धों का परिणाम यह होता था कि विजेता द्वारा गांव पर अधिकार कर लिया जाता था, लेकिन इन युद्धों का कारण चाहे जो भी हो, कभी भी कृषकों के हितों को क्षति नहीं पहुंचायी जाती थी। विजेताओं में लूट का असमान वितरण होता था यही नहीं कब्जे में आयी भूमि भी असमान मात्रा में वितरित होती थी। जो लोग युद्ध में मुख्य भूमिका निभाते थे और विजय में जिनका अधिक योगदान होता था, उनका हिस्सा भी अधिक होता था, शेष लोगों को छोटे-छोटे हिस्सों से ही संतुष्ट होना पड़ता था। इस प्रकार शत्रु से प्राप्त भूमि व्यक्तिगत कब्जे में आ जाती थी। कभी-कभी यह भी होता था कि विजयी जनजाति पराजित समुदाय का पूरा राज्य ले लेती और पुनः उसे वापस कर देती। यद्यपि ऐसे मामले में भूमि तो वापस कर दी जाती थी परन्तु दावे का अधिकार विजेता के पास ही रहता था। इस तरह निजी भू-स्वामित्व का प्रचलन हुआ।

३—भू-स्वामित्व का अस्तित्व केवल जन-जातीय युद्धों का फल न था और न ही युद्ध में सफलता का परिणाम था। कभी-कभी जब किसी एक समुदाय की जनसंख्या बढ़ जाती थी तब समुदाय कुछ परिवारों को नयी भूमि पर बसने के लिए भेज देता था।[१२] इस प्रकार इन परिवारों द्वारा नए भू-खण्ड पर बसने से मूल समुदाय के आसपास ही एक नए समुदाय का गठन हो जाता था जो कि मूल समुदाय का ही सहयोगी या संघ होता था। इस प्रकार के संघ में मूल मातृ समुदाय का नए समुदाय पर वरिष्ठता का अधिकार होता था।

भूमि के रूप में निजी सम्पत्ति रखने का एक और कारण गोत्र में विश्वास तथा वंश परम्परा का दृढ अनुपालन भी था। यद्यपि प्राचीन ग्रामीण समुदाय प्रजातांत्रिक कहे जा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे फिर भी उनमें यह एक दृढ़ धारणा थी कि समुदाय के कुछ परिवारों का रक्त सर्वाधिक शुद्ध होता है बावजूद इसके कि उन सब की वंशावली एक ही थी समुदाय के मुखियाओं का चयन सामान्यतः इस परिवारों के सदस्यों में से किया जाता था और उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे। उन्हें विजित ग्रामीण समुदायों से हथियाई गयी भूमि से सबसे बड़ा और अच्छा भूखण्ड दिया जाता था और कभी-कभी समुदाय की सामान्य भूमि में उन्हें बड़ा हिस्सा पुरस्कार स्वरूप दिया जाता था।

४—मुखिया का बढ़ता हुआ अधिकार क्षेत्र भी एक ऐसा कारण था जिससे भूमि के रूप में निजी सम्पत्ति का उद्भव हुआ। जन जातीय समाज का ह्रास भूमि के रूप में निजी सम्पत्ति का कारण हो, ऐसा नहीं है। अपितु मुखिया का बढ़ता हुआ अधिकार क्षेत्र इसका उद्भव क्षेत्र था। अन्तर जन-जातीय युद्ध का एक परिणाम यह भी हुआ कि घनिष्ठ और सुव्यवस्थित ग्रमीण समुदायों का विनाश हो गया और वे टूट गए। इन समाजों से टूटे हुए लोग लगभग हर स्थान पर बिखर गए। पराजित समुदायों को विघटित कर उन्हें उनके घरों से निकाल दिया गया। जिन लोगों ने आत्म समर्पण कर विजेताओं की सेवा स्वीकार कर ली उन्हें गाँवों में रहने दिया गया। जो सदस्य अपने समुदायों से निकाल दिए गए वे बेघर होकर आवास की तलाश में भटकते रहे जहाँ उन्हें खाने, रहने और सुरक्षा की सुविधा मिल सके। जिन बस्ती के लोगों ने इन्हें शरण दी, उन्होंने इन्हें गाँव के किनारे असामी के रूप में बसने दिया। अपरिचित होने के कारण उन्हें समुदाय का पूर्ण सदस्य नहीं बनाया जा सकता था क्योंकि यह रक्त सम्बन्धों के मान्य मूल्यों के विरुद्ध था कि किसी अपरिचित व्यक्ति को समुदाय की सदस्यता दी जाए। ऐसे शरणार्थी मुखिया के कठोर नियंत्रण में रहते थे। जिस भूमि पर वे खेती करते थे वह उनकी न होकर मुखिया की होती थी। इस प्रकार मुखिया उन्हें समाज में प्रश्रय देता था, उन्हें जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध कराता और वही उनके कार्य के लिए उत्तरदायी होता था।

मुखिया इन शरणार्थियों को इसलिए बसाता और प्रोत्साहन देता था क्योंकि इससे उसे लाभ होता था। यद्यपि मुखिया के लिए इन शरणार्थियों का बसाना चाहे कितना ही लाभप्रद क्यों न रहा हो परन्तु इससे समुदाय के अन्य सदस्यों के हितों को ठेस पहुंचती थी। गाँव की बेकार पड़ी भूमि पर नए आगन्तुकों के बसने से उन्हें हानि उठानी पड़ती, क्योंकि गाँव के संयुक्त सम्पत्तिधारकों के संगठन के रूप में चरागाह के रूप में उनके लिए उपलब्ध भूमि में कमी आ जाती थी। इस प्रकार मुखिया की शक्ति में वृद्धि होने के साथ-साथ लोगों में भाई चारे की भावना में कमी आई। नए आने वाले लोगों से सस्ते श्रम की उपलब्धता और मुखिया के प्रति उनके समर्थन से समुदाय के मूल निवासियों को चिन्ता होने लगी क्योंकि मुखिया इन असामियों की सहायता से समुदाय की बेकार पड़ी भूमि हो हथियाने लगा। तत्पश्चात् उसने चरागाहों और अन्त में कृषि योग्य भूमि पर अधिकार जमा लिया जिससे गाँव की शाँति और व्यवस्था में बाधा पड़ी और गाँव के मुखिया का अधिकार क्षेत्र बढ़ने लगा जो आगे चलकर इतना शक्तिशाली हो गया कि अपनी भूमि को शेष भूमि से अलग कर हदबंदी कर दी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार सामान्य स्वामित्व की व्यवस्था को विघटित कर दिया।

सामन्ती प्रथा का उद्भव

भारतीय आर्य इतिहास के अनेक लेखकों ने अनुभव किया कि सामंतवादी प्रथा से मिलती-जुलती प्रथा भारत में मुगलों के आगमन से पूर्व ही विकसित हो चुकी थी। उनके अनुसार सामंतवाद पहले ही एक संस्था का रूप ले चुका था और इसके उदय को भारत में मुगलों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। इन लेखकों ने राज्य और जनजातीय मुखिया अथवा समुदाय के अगुवा के बीच सम्बन्धों को सामंतवादी बताया है। लेकिन यह एक गलत धारणा थी, क्योंकि बडेन पावेल का कथन है कि राजा और मुखिया के सम्बन्ध जमींदार और उसकी प्रजा के बीच के सम्बन्धों से व्यापक रूप से भिन्न थे।[११] सर्वप्रथम राजा या उसके समान कोई अन्य व्यक्ति भूमि के रूप में कोई भी सम्पत्ति नहीं रखता था। हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में किसी भी ऐसे राजा का वर्णन नहीं मिलता है (चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न रहा हो) जिसका भूमि पर पूर्ण स्वामित्व हो। भू-कर राजा को दिया जाता था जो भूमि पर उसके अधिकार की मान्यता के रूप में न होकर इस मान्यता पर आधारित था कि वह बाह्य आक्रमणों से ग्रामीणों की रक्षा करता था। राजा और मुखिया के बीच के सम्बन्ध मुख्य रूप से गोत्र संगठन पर निर्भर थे। सुरक्षा और आक्रमण के लिए अपनाई जाने वाली रणनीति के लिए यह आवश्यक था कि वे सभी एक सामान्य राजा के नियंत्रण में रहें। बाह्य आक्रमणों से सामान्य सुरक्षा के लिए ही राजा के प्रति निष्ठा और आज्ञाकारिता की भावना का जन्म हुआ। लेकिन इन स्वेच्छक निष्ठा के कारण राजा मुखियाओं और गांवों के अन्य सदस्यों पर कोई नियंत्रण नहीं रखता था वास्तव में वेदों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनके अनुसार राजा का चुनाव मुखियाओं की समिति द्वारा किया जाता था और इस समिति द्वारा अवांछनीय राजाओं को गद्दी से हटाया भी जा सकता था। राजा सामुदायिक जीवन में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता था और यदि कभी ऐसा होता तो इस पर अत्यधिक रोष प्रकट किया जाता और इस पर कड़ी निगाह रखी जाती थी। भू-कर की अदायगी के दो मुख्य उद्देश्य थे : प्रथम यह किसी राजा विशेष के प्रति समुदायों की निष्ठा दर्शाता था और द्वितीय यह कि इससे समुदायों को राजा की सुरक्षा मिलती थी। इस प्रकार भूमि आवंटन के मामले और भू-क्षेत्र पर शासन की स्थापना के मामले में यह प्रथा थी कि राजा का हिस्सा इस प्रकार लिया जाता जिससे मौजूदा धारकों के कृषि अधिकार पर कोई प्रभाव न पड़े। राजा वास्तविक भूमि व्यवस्था में बिना किसी हस्तक्षेप के मात्र कर प्राप्त करता था, लेकिन जब राजा शक्तिशाली हो गया तो उसने राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति की जो कर जमा करते थे। इनकी नियुक्ति मुखियाओं के साथ-साथ होती या फिर मुखियाओं के स्थान पर होती। गाँव के जो परिवार उच्च और कुलीन समझे जाते तथा जो गांव के मुखिया होने योग्य समझे जाते थे उन्हें करों की अदायगी से मुक्त कर दिया जाता था और उनके अधिकार में कर मुक्त भूमि होती थी, जबकि अन्य भूमि कर योग्य होती थी और राजा की भूमि मानी जाती थी। मुगलों ने यह व्यवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर योग्य होती थी और बनाए रखी ।[१४]

१६ वीं शताब्दी के मध्य में भारत में मुगल साम्राज्य की नींव मजबूत हो गयी । अकबर के शासन काल को उनकी शक्ति का चरम बिन्दु कहा जा सकता है । सम्राट की राजस्व व्यवस्था जिसके संचालन उनके वित्त मंत्री राजा टोडरमल थे, बहुत प्रसिद्ध है । यद्यपि इस राजस्व व्यवस्था में न तो कोई मूलभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है और न ही भूमि के बारे में किसी नई बिचारधारा को परिभाषित किया गया है । इस व्यवस्था में कर का निर्धारण भूमि के स्वरूप और फसल के आधार पर किया गया था । इस युग में भूमि व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप या अन्य परिवर्तन नहीं किया गया । फिर भी नई मान्यताओं और प्रथाओं की स्वीकृति के कारण कुछ परिवर्तन हुए जैसे पुराने नामों को नया नाम दिया गया उदाहरणार्थ राजस्व भागीदारी, वेकार भूमि से लेकर राजस्व और करों तक, को संयुक्त रूप से जमींदारी कहा गया है । परन्तु राजस्व व्यवस्था और अधिकार की प्रकृति में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ ।

मुगल शासनकाल में इस बात को बढ़ावा मिला कि विजेता पराजित समुदाय के सम्पूर्ण भूमि का स्वामी बन जाय और स्थानीय कृषक उसकी प्रजा । कुछ भी हो मुस्लिम विचार-धारा के अनुसार इस दावे को बल मिला जिसके अनुसार अधर्मियों की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर विजेता का अधिकार हो जाता था । यह सत्य है कि यह सिद्धान्त एक कठोर कानून था जिसमें संशोधन कर उन लोगों की सम्पूर्ण सम्पत्ति हासिल कर ली जाती जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया और शांतिपूर्वक आज्ञाकारिता का जीवन बिताने लगे । विजेताओं ने यह सिद्धान्त अपना तो लिया किन्तु उनकी सीमाएं भूल गये । इस प्रकार जव किसी नये क्षेत्र पर विजय प्राप्त की जाती तो मुगल सम्राट अपने आप को उस क्षेत्र की भूमि का एकछत्र स्वामी घोषित करता और अपने सहायकों को राजस्व कृषकों के रूप में नियुक्त करता, किन्तु राजस्व कृषक प्रथा का दीर्घकालीन प्रभाव भारत के ग्राम्य सामाजिक जीवन पर पड़ा । राजस्व कृषकों ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर अपने आपको उस भूमि का एक मात्र स्वामी बना लिया जिसका वे कर वसूलते थे । सर्वप्रथम गाँव की भूमि पर अनुचित रूप से अधिकार किया गया । राजस्व कृषक सभी राजस्व और कर जमा करते थे और कृषक उन्हें अनाज में राजा को देय हिस्सा देते थे । केन्द्रीय शासन का पतन होने और उसके फलस्वरूप राजस्व कृषकों पर उनके नियंत्रण में ढील होने से प्रबंधक के नियंत्रण को धीरे-धीरे एक छत्र स्वामित्व में बदल दिया गया । इस प्रकार धीरे-धीरे राजस्व कृषक जमींदार बन गये और गांव की सम्पूर्ण जमीन उनके स्वामित्व में आ गयी । केन्द्र में थोड़ी सी हलचल होती तो इन कृषकों द्वारा उनका अनुचित लाभ उठाया जाता । कभी-कभी सम्राट का खजाना इतना भी सक्षम न होता कि राजस्व जमाकर्ताओं के बेतन का भुगतान किया जा सकता, फलस्वरूप राजा उन्हें नकद वेतन के स्थान पर भूमि के रूप में अनुदान देता ।

इसके अतिरिक्त मुगल साम्राज्य की जड़े मजबूत होने से बेदखल हिन्दू राजाओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात के लिए बाध्य होना पड़ा कि वे गांव में रहें। इन भूतपूर्व राजाओ और कुलीन लोगों में श्रेष्ठ होने की भावना होना स्वाभाविक था। इस प्रकार इन राजाओं के लिए गांव की भूमि पर अधिकार कर लेना और अपने आप को एक गांव या गांवों के एक समूह का राजा घोषित करना सरल था। इन वेदखल राजाओं और सिपाहियों ने जो लोग मुगल शासकों के प्रति निष्ठावान हो गये उन्हें राज्य मान्यता और संरक्षण मिला। सेना और राजस्व वसूली के लिए जनशक्ति जुटाने के उद्देश्य से इन भूतपूर्व राजाओं को वृत्तियां दी गयीं तथा राजा की ओर से कर वसूलने के लिए अधिकृत किया गया। इसी प्रकार सैनिक वृत्ति भोगियों को भी राजा के सेना के लिए निश्चित सैन्य टुकड़ी तैयार करने का अधिकार दिया गया। इस उद्देश्य से उन्हें वसूले गये करों का निश्चित भाग दिया गया जिसे वे वेतन, राशन और अन्य आवश्यकताओं पर व्यय करते थे। इससे जागीरदारी प्रथा की उत्पत्ति हुई। ये जागीरदार जिनके पास उन्हें समर्थन करने के लिए सेना होती थी और राजा का संरक्षण प्राप्त होता था उन तमाम सुविधाओं से सम्पन्न थे जिससे कि वे अपने आप को जमींदार के रूप में बदल सकें। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि सभी जमींदार मूलरूप से राजस्व कृषक थे। पुराने शासन के कुछ स्थानीय हिन्दू राजाओं को शांत कर सहायक बना लिया गया जो कि सम्राट द्वारा जमींदार कहे जाने लगे।

अकबर के समय में यह पाया गया कि सत्ता केन्द्रों में प्रायः गड़बड़ी होने से प्रशासन की शक्तियां क्षींण होने लगीं। केन्द्र की शासकीय संस्थाएं पूर्ण रूप से विकसित होने में असमर्थ रहीं जिसके फलस्वरूप राजाओं को सैनिक और वित्तीय प्रशासन धीरे-धीरे अपने हाथ में लेने में सुविधाएं होने लगीं। केवल मराठा एक मात्र ऐसे राजा थे जिन्होंने स्वतंत्र वित्तीय अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त को आरम्भ किया। उनकी प्रशासनिक विधियाँ मुगलों से श्रेष्ठ हैं।

दक्षिण में ऐसी घटनाओं के उदाहरण नहीं मिलते हैं जिसके दो महत्वपूर्ण कारण है। यद्यपि मराठा शासकों ने कृषि कर व्यवस्था को अपनाया किन्तु इससे जमींदारी प्रथा को बढ़ावा नहीं मिला क्योंकि इस पर शासकों का सक्षम और कठोर नियंत्रण था। सुदूर दक्षिण जैसे मद्रास में मुस्लिम राज्य की स्थापना कभी भी नहीं हुई, सिवाय पश्चिम में थोड़े दिनों के लिए मैसूर सुल्तान शासन के और हैदराबाद रियासत के नवाबों के। इन लघु कालीन शासकों द्वारा उत्तर भारत की भाँति जमींदारी प्रथा की स्थापना नहीं की जा सकी।"

अतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय प्रशासनिक इतिहास के इस चरण में जमींदार वर्ग का उद्भव कृषि कर व्यवस्था और दैनिक वृत्तियों के कारण हुआ। राजस्व कृषकों और सैनिक वृत्ति भोगियों को अपने जनपदों की प्रशासनिक व्यवस्था को देखना था। इन जमींदारों को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी और उन्हें केन्द्रीय सत्ता के हस्तक्षेप का लेशमात्र भय न था।

इस प्रकार भारत में सामंतवाद से मिलती जुलती एक प्रक्रिया निःसदेह प्रारम्भ हो गयी। ऐसी भारतीय घटनाएं ब्रिटेन और यूरोप की 'निसेन्ट एबसास्यूट' स्वामित्व का प्रत्यु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्तर थीं। फिर भी ये भारतीय घटनाएं एक दूसरे की उत्तरवर्ती होने के स्थान पर एक साथ अस्तित्व में हैं। भारत में सामंतवादी प्रथा वास्तव में कभी भी पूर्ण नहीं हुई।

ब्रिटिश युग

जब अंग्रेजों ने भारत में अपनी स्थित सुदृढ़ कर ली तो उनसे भारत में भूमि व्यवस्था निर्धारित करने को कहा गया। सैनिक गतिविधियों की समाप्ति के बाद नई सरकार का नागरिक अधिनियम भूमि व्यवस्था का निर्धारण था। सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उनके समक्ष यह था कि किसके साथ इसका सैटलमेंट किया जाय। राजस्व के लिए किसे उत्तरदायी ठहराया जाए। इन तत्कालिक समस्याओं के साथ-साथ अंग्रेज इनके द्वारा संपूर्ण भारतीय समाज के राजनैतिक और सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले परिणामों से भी परिचित थे। उनके पास दिशा निर्देश के लिए कुछ भी नहीं था। अंग्रेज प्रशासकों के सम्मुख तीन प्रमुख विकल्प थे

१ या तो वास्तविक खेती करनेवाले व्यक्तियों को भूमि का स्वामी माना जाय और उसे शासन को राजस्व की अदायगी के लिए उत्तरदायी ठहराया जाय। इसका अर्थ था जमींदारों को बेदखल करना जिन्होंने वास्तविक कृषकों को हटा कर स्वयं को भूमि का मालिक घोषित कर दिया था। इस नीति पर अंग्रेजों ने कुछ दक्षिणी राज्यों में जैसे मद्रास आदि में अमल किया। यद्यपि यह व्यवस्था मद्रास में सफलतापूर्वक लागू हुई[१६] लेकिन इसका कुछ विरोध भी हुआ। कुछ अप्रसन्न तत्वों द्वारा नई भूमि व्यवस्था के विरोध में पिटीशन भेजे गये। जब अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को कुछ उत्तरी प्रान्तों में लागू करना चाहा तब जमींदारों में असंतोष फैल गया जिसका परिणाम १८५७ के युद्ध थे। दक्षिण प्रान्तों जैसे बम्बई और मद्रास में इस व्यवस्था के सफल होने का कारण बडेन पावेल के अनुसार यह था कि इन क्षेत्र में आर्यों और मुस्लिम प्रशासकों का प्रभाव कम रहा और इस प्रकार प्राचीन रैय्यतवारी व्यवस्था बनी रही।[१७]

२ दूसरा विकल्प प्रथम के विपरीत था अर्थात् जमींदारों को भूमि के वास्तविक स्वामी के रूप में शासकीय मान्यता दे दी जाए। इससे भूमि पर आधारित कुलीन वर्ग की उत्पत्ति हुई जो कि भारत के लिए पूर्ण रूप से अज्ञात थी।[१८]

३ तीसरा विकल्प यह था कि ग्रामीण समुदाय की पंचायतों के प्रतिनिधियों को भू-राजस्व की वसूली और अदायगी के लिए मान्यता दी जाए। इसे अंग्रेजों ने अव्यवहारिक पाया क्योंकि जब तक अंग्रेज शासकों ने भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ की तब तक पंचायतें अपनी शक्तियां खो चुकी थीं।

इस प्रकार अंग्रेज प्रशासन ने ऐसी व्यवस्था पाई जो कि किसी प्रचलित भू-स्वामित्व के सिद्धान्त पर खरी नहीं उतरती थी। अत: उन्होंने ऐसा रास्ता अपनाया जिसमें उन्हें कम अड़चनें हों। मुस्लिम शासकों की तरह वे भी यह मानने लगे कि सम्राट भूमि का मालिक है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासन की ओर से वह किसी को भी राजस्व वसूली के लिए नियुक्त कर सकता है। लेकिन उन्होंने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि इसके गंभीर परिणाम होंगे क्योंकि राजस्व वसूलने वाले अधिकारियों द्वारा ग्रामीणों के सभी अधिकारों का हनन किया जायगा और वह केवल अपने हितों की रक्षा करेगा। इस प्रकार उन्होंने अपनी नीति पर पुनः विचार कर उसे संशोधित किया। उन्होंने इस विचार से सहमति व्यक्त की कि राजस्व की वसूली के लिए राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति की जाय और ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाए जिसके पास परम्परागत भूमि के अधिकार हों। किन्तु इसमें भी दोष पाए गए। अंग्रेज भी सम्पूर्ण भारत में कोई एक जैसा कानून नहीं बना पाए। समय-समय पर विभिन्न अंग्रेज शासकों ने विभिन्न सुधार किए जैसे 'थोमस मुनरोय' ने मद्रास बाम्बे, बरार तथा सेन्ट्रल प्रोविन्स, आसाम और कुर्ग आदि में रैय्यतवारी व्यवस्था लागू की जिसके अन्तर्गत कृषक अपनी भूमि का मालिक होता था और वह उसे इच्छानुसार बेच सकता, स्थानान्तरित कर सकता था अथवा किसी को भी दे सकता था। इसी प्रकार लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर में परमानेन्ट सेटिलमेंट (१७९३) लागू किया जो कि रैय्यतवारी व्यवस्था के एकदम विपरीत था। एक अन्य व्यवस्था ब्रिटिश शासकों द्वारा १८३३ में आगरा और अवध में लागू की गई जिसे महलवारी व्यवस्था कहा गया। इसे बाद में पंजाब और सेन्ट्रल प्राविन्स में लागू किया गया। इसमें भूमि पर ग्रामवासियों का स्वामित्व होता था और 'लम्बरदार' लगान वसूलने तथा शासकीय खजाने में जमा करने हेतु उत्तरदायी होता था। ब्रिटिश एग्रेरियन पालिसी का विस्तृत विवेचन जोशी[१९] और देसाई[२०] ने किया।

स्वतंत्र भारत में भूमि व्यवस्था

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले राष्ट्रीय नेताओं ने यह प्रयास किया कि भारत में भूमि व्यवस्था में सुधार किए जाएं। वर्ष १९३६ के आम चुनाव के बाद अनेक राज्यों में बनी सरकारों ने कृषकों की इस मांग को उठाया कि उन्हें जमींदारों के दमनकारी गतिविधियों से बचाया जाय। अनेक विधेयक पारित हुए, परन्तु स्थित में महत्वपूर्ण बदलाव उस समय आया जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष द्वारा १९४८ में गठित कृषि सुधार समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, रिपोर्ट में कहा गया कि कृषि उत्पादन में तब तक सुधार न होगा जब तक कि देश की भूमि व्यवस्था में सुधार नहीं किया जाता। कमेटी ने न केवल जमींदारी उन्मूलन की सिफारिश की बल्कि इसने बिचौलियों की समाप्ति पर भी बल दिया। इसके अलावा अनेक अन्य अच्छे सुझाव दिये गये। यह सुझाव दिया कि भूमि की सीलिंग की जाय और सहकारी कृषि के अन्तर्गत सभी अनार्थिक जोतों को मिला दिया जाये। कमेटी की सिफारिशों को योजना आयोग द्वारा १९५२ में अनुमोदन किया गया और तब से संघ के विभिन्न राज्यों द्वारा अनेक भूमि अधिनियम पारित कर इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने का प्रयास हो रहा है।

चूंकि भूमि सुधार राज्य सरकारों के आधीन है अतः यह अधिनियम यद्यपि सामान्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से एक ही सिद्धांन्त का अनुकरण करते हैं किन्तु विवरण से भिन्न है, इसलिए यहां पर विभिन्न भूमि सुधार उपायों की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालना उचित होगा।

प्रथम उदाहरण के रूप में भी अधिनियमों का उद्देश्य उन बिचौलियों को समाप्त करना है जो विभिन्न नामों जैसे, जमींदार, मक्तेदार, मोकसदार, जागीरदार, इजारेदार, और पलमपटदार के नामों से गरीब कृषकों का शोषण करते थे। इन अधिनियमों से सभी राज्य सरकारों को यह अधिकार मिल गया कि वे मुआवजा देकर इन बिचौलियों के सभी अधिकार ग्रहण कर लें। इसके फलस्वरूप १९६३ तक १७३ लाख एकड़ भूमि ५१३.६ करोड़ रुपये मुआवजे देकर ग्रहण की गई।[२१] बिचौलियों की समाप्ति से सरकार और कृषकों के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

इन अधिनियमों के प्रभावी होने पर भी जमींदारों ने आसानी से अपने अधिकारों को नहीं त्यागा। उन्होंने कानूनी लडाइयाँ लड़ीं। इसके फलस्वरूप एक के बाद एक अधिनियम इस आधार पर अवैध घोषित कर दिए गए कि इनके द्वारा संविधान में मूलभूत अधिकारों का हनन हुआ है। इससे शासन को बड़ा ही धक्का लगा और भूमि सुधारों को लागू करने पर निषेध हो गया। इसके फलस्वरूप संसद ने १९५१ में संविधान में संशोधन कर नया अनुच्छेद (अनुच्छेद ३१ ए) जोड़ा जिससे कि कमियों की दूर किया जा सके। साथ ही एक और अनुच्छेद (३१-बी) को भी जोड़ा गया जिससे कि जमींदारों के मुकाबले राज्य की स्थिति कुछ सुदृढ़ हो सके।

इसी प्रकार सभी राज्यों में लगान के नियमन के लिए भी अधिनियम लागू किये गये और जमींदारों द्वारा असामियों को बेदखल करने के विरुद्ध उपाय किए गए। इसके अतिरिक्त शासन द्वारा भूमि की सीलिंग से सम्बंधित नियम बनाए गये जिससे चन्द लोगों द्वारा भूमि पर एकाधिकार करने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित किया गया। इस प्रकार प्राप्त भूमि को अधिनियम में उल्लिखित प्राथमिकताओं के आधार पर वितरित किया गया आवंटी कब्जा मूल्य की अदायगी कर देने के बाद ही इस भूमि पर अधिकार कर सकते हैं।

नियोजकों द्वारा सहकारी खेती का भी प्रस्ताव किया गया। यह सुझाव दिया गया कि लघु और सीमान्त कृषकों को प्रोत्साहित किया जाय और स्वेच्छिक सहकारी कृषि समितियों के गठन हेतु उन्हें सहायता दी जाए। इससे किसानों में सहकारी भावना पैदा होगी और अनार्थिक जोतों के दुरुपयोग से बचा जा सकेगा। इसका उद्देश्य सहकारी क्षेत्र का विस्तार कर सम्पूर्ण गांवों की भूमि के प्रबन्ध हेतु समुदाय को उत्तरदायी बना देना था। इन सभी उपायों का यह परिणाम हुआ कि जमींदारी प्रथा जिनके पास देश की कुल जमीन का ४० प्रतिशत था, का उन्मूलन हो गया। इसके साथ ही सामंतवाद भी समाप्त हुआ और लगभग २०० लाख कृषकों को राज्य के प्रत्यक्ष सम्बन्ध में लाया गया। फलस्वरूप एक नए कृषि परिवेश का सृजन हो रहा है जिसमें किसानों (वास्तविक किसानों) की सामाजिक परिस्थिति में द्रुतगति से वृद्धि हो रही है जबकि भूतपूर्व जमींदारों और सामंतों आदि की सामाजिक परिस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षाकृत निम्न हो रही है। इसके साथ ही प्राचीन भारतीय ग्रामीण संरचना की सभी मान्यताएं इस तीव्र गति से बदल रहीं हैं कि ग्रामीण समुदायों का प्राचीन स्वरूप विलुप्त होता जा रहा है। और ग्रामीण समुदायों में नगरीय समाज की विशेषताओं का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ने लगा है।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के शासन ने ग्रामीण समाज की ओर विशेष ध्यान दिया तथा कृषकों की दशा में सुधार लाने हेतु और मध्यवर्तियों के अधिकार समाप्त करने हेतु 'उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम १९५०' पारित किया गया। इस अधिनियम के १९५२ में लागू हो जाने के बाद से कृषकों को, जिस भूमि पर वे वास्तव में खेती करते थे, वास्तविक स्वामित्व मिल गया। लगान का दस गुना लेकर उनको भूमिधरी अधिकार दे दिया गया। इस अधिनियम के फलस्वरूप लगभग ७०,००,००० परिवारों को ३,५०,००,००० एकड़ भूमि पर अधिकार हो गया जिस पर वे वास्तव में कृषि करते थे। पुनः शासन में समान भूमि वितरण के उद्देश्यों से 'लैण्ड होल्डिंग ऐक्ट १९६० पारित किया गया जिसके परिणामस्वरूप २,८८,५९२ एकड़ भूमि फालतू घोषित हुई और उसमें से जनवरी १९८३ तक १,४०,६३४ एकड़ भूमि १,९४,९८८ भूमिहीन परिवारों में बांट दी गई जिसमें से १,४४,३८१ परिवार अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के थे।[२१]

कृषकों की सामाजिक एवं आर्थिक दशा सुधारने और उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से शासन ने 'यू० पी० कन्सालीडेसन आफ लैण्ड होल्डिंग ऐक्ट १९५४' पारित किया जिससे कि कृषकों की विभिन्न स्थानों पर फैली कृषि योग्य जमीनों को एक ही स्थान पर दे दिया जाय। इससे उन्हें सिचाई एवं जुताई-बुआई तथा देख-भाल में पर्याप्त सुविधा हो जायेगी कृषि योग्य भूमि के एक स्थान पर हो जाने से कृषकों को कृषि के उन्नत साधन प्रयोग में लाने में अधिक सहायता मिली और उनकी स्थिति में द्रुत गति से सुधार हो रहा है। वर्तमान समाज सामन्तवादी युग से निकलकर समाजवाद की ओर अग्रसर हो रहा है।

निष्कर्ष

१ प्रारम्भिक ग्रामीण समुदायों में भूमि पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं होता था अपितु सम्पूर्ण समुदाय का सामूहिक अधिकार होता था। यहाँ तक कि राजा का भी उस पर कोई अधिकार नहीं होता था। भूमि पर सभी ग्रामवासी मुखिया के निर्देशन में सामूहिक रूप से कृषि करते थे यह व्यवस्था मुगल काल तक चलती रही। आर्यों तथा द्राविणों की मिश्रित सांस्कृतिक व्यवस्था के कारण ग्रामीण आर्थिक संरचना मुख्य रूप से पशुपालन और कृषि पर निर्भर थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ ग्रामीण समुदाय में भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का विकास कालान्तर में हुआ जिसके लिये हेनरीमेन के अनुसार पाँच मुख्य कारक उत्तरदायी थे यथा :

(१) एक समुदाय पर दूसरे समुदाय द्वारा आक्रमण की आशंका।
(२) समुदाय में बढ़ते हुए परस्पर विवाद।
(३) बढ़ती हुई जनसंख्या।
(४) वंश परम्परा में रक्त की शुद्धता को बनाए रखना।
(५) मुखिया द्वारा पारिवारिक हित में अपने अधिकारों का दुरुपयोग।

३ भारत में मुगलों के आगमन के पूर्व राजा और गांव के मुखिया के बीच में जो सम्बन्ध होते थे वे मुख्य रूप से गोत्र संगठन पर निर्भर थे। उनमें राजा और प्रजा का सम्बन्ध होता था। राजा को राजस्व इसलिए दिया जाता था क्योंकि वह बाहरी आक्रमणों से भू-समुदाय की रक्षा करता था। राजा सामुदायिक जीवन में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करता था। लेकिन मुगल काल में जब राजा शक्तिशाली हो गया तो उसने भूमि पर अपना अधिकार कर लिया और भू–कर बसूली हेतु राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति कर दी। इन अधिकारियों की नियुक्ति मुखिया के साथ अथवा उनके स्थान पर होती थी। गांव के मुखिया होने योग्य उच्च और कुलीन परिवारों को कर मुक्त भूमि दी जाती थी तथा शेष भूमि राजा की होती थी।

४ भारत में सामन्ती प्रथा के विकास में कई कारक उत्तरदायी हैं जिनमें सबसे प्रमुख कारक युद्ध में पराजित समुदाय के भूमि को विजेता द्वारा अपने अधिकार में ले लेना था जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे समस्त भूमि राजा की हो गयी और वास्तविक कृषक राजा की प्रजा बन कर रह गया। अकबर के शासन काल में भू–राजस्व व्यवस्था में कुछ सुधार हुआ और पराजित सभी राजओं की भूमि पर उसका एकछत्र अधिकार हो गया। केन्द्रीय शासन की प्रशासनिक तथा आर्थिक कमजोरी के कारण कर वसूलने वाले कृषक स्वयं जमीन्दार बन गये। वे तथा कथित जमींदार जिन ग्रामीण समुदायों का कर बसूल करते थे वे उनके अधीनस्थ हो गये।

५ सामन्ती प्रथा के विकास का अन्य महत्वपूर्ण कारक तत्कालीन सैन्य व्यवस्था थी। जिन हिन्दू राजाओं ने पराजित होने के बाद मुगल सम्राट की अधीनता स्वीकार कर ली अथवा जिन्होंने उनके साथ युद्ध न करके अधीनता स्वीकार कर ली और विश्वासपात्र बन गये, उनके राज्य उन्हें लौटा दिये गये। इस प्रकार वे अपने राज्य के जागीरदार हो गये।

६ भारत में अंग्रेजी शासन की यह नीति रही कि कम से कम हस्तक्षेप कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके और इसी तथ्य को ध्यान में रख कर उन्होंने भू-राजस्व व्यवस्था में अनेक परिवर्तन किए जैसे दक्षिण में रैय्यतवारी व्यवस्था और उत्तर में परमानेन्ट तथा महावारी व्यवस्था। वास्तविक कृषक और शासन के बीच में बिचौलियों (किसानों से लगान वसूलकर सरकारी कोष में जमा करने वाले) की व्यवस्था इस समय भी बनी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महलवारी व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक छोटे बिचौलियों (लम्बरदार) ने ग्रामीण भूमि पर अपना वर्चस्व बढ़ाकर उस पर अपना अधिकार पूर्णरूपेण स्थापित कर लिया।

७ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेस सरकार ने कृषकों की आर्थिक स्थिति सुधारने के उद्देश्य से भूमि तथा राजस्व व्यवस्था में अनेक सुधार किये। कृषकों की स्थिति पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव जमींदारी उन्मूलन तथा बिचौलियों की समाप्ति का पड़ा। इसी प्रकार सीलिंग, अतिरिक्त भूमि के भूमिहीनों में आवंटन के परिणामस्वरूप परम्परागत भू-स्वामियों की सामजिक एवं आर्थिक प्रस्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा जबकि काश्तकारों और भूमिहीनों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों की सामाजिक प्रस्थिति पर इसका बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा है। इन शासकीय प्रयासों के परिणामस्वरूप लगभग सम्पूर्ण परम्परागत कृषक सामाजिक एवं आर्थिक संरक्षण का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया है।

८ भूमि सुधार के क्षेत्र में अन्य राज्यों की अपेक्षा उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक शासकीय प्रयास हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप यहां की कृषक सामाजिक संरचना सबसे अधिक प्रभावित हुई है। इन शासकीय प्रयासों का इस प्रदेश में एक प्रभाव यह भी हुआ है कि इससे ग्रामीण समाज में घनघोर जातीय भावना जाग्रत हुई है जिससे जातीय संघर्ष और सामुदायिक तनावों को पर्याप्त बढ़ावा मिला है। लेकिन इन सबके बावजूद आम कृषकों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पहले की अपेक्षा अब अधिक सुदृढ़ हो गया है तथा प्रदेश खाद्यान्न उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो गया है।

संदर्भ

१ टॉनीज, एफ० १९५२ कम्युनिटी एण्ड एसोसिएशन, विलियम हीनमैन पृ० ५८। लन्दन

२ हेनरीमेन १९८० दी अर्ली हिस्ट्री आफ इन्स्टीट्यूशन्स, जॉनमुरे पृ० ७१-७२ लन्दन।

३ पूर्व उल्लिखित, पृष्ठ ७७।

४ पाणिक्कर, के० एम० १९५४ सर्वे आफ इण्डियन हिस्ट्री, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

५ डेविस, आर० १९५९ बुद्धिस्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ० ३३-३४।

६ मुकर्जी, आर० के० १९२३ डेमोक्रेसीज आफ दी ईस्ट, पी० एम० किंग एण्ड सन्स लन्दन पृ० २००।

७ हंटर, डब्लू० डब्लू० बडेन पावेल द्वारा इण्डियन विलेज कम्युनिटी में उद्धृत, न्यू हैवेल पृ० १९२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८ बडेन-पावेल, बी० एच० १८९६ इण्डियन विलेज कम्युनिटी, लागमैन्स ग्रीन एण्ड कं० लन्दन, पृ० १९२।

९ शमासस्त्री, आर० १९१५ कौटिल्याज अर्थशास्त्र, मैसूर प्रिन्टिग एण्ड पब्लिशिंग हाऊस, मैसूर (अनुवादित, प्रथम संस्करण।)

१० पूर्व उल्लिखित।

११ हेनरीमेन १८७१ विलेज कम्युनिटीज इन ईस्ट एण्ड वेस्ट, जॉनमुरे, लन्दन।

१२ मथाई, जे० १९७५ विलेज गर्वन्मेन्ट इन ब्रिटिश इण्डिया : टी० फिशर अनविन लि० बीन्सेन, इबल्यूसन आफ एग्रेरियन रिलेसन्स इन इण्डिया पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, १९६२।

१३ बडेन-पावेल, बी० एच० पूर्व उल्लिखित।

१४ पुनीत, ए० ई० १९७८ सोसल सिस्टम इन रूरल इण्डिया, स्टर्लिंग पब्लिशर्स दिल्ली पृ० १४।

१५ बडेन-पावेल, बी० एच० पूर्व उल्लिखित।

१६ वाइजर, डब्लू० एच० १९६६ दि हिन्द जजमानी सिस्टम ए सोसियो–इकोनामिक सिस्टम, लखनऊ : लखनऊ पब्लिशिंग हाऊस, पृ० ११०

१७ बडेन-पावेल, बी० एच० पूर्व उल्लिखित।

१८ पुनीत, ए० ई० पूर्व उल्लिखित।

१९ जोशी, पी० सी० १९६७ "प्रीइण्डिपेनडेंस थिंकिंग आन एग्रोरियन पॉलिसी," इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, भाग ११, संख्या ८।

२० देसाई, डी० १९४२ "एग्रेरियन सर्फडम इन इण्डिया" इण्डियन सोसियोलोजिस्ट, जुलाई।

२१ १९६२ रिपोर्ट आफ दी प्लानिंग कमीशन आन दी प्रोग्रेस आफ लैण्ड रिफार्म्स, गर्वन्मेन्ट आफ इण्डिया पब्लीकेशन, दिल्ली पृ० ४।

२२ १९८३ उत्तर प्रदेश, १९८३, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार पब्लीकेशन, पृ० १३३-१३४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिवासी स्तंभ

जनजातीय विकास के कुछ पहलू

सैय्यद कामिल हुसैन

भारत में जनजातीय विकास शीर्षक शायद यह दर्शाता है कि जनजातीय विकास का निम्न स्तर भारत के अन्य भागों के विकास की अपेक्षा अधिक (विशेष) ध्यान एवं परीक्षण चाहता है। आदिम लोग भारत के अन्य दूसरे समाजों की अपेक्षा आर्थिक रूप से बहुत कम विकसित हैं। तथा गरीबी उनका अभिप्राय बन गई है। इसका कारण उनका अत्यधिक शोषण है जिससे वे स्वतंत्रता के पहले एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी पीड़ित रहे हैं, वास्तव में आदिम समाज का इतिहास शोषण का इतिहास है।

ब्रिटिश शासन काल में आदिम लोगों का एवं इनके क्षेत्रों का लगभग पूर्णरूप से ध्यान नहीं रखा गया जिसके कारण जनजातीय समाज व अन्य लोगों की सामाजिक, आर्थिक तथा साँस्कृतिक स्थिति में एक बड़ी खाई पैदा हो गयी।

प्रशासन के परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से सहयोग के द्वारा महाजन जमीदार एंव व्यापारी वर्ग ने इनके इलाकों में अत्यधिक शोषण किया और इनकी सामाजिक एंव आर्थिक स्थिति को बिगाड़ दिया। इस स्थिति ने तनाव एवं झगड़े पैदा होने की शुरुआत की और इसी के परिणाम स्वरूप आदिम लोगों ने इसके विरुद्ध आन्दोलन की शुरुआत की। कई आदिम क्षेत्रों में समय समय पर अमानवीय व्यहार के खिलाफ कड़ा विरोध किया गया और इनके (आदम लोगों के) द्वारा यह भी प्रयास किया कि अपने मूल अधिकारों एवं अपनी संपत्तियों को पुनः नियंत्रित करें। इसके साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण आन्दोलन चलाये गये जैसे सैंथाल आन्दोलन, चुआर-विद्रोह, हजर कृषि आन्दोलन, बिरसा आन्दोलन, नागा एवं मीजो आन्दोलन इत्यादि, । इन आन्दोलनों ने एवं इनके संगठित स्वरूप ने उस समय के प्रशासन को विचार करने के लिये

सैय्यद कामिल हुसैन, मानव विज्ञान विभाग, शिया डिग्री कालेज, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाध्य किया तथा प्रशासन द्वारा इन्हें थोड़ी क्षेत्रीय आजादी देनी चाही। इस अलगाववादी नीति ने आदिम समुदाय एवं अन्य लोगों के बीच एक मनोवैज्ञानिक बाधा खड़ी कर दी।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद हमारी राष्ट्रीय सरकार ने संविधान में इस वर्ग के लोगों के लिए बिशेष प्राविधान किया तथा इनकी सामाजिक, आर्थिक तथा साँस्कृतिक दशा सुधारने के लिए कई योजनाएँ बनायीं। इन योजनाओं में आरम्भ से ही कई नये प्रयोग किए गए ताकि जनजातीय समाज अन्य समाजों की तरह विकसित होकर आगे आए। परन्तु इन प्रयासों के बावजूद कुछ क्षेत्रों में इन योजनाओं का लाभ अभी भी नजर नहीं आता है। इन क्षेत्रों में एकीकरण के स्थान पर कुछ असन्तोष एवं अविश्वास की भावना आज भी व्याप्त है। अभी भी इनमें से कुछ लोग अपनी पहिचान ढूंढ़ने में लगे हुए हैं तथा परोक्ष या अपरोक्ष रूप से अलगाववादी नीति को बढ़ावा दे रहे हैं जिसके कारण वे अपने आपको अन्य समाजों के समान नहीं समझते हैं।

जनजातीय लोगों के बारे में यह मत है कि यह लोग सामान्यरूप से सामुदायिक भावना रखने वाले अनुशासित एवं प्रगतिशील होते हैं। इनकी सामाजिक संस्थाएँ आपस में सहयोग एवं सहभागी कार्यो को बढ़ावा देती हैं, पुरुष एवं स्त्रियां दोनों ही अपनीं जीविका के लिए एक साथ कार्य करते हैं और समान अधिकार रखते हैं। वे किसी से भी भीख माँगना पसन्द नही करते क्योंकि इन्हें अपनी मेहनत द्वारा किये गये कार्य पर पूर्ण बिश्वास होता है। इनके पास महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विरासत होती है और वे अपनी प्रथा (customs) एवं संस्कृति को सम्मानपूर्वक बनाये रखते हैं। आदिवासियों में एक दूसरे के प्रति नफरत की भावना नहीं पायी जाती बल्कि वे एक दूसरे पर भरोसा करते हैं। उनकी इस लोकतांत्रिक भावना को बढ़ावा दिया जा सकता है परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता।

प्रायोगिक रूप में इतने वर्षों के बाद भी हम देखते हैं कि सरकार की विकासशील योजनाओं के लागू होने के बावजूद निश्चित प्रगति नही हुयी है। प्रश्न यह उठता है कि क्या आदिवासीय योजनायें ठीक बनाई गई हैं। यह जानने पर उत्तर नकारात्मक मिलता है : चूंकि यह योजनाएँ उन लोगों ने बनायी (सोची) जो कि स्वयं आदिवासीय क्षेत्रों के नहीं थे। इनके विचार आदिवासीय न होकर अन्य समाजों के विचार थे। आज यह बताया नहीं जा सकता है कि आदिवासीय लोग भारत के अन्य समाजों के बराबर कब तक पहुंचेगे। यह बात उपयुक्त होती जब इनके लिए उपयुक्त रास्ता अपनाया जाता और आदिवासियों के विचार भी अवश्य लिए जाते तभी उनकी विकासकारी योजनाएं सही रूप से लागू हो सकती।

हमारे पास विकास योजनाओं के कई नाम हैं जैसे—क्षेत्रीय उपागम (Area-aproach) सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म योजनाएँ इत्यादि। समुदाय पर आधारित योजनाएँ व सहभागी योजनाएँ जिसमें आम लोग मिलकर कार्य कर सकें कम बनाई जाती हैं। सहभोगी योजनाएँ प्रायोगिक रूप से देखी तो गई हैं परन्तु इन योजनाओं का निर्माण करने वालों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी संस्कृति की विशेषताओं पर बहुत कम ध्यान दिया है जिससे इन लोगों (जनजातीय - लोगों) में मनोवैज्ञानिक अलगाव की भावना पैदा होती है और यही कारण है कि यह आम लोगों से अलग दिखाई देते हैं।

वैज्ञानिक प्रगति द्वारा कल के सपने आज की हकीकत बन गए हैं पर विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी का हमारे देश में जनजातियों को कोई विशेष लाभ नहीं पहुंच सका और न इनकी समस्याओं का हल इनके द्वारा किया जा सका। हमे इनके विकास के नए रास्ते सोचने होंगे।

सामाजिक आर्थिक विकास के साथ-साथ इनकी संस्कृति को भी महत्व दिया जाना चाहिए ताकि वे अपने को देश की आम जनता के साथ जोड़ सकें। आदिवासीय नेता जिन्होंने आन्दोलन में योगदान दिया एवं उसमें उनकी जानें गईं, उनके नाम पर स्टेडियम, गलियों एंव सड़कों का नाम रखा जाना चाहिये ताकि योगदान प्रकाश में आए। इनकी भाषा को प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर बढ़ावा दिया जाना चाहिए और इनके साँस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर पाठय पुस्तको की रचना की जानी चाहिए। इनके कला एवं रचनात्मक कार्यो (Arts crafts) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, मेले तथा सामूहिक नाच गानों का आयोजन कर इनको बढ़ावा दिया जाना चाहिए। ऐसे सभी कार्यों से आदिवासियों के मन पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इससे उनकी हीन भावना भी कम होगी। इनके साँस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर बनाई गई योजनाओं से अतीत की बहुत सी कमियाँ दूर हो सकती हैं।

अन्त में वैज्ञानिकों से भी प्रार्थना की जानी चाहिए कि वे जनजातीय परिप्रेक्ष में विशेष योजनाएँ बनाएं जो जनजातीय समाज के लिए ही विशेष रूप से हों।

संदर्भ

बोस, एन० के०	१९७१	ट्राईबल लाइफ इन इंडिया, नैशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
चौधरी, बुधदेन	१९८२	ट्राईबल डेवलपमेंट इन इँडिया, इन्टर इँडिया पब्लिकेशनस, दिल्ली
हसनैन, नदीमुल	१९८३	ट्राईबल इँडिया टुडे, हरनाम पब्लिकेश, नई दिल्ली
	१९८२	बाँडेड फार एवर, हरनाम पब्लिकेशन, नई दिल्ली
माथुर, एच० एम०	१९७६	डेवलपमेंट ऐडमिन्सिट्रेशन इन ट्राईबल एरियाज, जयपुर
	१९७७	ऐन्थ्रोपालोजी इन द डिवलपमेंट प्रोसेस, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रा, यू० एस० एवं तिवारी १९७५ भारतीय अदिवासी, उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ

विद्यार्थी, एल० पी० १९८१ ट्राईबल डिवलपमेंट एण्ड इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन, कनसेप्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोत्तर भारत के जनजातीय संदर्भ-- ऐतिहासिक परिवेश में मिसिंग जनजाति पर आधारित एक अध्ययन

भिक्षु कौण्डिन्य

आहोम शासन काल में मिसिंगों का उपद्रव

प्रतापसिंह और मिरि सन्दिकै

सामुगुरिया मिरियों ने आहोम राज्य में एक अत्याचारी सांप मारा था, जिससे आहोम राजाओं ने प्रसन्न होकर असमिया लड़की के साथ शादी करवा दी थी। इनकी स्त्रियां असमिया भाषी होने के कारण मिरि पुरुष अपनी बोली भूल गए और आजकल सामुगुरिया मिरि लोग असमिया भाषा को ही मातृभाषा मानते हैं। इनके बीच जनश्रुति प्रचलित है कि—पहाड़ छोड़ कर सर्वप्रथम सामुगुरिया गिरि ही ब्रह्मपुत्र उपत्यका के समतल भूमि में आए थे। इन्हें 'मिरङ्' (उदास) कहा जाता है। क्योंकि इन लोगों ने गलती से अपने ही गांव के लोगों की हत्या की थी। इसलिये ये लोग अपना निवास स्थान छोड़ कर आहोम राजा के आश्रय में आए थे। तब राजा ने उन्हें अपने राज्य में स्थान दिया था। ये लोग असम प्रान्त के शिवसागर और लखिमपुर जिलों में निवास करते हैं।

असम के 'बुरंजी' (इतिहास) ग्रन्थों में आहोम राजाओं के राज्य में मिरि/मिसिंग लोगों द्वारा विद्रोह करने का उल्लेख मिलता है। सर्व प्रथम राजा प्रतापसिंह/बुरारजा ने बारुक से बरगोहांई भकोला गोहांई के दिहिंग नामक स्थान में रखा था, यह पुत्रहीन था। इसने 'मिरि' बच्चे को ही गोद लिया था। उस बच्चे का नाम 'मिरि-सन्दिकै' था। इसके सन्तान को 'मिरि-सन्दिकै' कहा गया है। (पुरणि असम बुरंजी, पृ० ४४)।

राजा चुहुम्मुंग के शासन काल (सन् १५२६ ई०) में एक मिरि को इसकी योग्यता तथा राजभक्त होने के कारण सेना में उसकी पदोन्नति कर दी थी।[७] सन् १५०५ में भुत्ना राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सन् १५२३ मै सुतिया राज्य आहोम राज्य में मिला लेने से आहोम साम्राज्य की सीमा 'मिरि-पहाड़' तक फैल गई थी। तभी से 'भैयाम' (समतल भूमि) के वासिन्दे मिसिंग लोग आहोम राज्य की प्रजा हो गए थे। राजा प्रतापसिंह (सन् १६०३—४१-४९) ने उपद्रवी पहाड़ी मिरियों को सूचना देने के लिए सर्वप्रथम 'मिरि-कटकी' (दूत) नियुक्त किया था। उपद्रवी मिरियों को सुतिफा (सन् १६४१-५३) ने शान्त किया था।[८]

जयध्वजसिंह के काल में मिसिंगों का उपद्रव

सन् १६५५ में राजा जयध्वजसिंह के राज्य काल में मिसिंगों ने पुनः आन्दोलन आरम्भ किया, किन्तु उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। 'मिरि-मिगम' (मिरि राजा) ने हर साल हर्जाने के रूप में पीत रंग की मणि, मेथोन, घोड़ा, आदि 'कर' स्वरूप देने लगे। सन् १६५५ में मारेकेबाट गांव के मिरियों ने आहोम प्रजा की हत्या कर दी। राजा जयध्वजसिंह को यह खबर मिली तो वैशाख महीने में राजा ने तामुलिदलै के पौत्र कलिया कटकी को सदिया-खोवा गोहांई और मरंगि-खोवा गोहांई को मिरियों को दमन के लिए भेजा। इस पर मिरि लोग पीपल वृक्ष के नीचे एकत्र हुए। करुनीमाउ, ताकनी, दयाकी, नपा, मुरिन, मारेकेबाट और ताशेर्नी गांवों के तीन सौ गिरि आहोम राजा के लोगों से मिलने के लिए तैयार हुए। मारेकेबाट के मिरियों से लड़ने के लिए तामुलिदलै के पौत्र कलिया को दूसरों से मीमांसा कर चुने हुए सिपाही भेजे गये। लड़ाई में मिरि लोग टिक नहीं पाये; वे तितर-बितर होकर भाग गए। लड़ाई के मैदान में चौबीस मिरि मारे गये, दो को जीवित पकड़ लिया गया। तब तामुलीदलै के पौत्र ने कुछ चुने हुए सैन्य को अन्य मिरियों से लड़ने के लिए भेज दिया। आहोम सेना डिक्रांग नदी से होते हुए डिका पहुंची। इस अवसर पर नरिक, पजिना, पिजाम और शिलाजोना के मिरियों ने आहोम सेनाओं की एक सौ नावें लूट ली थी। सेना ने लांगी और करनक नामक दो मिरि गांवों को नष्ट कर दिया। आहोम सेनाओं से मिलने के लिए मिरि लोग भयभीत हुए, बाद में उन लोगों ने शान्ति सन्धि का प्रस्ताव किया। उन लोगों ने कलियादलै के पास आदमी भेजा। मिरि कटकी (दूत) ने तामुलीदलै के पौत्र से कहा: 'हमने गांवों को लूट-मार कर अपराध किया; अब हम शान्ति चाहते हैं, और हम राजा को हर्जाना देने के लिए भी तैयार हैं'।[९] उत्तर में तामुलीदलै के पौत्र ने उनसे कहा—'पहले सुतिया राजा चार 'हाति-धांही' (हाथी को दाना, घास की व्यवस्था करने वाला) दिया करता था। जब जयध्वज राजा ने सुतिया राजा को पराजित कर उसके राज्य को जीत लिया, तो तुम्हारे पूर्वज हर्जाना देने के लिए प्रस्तुत हुए थे। तुम लोगों ने वह नियम भंग किया है। इसलिए राजा ने तुम्हें शान्ति का पाठ पढ़ाने हेतु मुझे भेजा है। तुम लोगों ने हमारे दो आदमी की हत्या की। उसके बदले में राजा ने दस आदमी तुम से मांगे हैं।[१०] इस पर मिरि लोग दस आदमी देने के लिए राजी हुए। तब उन लोगों ने हर्जाने के रूप में बीस मेथुन (भैंस जैसा जन्तु), तीस घोड़े, बीस कछुए और सात रत्नहार दस आदमी के बदले में देना स्वीकार किया। इन लोगों ने शान्ति के प्रतीक स्वरूप ढोल बजाया। उन्हें सालाना हर्जाने स्वरूप मैथुन, घोड़े, बीस कछुए, पीले बिलौरे, मिरि कम्बल, और 'सिफरादास' (एक प्रकार का हथियार) देने के लिए कहा गया।[११]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चक्रध्वजसिंह के काल में मिसिंगों का उपद्रव

राजा चक्रध्वजसिंह (सन् १६६५) के शासन काल में लोहित नदी के उत्तर, मिरि लोगों ने गांवों में लूट-मार की। समाचार पाकर राजा ने छह हाजरिकाओं को दूत सहित—छापर-गुरिया परिवार के लापेत लान्डाजोमी और खानडेका को आदेश दिया कि 'लोहित नदी के उत्तर में एक दुर्ग का निर्माण करें'।[१२] फिर मिरियों ने मउ-बरुआ के पुत्र पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी। इस विद्रोह में एक शिलामन सहित आहोम राजा के चौंतीस लोग मारे गये। यह समाचार पाकर राजा ने अति क्रोधित होकर आर्त्तनाद किया—'पुराने काल से ही मिरियों के पूर्वज को मेरे पिता चाउफ सुसेंगने मिरियों को बसाया था। देउरियों को भी लाया गया था। मेरे भाई चाउफा सुताम्ला उनके पक्ष में थे। मैं अब देउरियों को देखता हूं, उन लोगों ने भी मिरियों के साथ गठजोड़ किया है। मिरियों को दण्ड देने के लिए राजा ने लाताओ फुकन का लड़का पेलन फुकन को भेजा।[१३] आदेशानुसार पेलन फुकन ने (१६६६) मिरियों पर आक्रमण किया। पांच सौ मिरि और सात हजार चुंगी लोग एक साथ मिल गये थे। चुंगी लोगों ने नामदेंग में प्रवेश किया और मिरि लोग तांगशांग में। राजा ने लोगों को एकत्र करने लिए डेका फुकन और लालुक गुइमेलिया को लोहित की ओर भेजा। आदेशानुसार वे चले गये, तो राजा भी उनके पीछे-पीछे आया। तब उन लोगों ने मिरियों के अंचल को नष्ट कर दिया और बहुत से मिरियों को पकड़ लिया।[१४]

उदयादित्य को मिसिंगों का हर्जाना

राजा उदयादित्य (सन् १६७२) के समय में सुतिया और मिरि लोगों के बीच झगड़ा हुआ तो लुक्तेंग सुतिया ने मिरि गांवों का विनाश किया और आहोम राजा को हर्जाने स्वरूप देने हेतु मिरियों ने मार नावें बनाया, उसे भी सुतिया लोग लूट कर ले गये। नराई गाम नामक सुतिया को आहोम अधिकारियों ने पकड़ लिया। सुतियों को वार्षिक कर देने के लिए कहा गया, जिसे वे नहीं देते थे। मिरियों के आहोम राजा को देने के लिये बनाये हुए 'मार-नावों' को अवैध रूप से लेने के अपराध में ताईकाफी के सुतियों को गिरफ्तार किया गया।[१५] फिर सन् १६७२ में मिरि लोगों ने आहोम राजा के विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु उसे सेंगधरा बरुआ के पुत्र सिमलगुड़िया फुकन ने शीघ्र ही कुचल दिया। मिरियों ने हर्जाना स्वरूप आहोम राजा को पटिसयामणि, सिकरा-दा, जिम-कापोर और शिकारी कुत्ते देना स्वीकार किया।[१६]

रामध्वजसिंह को मिसिंगों का सहयोग

राजा रामध्वजसिंह (सन् १६७४) के समय में सुतिया लोग धनुष-बाण साथ लेकर मिरि गांव में रहने लगे। आहोम सेना सुतिया गांव में एकत्र हुई। तब मिरि-बरुआ और आहोम सेनाओं ने दिहिंग नदी क्षेत्र में आकर गढ़ निर्माण कर उन्हें वहीं रोका। उत्तर के सुतिया बरुआ ने चाउतांग से कठोर व्यवहार किया। चाउतांग ने तामुलीदलै को इसकी सूचना दे दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब बसा-बरुआ ने अपने दो आदमियों के साथ मिरि कटकियों (दूत) को ताईकाफी सुतिया को लेने के लिए भेजा। मुतिया-बरुआ ने मिरि से कहा—'हमारे राज्य में स्वर्ग-राज ने कभी भी दूत नहीं भेजा है, किन्तु अब वह ऐसा करने लगा है।' मिरि 'कटकी' ने उत्तर में कहा—हमें राजा ने तुम्हें यह कहने के लिए भेजा है कि उन्हें सम्राट् मानो। राजा ने हमसे कहा है कि वे आठ ताईकाफी सुतिया जीवित हैं। ताईकाफी सुतिया हर्जाने स्वरूप कुछ हाथी दांत, मेथुन, सिकरादाह, जिम-कापोर और दासियाँ दें।' इस पर मिरियों ने तामुलीदलै को हर्जाना दिया।[१७]

गदाधरसिंह के समय में मिसिगों का उपद्रव

राजा गदाधरसिंह (सन् १६८१) के शासन काल में ताईमुग के मिरियों ने आधी रात को सदिया-खोवा गोहांई के घर में आग लगा दी। स्त्री-बच्चों सहित सदिया-खोवा गोहांई को बन्दी बनाकर रखा। बहुत से लोगों की हत्या कर दी। सदिया-खोवा गोहांई ही मृत्यु के मुख से बच निकला और राजा को स्थिति से अवगत करा दिया। समाचार पाकर राजा ने मिरियों से लड़ाई के लिए नाओहलिया फुकन को भेजा। आदेशानुसार फुकन ने मिरियों पर आक्रमण किया। तीन-चार मिरियों की हत्या कर उनके सिर ले आया। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष—बहुत से मिरियों को बन्दी बनाया। मेथुन, उनके घरों की सामग्री, दाउ, हथियार आदि मिरियों से प्राप्त किया। बाद में राजा के आदेशानुसार लोहित नदी से मिरि गांव के प्रवेश द्वार तक दो मिट्टी के दीवारों का निर्माण करवाया। तब नाजोहलिया फुकन ने बहुत से मिरि और युद्ध में प्राप्त वस्तुएँ राजा को भेंट स्वरूप सौंप दिया। बाद में सदिया-खोवा गोहांई पद पर मिरि-सन्दिकै के पौत्र को नियुक्त किया।[१८]

मिसिगों ने राजा रुद्रसिंह (१६९६-१७१४) को नागाओं से लड़ने के लिये भी आहोम सैन्य की सहायता की थी। कछारी राज्यों पर आक्रमण करते समय भी मिसिगों ने आहोम सैनिकों को चावल आदि खाद्य सामग्री आदि की व्यवस्था की थी।[१९]

ईसवी सन् १७३३ से पहले फुलेश्वरी रानी की छोटी बहन द्रौपदी का विवाह मिरि-सन्दिकै सलाल बरगोहांई परिवार में हुआ। उससे द्रौपदी के दो पुत्र हुए। फुलेश्वरी की मृत्यु के बाद राजा शिवसिंह ने बल-पूर्वक उसके साथ विवाह कर द्रौपदी को 'पर्वतिया कुंवरी' बनाकर उसका अम्बिकादेवी नाम रखा। रानी अम्बिकादेवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उस राजकुमार को राजा शिवसिंह ने तिपाम-राजा बनाया। पूर्व के पति से उत्पन्न दो लड़कों को 'सदिया-खोवा-गोहांई पद पर नियुक्त किया गया।[२०]

मान आक्रमण और मिसिंग

आहोम राज्य का, राजा लक्ष्मीसिंह (१७६९-१७८०) के समय से पतन होने लगता है। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में वर्मा देशीय मान लोगों ने (ई० सन् १८१७-१८२५) तीन बार असम पर आक्रमण किया। ब्रह्मपुत्र और सोवानगिरि नदी तटीय मिसिंगों का आक्रमणकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान लोगों के साथ संघर्ष होने की जनश्रुति इनके समाज में प्रचलित है। सन् १८२६ में मान और अंग्रेजों के बीच इयन्दाओ सन्धि होने से असम में मान उपद्रव समाप्त हुआ। कहा जाता है कि मान सेना बहुत सी मिसिंग स्त्रियों को पकड़कर ले गयी थी, उनमें से एक मिसिंग स्त्री भाग आई। अपने घर लौटते समय उसने एक पीपल वृक्ष के नीचे रात बिताई थी। वहां उसे एक चिड़िया का पंख प्राप्त हुआ, जिसके कारण उस घर के लोग बाद में धनवान हुए थे।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में मिसिंगों की भूमिका

इयान्दावो सन्धि (सन् १८२६ ई०) के बाद असम अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। अंग्रेजों ने सिर्फ मिसिगों की ही नहीं, बल्कि असम की अन्य अनुन्नत जनजातियों की आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक उन्नति के लिए कोई चेष्टा नहीं की है। अंग्रेज शासकों ने तो केवल उनका रक्षण-वेक्षण का भार लेकर, उन्हें खुला छोड़ दिया। इन जनजातियों ने जंगल निवासी होते ही ब्रिटिश शासन के एक सौ इक्कीस (सन् १८२६-१९४७) वर्ष यों ही अन्धकार में गुजार दिया।

जनजाति लोग स्वभाव से ही स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। विशेषकर भारतवर्ष में अंग्रेजी शासन की स्थापना से पूर्व उनके एकान्त एवं निर्जन क्षेत्रों में राजनैतिक हस्तक्षेप लगभग नगण्य ही रहा है। परन्तु अंग्रेजों ने सभी क्षेत्रों में धीरे-धीरे राजनैतिक प्रशासन कायम करना शुरू किया। अनेक क्षेत्रों की जनजातियों ने अपनी परम्परागत स्वतन्त्रता में राजनैतिक हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं किया और तीव्र विरोध किया। इस सम्बन्ध में असम प्रदेश के जनजातियों का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। असम के अधिकांश जनजाति अत्यन्त उग्र प्रकृति के हैं और उनमें परस्पर झगड़े होते रहते हैं।

सन् १८२६ में जब अंग्रेजों ने असम के आहोम राजाओं को विस्थापित करके प्रदेश पर अपना राजनैतिक आधिपत्य स्थापित किया, तब उत्तर-पूर्वी सीमान्त प्रदेश की जनजातियों को उन्होंने कहीं अधिक अशान्त और विद्रोह प्रकृति का पाया। इस प्रकार से ब्रिटिश शासकों के प्रति घृणा की भावना असम की जनजातियों में तीव्र होती गई। प्रारंभ में सन् १८१८ में प्रथम क्रान्ति के लक्षण दिखाई दिये। आहोम राजा के एक युवराज गोमधर कुंवर ने इस क्रान्ति का सूत्रपात किया तथा स्थान-स्थान पर जनजातियों ने ब्रिटिश प्रशासकों को अपनी स्वतन्त्रता में बाधक समझते हुए उनके प्रशासन में व्यवधान उपस्थित किये। सन् १८३० का वर्ष पूरे असम प्रदेश में जनजाति क्रान्तियों का वर्ष था। वर्ष के प्रारम्भ से ही खासी तथा गारो लोगों के सम्मिलित संघर्ष चलते रहे। कुछ ही समय बाद उत्तर पूर्वी सीमान्त प्रदेश में सामृति तथा सिंगफो सरदारों ने अशान्ति उत्पन्न कर दी। खासी लोग तीरथ सिन्ध के नेतृत्व में चार वर्षों तक संघर्षरत रहे। इसी वर्ष एक अन्य विद्रोह आहोम राजाओं द्वारा भी संगठित किया गया। इन राजाओं ने पास-पड़ोस के जनजातियों का सम्पूर्ण समर्थन एवं सहयोग प्राप्त कर लिया था। विद्रोह ने एक स्वतन्त्रता संघर्ष का रूप ग्रहण कर लिया, जिसे सन् १८५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार सारे देश में जहां-जहां भी अंग्रेजी प्रशासन के नियम प्रतिबन्ध एवं कानून जनजातियों की परम्पराओं के विरोधी साबित हुए वहाँ-वहाँ निरन्तर विद्रोह होते रहे।

अतः यह कह पाना कठिन है कि विदेशी शासकों के विरोध में प्रथम संघर्ष की क्रान्ति का श्रेय जनजातियों को मिलना चाहिए अथवा देश के अन्य वर्गों को। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन् १८५५ में सन्थाल विद्रोह से सन् १८५७ में हुई राष्ट्रीय क्रान्ति के नायकों ने अवश्य प्रोत्साहन प्राप्त किया होगा। यह भी सत्य है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन अन्ततोगत्वा उस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सका, जिसकी धारणा उन्नीसवीं शताब्दी में ही बन चुकी थी। गाँधी जी की सफलता की पृष्ठभूमि में असंख्य देशवासियों के रक्तरंजित प्रयास सन्निहित थे। असहयोग आन्दोलन एक नवीन दर्शन, एक नवीन प्रेरणा से उत्प्रेरित, एक नये रूप में उन्हीं प्रयासों की पराकाष्ठा थी। महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए देश-व्यापि स्वतन्त्रता आन्दोलन में ब्रह्मपुत्र उपत्यका की निसिंग जनजाति के नेताओं ने भी भाग लिया। इसमें शहीद कमला मिरि का नाम प्रमुख है।

शहीद कमला मिरि

सन् १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन के असम के प्रमुख शहीद हैं : कुशल कोंवर और कमला मिरि। शहीद कमला मिरि का जन्म १५ मई १८९७ में गोलाघाट के उपरिटेमेरा नामक मिरि गाँव में हुआ था। शहीद कमला 'मिसिंग'/मिरि पाव जाति के थे। शहीद कमला के पिता का नाम चिकौ पाव और मां का नाम मांगली पाव तथा इनकी धर्मपत्नी का नाम कनिकि पाव है। वीर कमला मिरि भी महात्मा गांधी के अहिंसा तथा स्वराज्य आन्दोलन में कूद पड़े और वे गाँव-गाँव में पद यात्रा कर गाँधीवाद का प्रचार करने लगे। सन् १९४२ में देश भर में तीव्र गति से स्वतन्त्रता आन्दोलन चला। इसी अवसर पर वीर कमला मिरि भी गोलाघाट में पकड़ लिए गए और वहां से उन्हें जोरहाट कैदखाना भेज दिया गया। कैदखाने में असम के प्रसिद्ध नेता लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै से कमला मिरि की भेंट होती है कमला निरक्षरी देशप्रेमी कृषक थे। इन्होने बरदलै के साथ जेल में ही लिखना पढ़ना और सूत कातना सीख लिया।

जेल में खाने-पीने की असुविधा के कारण कमला मिरि बीमार हुए। दुर्बल एवं असमर्थ देखकर जेलर ने उन्हें २१ दिन की छुट्टी दे दी, किन्तु जेल से चिकित्सा के लिए जाने से पूर्व ही वे जून, १९४३ में शहीद हुए। शहीद कमला मिरि की स्मृति में भोलागुरि हाई स्कूल का नामकरण हुआ है। राष्ट्रीय सरकार की ओर से भी इस देशप्रेमी शहीद कमला मिरि के परिवार को आर्थिक सहायता प्राप्त है। असम के मुख्यमंत्री स्व० विमला प्रसाद चलिहा भी कमला मिरि के घर जाकर उनके परिवार के सदस्यों से मिले हैं। गोपीनाथ बरदलै ने भी कमला मिरि और कुशल कोंवर का एक संस्मरण लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलिराम मराङ् (पण्डित)

'मराङ्' गांधीवाद के सन्देश वाहक हैं। इनका घर जोरहाट के किलामुख के ललित सापरी में कारेङ् गांव में है। ये सन् १९२०-२१ से जोरहाट कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता कुलधर चलिहा और देवेश्वर शर्मा के साथ स्वराज्य आन्दोलन के सदस्य हुए और माजुली, लखीमपुर के मिसिंग गाँवों में पद-यात्रा कर गांधीवाद और स्वराज्य का प्रचार किया।

बेथाराम पेगु

इन्होंने १९३५ में लखीमपुर जिले के मातमार नामक स्थान में सर्व प्रथम मिसिंग समाज के बीच 'ऑल आसाम मिरि हाई स्कूल' की स्थापना की। इसके साथ ही वे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेते रहे। सन् १९४२ में विदेशी वस्त्रों का दहन करवाया और गाँव-गाँव में पद यात्रा कर मिसिंग जनता को गाँधीवाद और स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया। गोपीनाथ बरदले, नीलमणि फुकन, बिमला प्रसाद चलिका आदि असम के प्रमुख नेताओं के साथ इनकी मित्रता थी।

बिमलाकान्त दले

दले मिसिंग समाज के कर्मवीर माने जाते हैं। आपका जन्म १९०६ में लखिमपुर जिले के कलाबारी गाँव में हुआ था। सन १९२१ के आन्दोलन में आलिराम मराङ्, बेथाराम पेगु और बिमलाकान्त दले ने गाँधीवाद का मूल मन्त्र प्राप्त किया। इन्होंने विदेशी वस्त्र वर्जन का प्रचार मिसिंग जन समाज के बीच किया। ये सदिया से लेकर तेजपुर के बीच के मिसिंग गाँवों में कार्य करते रहे। गाँवों में रात्रि-पाठशालाएं खोलकर निरक्षरी मिसिंग भाइयों को शिक्षा देते रहे। सन् १९४२ में वे कमलाबारी (जोरहाट) जेल में रहे। ये अन्तिम समय तक स्वराज के लिए लड़ते रहे।

श्री घनश्याम दले

स्वतन्त्रता सेनानी श्री घनश्याम दले का जन्म १९०६ में दिहिंगमुख के सेरकटा सापरी मिसिंग गाँव में हुआ था। इन्होंने गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। वर्तमान में यह नेता मुक्तियार सापरी नामक गाँव में रहते हैं। शोध के सिलसिले में मैं उनसे मिला भी हूं।

इन लोगों के अलावा दयाराम मिरि, मामल मिरि, तरुणचन्द्र आदि देशप्रेमी भाइयों ने भी अंग्रेज शासन के विरुद्ध आन्दोलन में भाग लिया और मिसिंग जनता के बीच स्वराज एवं गांधीवाद का प्रचार किया।

वर्तमान असम की राजनीति में कई एक मिसिंग नेता हैं। इनमें से श्री ललित कुमार दले, रमेशमोहन कुलि, श्री लक्षदले, तथा श्री महिधर पेगु राजनीति में भाग लेते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान मिसिंग समाज के कई एक ऊँचे पद के अधिकारी भी हैं। डाक्टर, मास्टर, अध्यापक, इंजीनियर आदि की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों में मिसिंग छात्रों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। वर्तमान अरुणांचल प्रदेश का मुख्य सचिव भी मिसिंग सम्प्रदाय के हैं। किन्तु जो पढ़ लिख लेता है, वह वापस गाँव लौटना पसन्द नहीं करता है। वह अपने आपको मिसिंग संस्कृति से अलग कर लेता है। भारत सरकार की ओर से मिसिंग जनजाति के उत्थान के लिए सभी प्रकार की सुविधाएँ दी हैं।

परम्परागत विभाजन की व्यवस्था

सुतिया मिरि

ब्रिटिश शासन काल में लखीमपुर जिले के ढकुवाखना अंचल के मिसिंग लोग 'सुतिया-मिरि' कहकर अपना परिचय देते थे। क्यों 'सुतिया-मिरि' कहा करते थे, इसे निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। जनश्रुति अनुसार यह कहा जाता है कि आहोम राजाओं के आक्रमण में टिक न पाने के कारण कुछ सुतिया लोग मिरि/मिसिंगों के घरों में आश्रय लेने लगे तो वही लोग बाद में सुतिया-मिरि कहलाने लगे।

बुरुक-सुतिया

'मेदक' जाति के मिसिंग लोगों को 'बुरुक-सुतिया' कहा जाता है। ये लोग भुवा तथा बकरे का मांस नहीं खाते हैं। असम के अन्य सुतिया लोग 'बुरुक-सुतिया' 'खेल' को उनके जाति के अन्तर्गत मानना नहीं चाहते हैं। संभवतः अपनी भाषा, संस्कृति छोड़ने के कारण ये लोग अपने वंश के लोगों को भूलने लगे हों।

देतियाल मिरि

पाग्र 'खेल' के मिसिंगों को 'देतियाल-मिरि' भी कहा जाता है और 'दैत्य-कुल' से आने के कारण इन्हें 'देतियाल' कहते हैं। 'दैत्य-कुल' से उत्पन्न होने की बातें निराधार हैं। मिसिंग भाषा में 'दइत' का अर्थ है, खाने में ओस्ताद। मिसिंगों में जन-प्रवाद है कि 'दइत-दकत, लुइत-लुकत', का अर्थ है ये लोग भुक्खड़ या अन्य को फुसला कर खा सकते हैं।

दहगाम-बारेगाम

साधारणतः मिसिंगों को 'दहगाम' और 'बारेगाम' दो भागों में विभक्त किया जाता है। कहा जाता है कि आहोम राजा ने राज्य में बार-बार आक्रमण होने के कारण उनसे रक्षा पाने हेतु सीमावर्ती जनजाति लोगों पर दृष्टि रखने के लिए एक अंचल में 'दस-गाम'/प्रमुख और दूसरे अंचल में 'बारे-गाम'/प्रमुखों की नियुक्ति की थी। ये नाम केवल प्रशासनीय नियोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-पूर्वांचलीय मंगोलवंशीय जातियों की तालिका

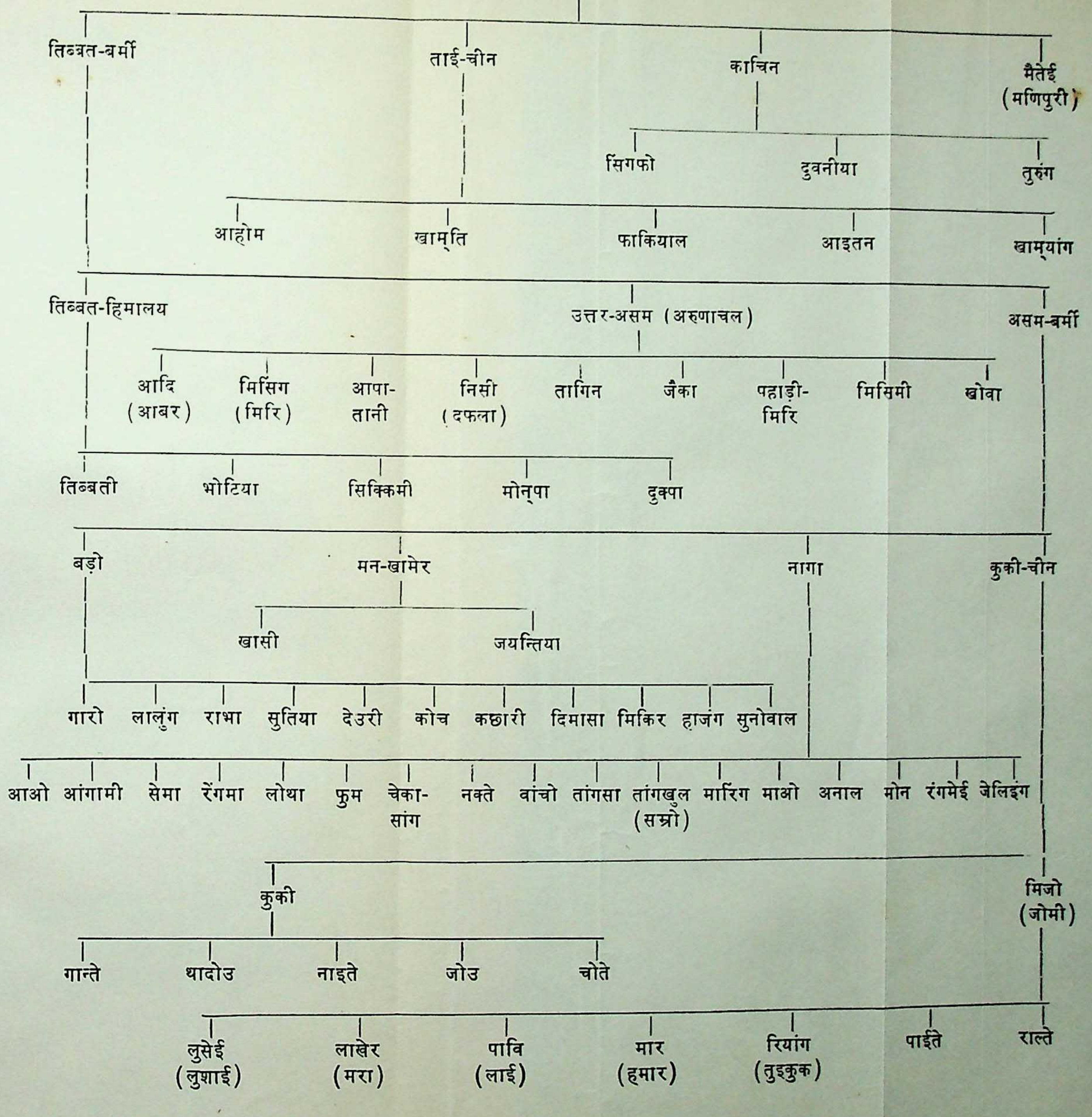

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवस्था से की गई है। इसके द्वारा जाति या उपजाति होना निराधार प्रतीत होता है। अतः, 'दहगाम' और 'बारेगाम' जाति का विभाजन न होकर पदवी का विभाजन है।

ऐसा भी माना जाता है कि पहाड़ से आने के बाद मिसिंग लोग दो गांवों में विभक्त होकर रहने लगे थे। इन्हें 'दह-गाम' और 'बारे-गाम' कहा जाता है। बाद में 'दहगाम' वाले दस भागों में बंट गए और 'बारे-गाम' वाले बारह भागों में विभाजित हुए थे। इन्हीं से वृद्धि होते-होते आज मिसिंगों का विकास हुआ। ये लोग पाग्र, देलु, दाम्बुकिया, मयिङ्, सायाङ्, अयान, समुवां, तेमेरा-गल्या, सामुगुरिया, अंकुवाल, बिहिया, बेवेजिया आदि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं।

पाग्र

'सि-पाङ्-आरः'/'सि-पाक् आरिक् इदुङ् एम्ना पाग्र एम्त'/कपास की खेती करने में सबसे आगे थे, कहकर 'पाग्र' कहा गया। मिसिंगों में 'पाग्र' लोगों की संख्या ही सबसे अधिक है। ये लोग असम के लखीमपुर, शिवसागर, दरंग, और डिब्रूगढ़ जिलों में फैले हैं। ये लोग सामूहिक रूप से सुसंगठित भी हैं। मेरा शोध का कार्य भी 'पाग्र' और 'देलु' लोगों को केन्द्र कर ही हुआ है।

देलु

'देलु आबु'/'देलु सियाङ् रुइल दुला देल्ल एम्त', अर्थात् 'देलु' नदी तट पर रहने के कारण इन्हें 'देलु' कहा जाने लगा। देलु लोग मुख्य रूप से शिवसागर जिले के दिहिंग, दिसांग, दिखौ नदी के तटों पर निवास करते हैं। लोहित नदी को 'तिलाओ'/'तेलु' कहा जाता है। लोहित नदी के तट पर निवास करने के कारण इन्हें 'देलु' कहा जाता है। इन्हें 'लासन-गयां' और 'जनगयां' भी कहा जाता है ब्रह्मपुत्र नदी के भूस्खलन और बाढ़ से पीड़ित होने के कारण अपना मूल-स्थान छोड़कर जनाई और धेमाजी की ओर भी जाने लगे हैं। देलु लोग कर्मठ और सत्य-वादी होते हैं।

दाम्बुक

दाम्बुक लोग अरुणाचल प्रदेश के पादाम क्षेत्र से आकर ब्रह्मपुत्र उपत्यका में निवास करने लगे हैं। ये लोग बहुत कम संख्या में हैं। दाम्बुक लोग मुख्य रूप से सोवानशिरि, रंगानदी, सिसि और डिबू नदी के तटों पर निवास करते हैं। दाम्बुक लोग पाग्र लोगों के साथ घुल-मिलकर रहते हैं।

मयिङ्

'आमः + मयिन'–'आमः मयिनकलः दुला मयिङ्' वन रहित खुले स्थान में रहने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेबेजिया

उक्त बिहिया मिसिगों में बेबेजिया मिसिंग गांव भी है । बेबेजिया मिसिंगों को आहोम राजा ने बेंत-काटने के काम में नियुक्त किया था, इसीलिए आज भी ये लोग बेंत-कटा बेबेजिया' कहकर अपना परिचय देते हैं। बंकुवाल लोगों के साथ इनका मैत्रिपूर्ण सम्बन्ध है। कछारी जनजाति के बीच भी बेबेजिया नामक एक शाखा है।

इस प्रकार देखा जाता है कि उक्त पांच शाखा के मिसिंग लोग असमियां भाषा को ही मातृ–भाषा के रूप में व्यवहार करते हैं । किन्तु, सम्बन्ध—वाचक शब्द तो मिसिंग बोली के ही होते हैं, जैसे, "हग' (साला), "हङ. में' (साली)- "मागल' (जिजा), 'मा-म' (भाभी) इत्यादि ।

मिसिंग/ मिरि लोग मंगोलवंशीय, तिब्बत—बर्मी शाखा में उत्तर—असम (अरुणाचल) के अन्तर्गत आते हैं । उत्तर—पूर्वी राज्यों में मंगोलवंशीय जातियों की शाखा को मुख्य रूप से चार भागों में विभक्त किया जा सकता है ——— १. तिब्बत—बर्मी, २. ताई—चीन, ३. काचिन और, ४. मैतेई (मणिपुरी)। फिर तिब्बत—बर्मी शाखा तीन भागों में आती है —— १. तिब्बत—हिमालय, २. उत्तर—असम (अरुणाचल) तथा ३. असम—बर्मी । असम—बर्मी शाखा चार भागों में है——— १. बड़ों, २. मन—खामेर, ३. नागा और ४. कुकी-—चीन और कुकी चीन दो शाखाओं में आते हैं——— १. कुकी—चीन २ .मिजो (जोमी) । उत्तर—पूर्वांचलीय मंगोलवंशीय जातियों की वंश—तालिका संलग्न पृष्ठ पर है।

संदर्भ

१. रूकब, तालाम १९६९ **दि डेराइवेशन मीनिंग ऑफ मिरिज**, नेफा इन्फॉमेशन ।

२. "दीनेमिरेम" गांवों का प्रमुख होता था, उसे ही राजा मानते थे और उसकी बातें सभी लोग मानते थे ।

३. तायुङ, चक्रेश्वर १९८१ "मिसिङ जातिर उत्पत्ति" (लेख), स्मृतिग्रन्थ, असम मिसिंग बाने केबाङ, गुणासुंति, उत्तर लखीमपुर, मार्च,

४. हंटर, डब्ल्यु० डब्ल्यु० १९७५ **ए स्टेटिस्टकल एकाउन्ट ऑफ आसाम**, प्रथम संस्करण, १८७९ लंडन, पुनर मुद्रण दिल्ली, पृ० ३४४ ।

५. उपरिवत्, पृ० ३४३ ।

६. उपरिवत, पृ० ३४३ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७. आचार्य, एन० एन० १९६६ **दि हिस्ट्री ऑफ मेडिवल आसाम**, गौहाटी, पृ० ९२।

८. कौण्डिन्य, भिक्षु १९७८ "मिसिंग जनजाति : एक परिचय", **हिमालय**, नई दिल्ली, वर्ष १, अंक १०, मार्च पृ० ३८।

९. बरुआ, गोलापचन्द्र १९३० **आहोम बुरंजी**, गौहाटी, पृ० १५३।

१०. उपरिवत्।

११. उपरिवत् पृ० १५३-५४।

१२. तथैव, पृ० १९२।

१३. उपरिवत्, पृ० १९३।

१४. उपरिवत्, पृ० १९४।

१५. गगै, पद्मेश्वर १९६८ **दि टाई एंड दि टाई किंगडमे**, गौहाटी विश्वविद्यालय, गौहाटी, पृ० ४७८, और विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य—गोलापचन्द्र बरुआ, तथैव, पृ० २२४-२२७।

१६. तथैव, पृ० ४७८।

१७. बरुआ, गोपालचन्द्र तथैव, पृ० २२९-२३०।

१८. उपरिवत् पृ० २६७।

१९. कौण्डिन्य, भिक्षु तथैव, पृ० ३८।

२०. गगै, पद्मेश्वर तथैव, पृ० ५१२।

२१. पेगु, नुमल १९८१ **दि मिसिंग्स ऑफ दि ब्रह्मपुत्र वेली**, कलाजान, धेमाजी, पृ० १९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
१११२५
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

Just Released

Anthropological Perspectives

Editors : **K. S. Mathur, U. S. Misra, V. N. Misra,**

B. R. K. Shukla, R. D. Singh, P. K. Tewari and D. Tyagi

Anthropological Perspectives is a collection of original and outstanding research papers on physical, social and archaeological anthropology by renowned scholars, especially written for this volume to commemorate late Professor D. N. Majumdar, the doyen of Indian anthropologist on the occasion of his 25th death anniversary year.

The contributors are : C. von Fürer-Haimendorf, R.L. Kirk, E.C. Büchi, A.E. Mourant and Adc E. Kapec, George Olivier, H.D. Sankalia and P. R. Kulkarni, L.P. Vidyarthi, R.D. Singh, G.S. Bhatt and P.K. Misra.

Royal octavo, cloth bound

p. XXXVI+168

Price Rs. : 160.00

US $ 40.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1311184

Compiled
1999-2000

111124

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri